पुस्तक

श्रीमद्भगवद्गीता भाषा

महात्म्य सहित

श्रीस्वामी किशोरदास, कृष्णादास कृत

जिसको

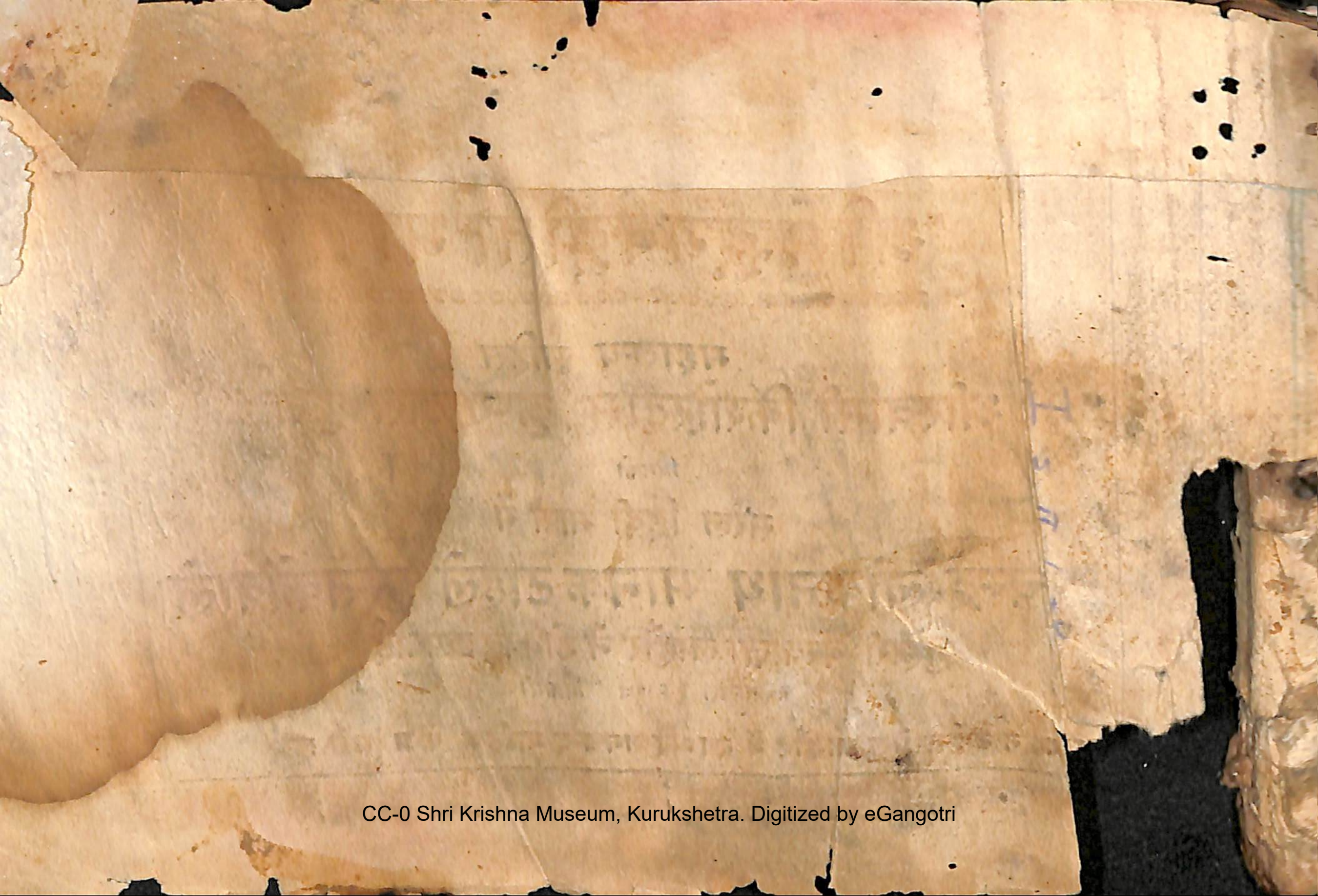
सरल हिंदी भाषा में

रामचन्द्र लोकनाथ मानक टाहले पुस्तकोंवाले

लुहारी दरवाज़ा लाहौर ने शोधकर छपवाई

सम्वत् १९७८ विक्रमी

...रकन टाईल प्रेस लाहौर में ला० दिवानचन्द मालिक के प्रबंधसे छपी



ॐ श्री गणपतये नमः



श्री गणेशाय नमः

श्री ॐ नमो भगवते वासुदेवाय वासुदेव विश्वेश्वरो ।
आदि पुरुष अपरम्पार अलेख पुरुषाय नमः ॥
दोहरा—जगद् बन्धु ज्योतिस्वरूप मन की जाननहार ।
हरियश मांगन आयो दास प्रभु के द्वार ॥ १ ॥

अर्जुन भक्त को श्रीभगवान् जी ने जो गीता ज्ञान दिया है सो मुझको मिले। हे भय भंजन भगवान् श्रीकृष्ण जी ! मो किशोरदास मांगता है। हे प्रभो ! गीता ज्ञान के,

उच्चारण करने से तुझ पूर्ण ब्रह्म को पाता है। हे प्रभो ! भाषा मैं आप के चरणों की शरण हूं, आप परम प्रवीण हो भ० गी० और मैं आपकी शरण में पड़ा हूं, किशोरदास और कृष्ण अध्य १ दास जो दीन गरीब हैं और आप कैसे हो सन्तों की विनय को मान लेते हो। हे कमला वल्लभ श्री कृष्ण भगवान् जी कृपा निधानजी तेरे सन्तों भक्तों के वास्ते मैं यह गीता ज्ञान भाषा में करता हूं ॥

❀ श्री गीता के ज्ञान की कथा प्रारम्भ ❀

जब कौरव और पांडव महाभारत के युद्ध को चढ़े तब राजा धृतराष्ट्र ने कहा क्या मैं भी युद्ध का कौतुक

दर्शन चहा ! तब श्रीव्यासदेव जी ने कहा हे राजन्
तेरे तो नेत्र नहीं हैं। नेत्रों विना क्या देखोगे। तब राजा
धृतराष्ट्र ने कहा हे प्रभुजी देखूंगा नहीं तो श्रवण तो
करूंगा। तब व्यासदेव जी ने कहा हे राजन् तेरा
सारथी संजय मेरा शिष्य है। जो कुछ महाभारत के
युद्ध की लीला कुरुक्षेत्र में होगी सो संजय तुझे यहां
बैठे ही श्रवण करावेगा। जब व्यासदेवजी के कमल मुख
से यह वचन सुने तब संजय श्री व्यासदेवजी के चरणों
में नमस्कार करता भया। उस ने हाथ जोड़ कर विनय
करी हे व्यासजी महाभारत के युद्ध का चरित्र कुरुक्षेत्र में

होगा और मैं यहां हस्तिनापुर में हूंगा। आप ने जो यह आज्ञा की है कि राजन् तुझ को यहां बैठे ही युद्ध का कौतुक संजय कहेगा सो हे प्रभुजी यहां हस्तिनापुर में कुरुक्षेत्र की लीला कैसे जानूंगा तथा राजा को किस भांति कहूंगा। जब इस प्रकार संजय ने व्यासदेवजी के आगे विनय करी तब श्रीव्यासदेवजी ने प्रसन्न होकर संजय को यह वचन कहा कि हे संजय मेरी कृपा से तुझे यहां ही सब दिखाई देगा, और बुद्धि के नेत्रों कर सूझेगा भी। जब व्यासजी ने यह वर दिया, उसी समय संजय को दिव्य दृष्टि भई और बुद्धि भी उसकी दिव्य भई

अब आगे महाभारत का कौतुक कहते हैं सो सुनो। सात अक्षौहिणी सेना पांडवों की और ग्यारह अक्षौहिणी सेना धृतराष्ट्र के पुत्र कौरवों की। यह दोनों सेना इकट्ठी होकर कुरुक्षेत्र में जा एकत्र भईं। अब राजा धृतराष्ट्र संजय से पूछे हैं॥ धृतराष्ट्रोवाच॥ हे संजय धर्म का क्षेत्र जो है कुरुक्षेत्र तिस में मेरे पुत्र और पांडव के पुत्र तिन्होंने क्या किया सो मुझे कहो। राजा का वचन सुनकर संजय बोलता भया॥ संजय उवाच॥ हे राजन् तेरा पुत्र जो है दुर्योधन तिसने पांडवों की सेना देखी। सो सेना कैसी है भली भांति जिसकी पंक्ति बनी है तिन पांडवों की सेना

को देखकर राजा दुर्योधन अपने गुरुदेव द्रोणाचार्य्य के निकट जाकर यह विनय करता भया। हे आचार्य्य जी देखो तो पांडवों की सेना का समूह और सेना की कैसी भली भांति पंक्ति बनी है और द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न जो तुम्हारा शिष्य है कैसा बुद्धिमान है जिस ने पांडवों की सेना की पंक्ति कैसी भली भांति बनाई है। और जो पांडवों की सेना के मुख्य योधा हैं तिन के नाम दुर्योधन द्रोणाचार्य्य को सुनावे है, इस सेना में बड़ा धनुष धारी भीमसेन, अर्जुन और राजा युयुधान राजा विराट राजा द्रुपद महारथि धृष्टकेतु चेकितान और बड़ा

बलवान् काशी का राजा और पुरुजित कुंतिभोज मनुष्यों
में श्रेष्ठ शैव्य। युधामन्यु और विक्रान्त बड़ा बलवान्
उत्तमौजा सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु और द्रौपदी के पुत्र
सभी महारथि हैं। अब अपनी सेना के जो मुख्य योधा
हैं दुर्योधन तिन के नाम और प्रमाण सुनावे है। हे
आचार्य्य जी अब जो मेरी सेना के मुख्य योधा हैं हे
ब्राह्मणों में श्रेष्ठ द्रोणाचार्य्य जी तिन के नाम सुनो॥
प्रथम तो तुम और भीष्म जी कर्ण, कृपाचार्य्य, समतिंजय,
अश्वत्थामा, विकर्ण, सौमदत्ति और जयद्रथ। इनसे आदि
लेकर और भी योधा हैं सो कैसे हैं जिन्हों ने मेरे निमित्त

अपने जीवन त्याग दिये हैं अनेक प्रकार के शस्त्रधारी हैं युद्ध करने में बड़े प्रवीण और चतुर हैं। हमारी सेना बहुत ग्यारह अक्षौहिणी है और पांडवों की सेना थोड़ी सात अक्षौहिणी है। हमारी सेना का अधिकारी और रक्षक भीष्म है और पांडवों की सेना का अधि-कारी और रक्षक भीमसेन है। अब दुर्योधन अपनी सेना को कहे है जितने तुम हमारी सेना के लोग हो सो सभी भीष्म की रक्षा करने हारे हो और जितने शस्त्र आने के मार्ग हैं, तिन सब मार्गों से भीष्म की रक्षा करो। दुर्योधन के मुख से भीष्म से आदि

कर जो योधा हैं तिन्होंने यह वचन सुनकर दुर्योधन सुख उपजावन अर्थ कौरवों में जो बड़ा वृद्ध भीष्म-पितामह था सो प्रथम सिंह की न्याईं गर्जा, गर्ज कर अपना प्रतापवान शंख बजाया। इस के पीछे दुर्योधन की सारी सेना ने शंख, भेरी, ढोल और नरसिंहें बजाए। दमामे और गोमुखे इत्यादि लेकर और सभी बजंत्र अनेक प्रकार के सारी सेना ने एकत्र बजाए तिन बजंत्रों का इकट्ठा शब्द होता भया। फिर पांडवों की सेना के बजंत्र बजाने को कहते हैं प्रथम तो जिस रथ पर श्रीकृष्ण भगवान जी विराजमान हैं

तिस बड़े रथ की सारी सामग्री कंचन की है और सारी रत्नों करके जड़ित है। जैसे वर्षाऋतु में मेघ गर्जे है तैसे ही उस रथ के पहियों का शब्द है ऐसा तो रथ है। अब घोड़ियों की शोभा कहे हैं जैसा गाय का दूध होता है ऐसा उन घोड़ियों का सुन्दर रंग है और जैसा कार्तिक का फूला हुआ कमल होए है तैसा सुन्दर घोड़ियों का मुख है। वे अति सुन्दर हैं गरदनें जिन की सुन्दर हैं और कान और पूछ अति सुन्दर हैं, और चर्णों में नूपुर स्वर्ण के शोभा देते हैं यह तो घोड़ियों की शोभा कही है। ऐसे सुन्दर रथ पर सारथि

भक्तवत्सल सत्यस्वरूप आनन्द मूर्ति जो हैं श्रीकृष्ण ११
भगवान जी सो विराजमान हैं और योधा की ठाहर भाषा
अर्जुन भक्त विराजमान है तिन्हों ने भी दिव्य शंख भ॰ गी॰
बजाये। प्रथम हृषीकेश जो हैं श्रीकृष्ण भगवानजी तिन्हों अध्या १
ने अपना पांचजन्य नाम शंख बजाया और देवदत्त नाम
शंख अर्जुन ने बजाया। पौण्डर नाम शंख भीमसेन ने
सो भीमसेन कैसा है जिसका उदर बड़ा है और कमर भी
बड़ी है। और अनंत विजयनाम शंख कुंती का पुत्र जो
राजा युधिष्ठिर है उसने बजाया और सुघोषनाम शंख
नकुलने बजाया मणि पुष्प नाम सहदेवने बजाया। महा

१२ धनुष धारी जो काशी का राजा उसने भी शंख बजाया
भाषा और महारथि शिखण्डी ने भी बजाया और धृष्टद्युम्न
भ० गी० ने भी बजाया और राजा विराट ने भी बजाया और
अध्या० १ अपराजित जो किसी से जीता न जाए ऐसा जो सात्यकि
यादव है तिसने भी बजाया और राजा द्रुपद ने भी
बजाया और द्रौपदी के पुत्रों ने भी बजाये और जितने
पांडवों की सेना के राजा थे सब ने शंख बजाये और
महाबाहु जो सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु तिसने भी
बजाया। इन सब ने अपने अपने भिन्न २ शंखबजाए।
उन शंखों का शब्द सुनकर धृतराष्ट्र के पुत्रों के हृदय

विदीरण हुए अर्थात् फट गए और धरती आकाश उनके साथ भर गया। इसके उपरांत धृतराष्ट्र के पुत्रों की सेना अर्जुन ने देखी जब दोनों ओर की सेना के शस्त्र चलने लगे तब अपना धनुष सिर ऊपर फेर कर पांडव अर्जुन जो हृषीकेश हैं श्रीकृष्ण भगवान जी तिनको बोलता भया, हे अच्युत अविनाशी पुरुष जी मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच लेजाकर खड़ा करो तब मैं देखूं हमारे साथ युद्ध करने को कौन २ आये हैं प्राणों को और धन को त्याग कर जो आए हैं तिन सब को मैं देखूं ॥ संजय उवाच ॥ संजय राजा धृतराष्ट्र को

कहे है हे राजन् हृषीकेश जो श्रीकृष्ण भगवान जी हैं
तिनको अर्जुन ने यह वचन कहे तब भक्त वत्सल जो हैं
गोविन्दजी तिस अर्जुन के घोड़े प्रेरकर अर्जुन का रथ
दोनों सेना के मध्य लेजा खड़ा किया। भीष्म और
द्रोणाचार्य के सन्मुख अर्जुन का रथ लेजा खड़ा किया
भीष्म द्रोणाचार्य्य की दाईं बाईं ओर और भी योधा
थे तब कृष्ण भगवान जी अर्जुन को बोले। हे अर्जुन
तेरा रथ मैंने कौरवों की सेना के सन्मुख खड़ा किया
है तू इनको देख। तब अर्जुनने कौरवों की सेना में
जो योधा देखे सो कौन २ देखे। पितामह देखे, गुरु

देखे, मावले, देखे, पुत्र देखे पौत्रे देखे, श्वसुर देखे, और
मित्र देखे। इन दोनों सेना में अपने ही कुटुम्ब देख कर
अर्जुन को बहुत दया उपजी। तब अर्जुन क्रोध के साथ
श्रीकृष्ण भगवान जी को बोलता भया॥ अर्जुनोवाच॥
अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान को कहे है, हे श्रीकृष्ण भगवान् जी इस सेना में मैंने सब अपनेही सज्जन भाई बन्धु कुटुम्बी देखे। जो योधा रण में आये हैं तिनको देख कर मेरा शरीर बहुत दुःख पाता है मुख सूख गया है देह ठौर ते चल गया। मेरे रोम खड़े हो गये हैं, गांडीव नाम धनुष मेरे हाथ से गिर पड़ा है और

त्वचा जल उठी है। मैं खड़ा भी नहीं हो सकता मेरा
मन भी भ्रमे है। हे केशव जी मैं अपशकुन देखता हूं,
और ऐसा निमित्त भी नहीं देखता यह विप्रीत बुद्धि
है, हे केशव जी युद्ध में भाइयों के मारने में अपना
कल्याण भी नहीं देखता। हे श्रीकृष्णजी मैं अपनी जय
भी नहीं देखता और मुझको राज्य की वांछा नहीं
और न सुख की है हे गोविन्दजी राज्य किस काम है और
राज्य के भोग किस काम हैं तिनके सुख निमित्त राज्य
लीजिहै जो कुटुम्ब के लोग सुख पावें सोई कुटुम्ब के लोग
मारकर राज्य लीये से यह सभी कुटुम्ब के लोग योद्धा

एकत्र भये हैं प्राण और धन को त्याग कर युद्ध के निमित्त खड़े हुए हैं सो यह कौन २ हैं गुरुहैं पितामह हैं, पुत्र हैं ताए हैं मावले हैं श्वसुर हैं पौत्रहैं और साले हैं और सम्बन्धी हैं। हे मधुसूदनजी इनके मारने की मुझको इच्छा नहीं इन पर मुझको बड़ी दया उपजी है,हे धरती के धारक श्रीकृष्ण भगवान् जी मैं इनको मारकर त्रिलोकी का राज्य भी पाऊंगा, तो भी न मारूंगा, भूमि के राज्य की कितनी बात है। हे जनार्दनजी धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारने से हमारा कल्याण नहीं क्या विपरीत होगा ? इनके मारने से हमको बड़ा पाप लगेगा। यद्यपि यह महापापी

भी हैं तो भी नहीं मारूंगा। हे प्रभो यह सभी पूजन योग्य हैं और भेटा योग्य हैं इनको मैं नहीं मारूंगा। हे माधव जी सज्जन भाई बन्धु कुटुम्ब इनको मारने से हमको सुख कहां और मुक्ति कहां है? यद्यपि राज्य के लोभ से इनकी बुद्धि अन्ध भई है यह धृतराष्ट्र के पुत्र जो कुछ कुल नष्ट करने में दोष उपजे हैं जो कुछ मित्र साथ कपट करने से दोष उपजे हैं इनको नहीं समझते सो क्या इनकी न्याई मैं भी नहीं समझता। जो कुल के नष्ट करने से पाप उपजे हैं तिन पापों को मैं भली भांति जानता हूं। अब जो पाप कुल के नष्ट करने से उपजते हैं

तिन पापों को अर्जुन भली भांति कहे है। हे जनार्दन जी
जब कुल का नाश कीजे तब जोकुल के पुरातन धर्म चले
आये हैं वह भी नष्ट होते हैं। जब कुल के धर्म का नाश
हुआ तब सारे कुल में अधर्म आ प्रवेश हुआ तब कुल
की स्त्रियां दुराचारिणी हुईं तिन स्त्रियों के वर्णसंकर
सन्तान उपजी वर्णसंकर कहिये परायेपुरुषों की संतान।
जब वर्णसंकर भई तब पिण्ड और जल पितरों को
पहुंचने से रहगया तब तिनके पितरस्वर्ग से गिर पड़े हैं
इस कारण से हे यादववंशियों में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण भग-
वान जी जिसने कुल का नष्ट किया उसने इतने पाप

किए सो यह सब पाप कुल क नष्ट करनेहारे के सिर पर होते हैं। फिर वह मनुष्य उन पापों का फल क्या पाता है सो सुनो। सो प्राणी सदा नरक भोगता है न्याय शास्त्र में मैंने यह श्रवण किया है॥ अब अर्जुन और पछतावे है हाथ बजाकर और सिर को फेरकर कहता है हा! हा! देखो भाई मैंने कैसे पाप का उद्यम किया था राज्य सुख के लोभके निमित्त अपने कुल का नाश करने लगा था अब मैं अपने हाथ में शस्त्र न पकडूंगा और धृतराष्ट्र के पुत्रों के हाथ शस्त्र होंगे, और मैं उनके सन्मुख हूंगा वह मुझ को मारेंगे इस से मेरा कल्याण होगा

संजय उवाच—संजय धृतराष्ट्रको कहे हैं हे राजन्! अर्जुनने यह वचन कहकर धनुषबाण हाथ से छोड़ दिया है और शोक के समुद्र में मग्न होकर मूर्छा खाकर गिर पड़ा॥ इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपानिषधसुब्रह्मविद्यायोगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन सम्वादे अर्जुन विषादयोगोनाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

* प्रथम अध्याय का महात्म *

एक समय कैलाश पर्वत पर महादेव और पार्वती की परस्पर गोष्टि हुई। पार्वतीने पूछा हे महादेवजी आप अपने मन में किस ज्ञान से पवित्र हो जिस ज्ञानके बल से आपको

संसार के लोक शिवकर पूजते हैं और तुम्हारे कर्म यह दिखाई देते हैं मृगछाला ओढ़े अंगों में श्मशानों की विभूति लगाये, गले में सर्प और मुंडों की माला पहिर रहे हो इन में तो कोई कर्म पवित्र नहीं आप मुझे वह ज्ञान सुनावो जिस ज्ञान से तुम अन्तर से पवित्र हो। श्री महादेव उवाच—तब श्रीमहादेवजी बोले हे पार्वती सुन। जिस ज्ञान से मैं पवित्र हूं और जिस ज्ञान से मुझे बाहर के कर्म व्यापते नहीं सो गीता ज्ञान है उसका मैं हृदय में ध्यान करता हूं उस ज्ञान से मुझे बाहर के कर्म व्यापते नहीं। तब पार्वती ने कहा हे भगवन जो गीता

ज्ञान ऐसा है जिसकी आप ऐसी स्तुति करते हो तिस ज्ञान के श्रवण करने से कोई कृतार्थ भी भया है। तब श्री महादेव जी बोले हे पार्वती इस ज्ञान को सुनकर बहुत जीव कृतार्थ हुए और आगे भी होंगे। मैं तुझको एक पुरातन कथा कहता हूं तू श्रवण कर। श्रीमहादेव उवाच एक समय पाताल लोक में शेषनाग की शय्या पर श्री नारायणजी नयन मूंदकर अपने आनन्द में मग्न थे, और श्रीलक्ष्मीजी चरण झसती थी उस समय श्रीलक्ष्मी जी ने पूछा हे श्रीनारयण जी चौदह लोक के तुम ईश्वर हो क्या आपकी भी निद्रा व्यापती है। निद्रा और

आलस्य उन पुरुषों को व्यापता है जो जीव तामसी हैं और तुम तिनों से अतीत हो तुम श्रीनारायण हो और प्रभु हो वासुदेव हो तुम जो नेत्र मूंद रहे हो, यह मुझको बड़ा आश्चर्य्य है । श्रीनारायणोवाच–हे लक्ष्मी मुझको निद्रा आलस्य नहीं व्यापता एक शब्द रूप जो भगवद्गीता है तिस में जो ज्ञान है तिस ज्ञान से मैं आनन्द में मग्न रहता हूं और वह कैसा ज्ञान है जिस के उपजे से यह जीव सदा आनन्द में रहता है कोई क्लेश दुःख इस जीव को व्यापता नहीं जैसे चौबीस अवतार मेरे आकार रूप हैं तैसे यह गीता शब्दरूप अवतार है तिस

गीता में यह मेरे अंग हैं। पांच अध्याय मेरा मुख हैं, पांच अध्याय मेरी भुजा हैं, पांच अध्याय मेरा हृदय और मन हैं, सोलहवां अध्याय मेरा उदर है सताहरवां अध्याय मेरी जंघा हैं अठारहवां अध्याय मेरे चरण हैं सर्व गीता के जो श्लोक हैं सो मेरी नाड़ियां हैं और जो गीता के अक्षर हैं सो मेरे रोम हैं ऐसा जो मेरा शब्द रूपी गीता ज्ञात है तिस के अर्थ में हृदय में विचारता हूं और बहुत आनन्द में प्राप्त होता हूं हे लक्ष्मी तू क्या जानती है तेरे मन में यह होगा जो मैं चरण मलती हूं इस से श्री नारायण जी को आनन्द प्राप्त होता है। लक्ष्मी मैं जिस

आनन्द में मग्न हूं सो गीता ज्ञान है। तब श्री लक्ष्मी जी बोली हे श्री नारायणजी जो ऐसा श्री गीता जी का ज्ञान है तिसको सुनकर कोई जीव कृतार्थ भी भया है सो मुझको कहो तब श्रीनारायणजी ने कहा हे लक्ष्मी गीता ज्ञान को सुनकर बहुत जीव कृतार्थ भएहैं सो तू श्रवण कर। श्रीनारायणोवाच—हे लक्ष्मी गीता के अध्याय का महात्म्य तो पीछे कहूंगा, अब श्लोक कहता हूं॥ श्लोक—सर्व शास्त्रमई गीता सर्व देव मयो हरी। सर्व तीर्थ मई गंगा सर्व धर्म्म मयो दया॥ १॥ मनो जानत पाप पुण्य देही जानत आपदा। गीता सर्व

कृष्णाजानत माताजानेसुपिता ॥२॥ द्वि द्वि लोचनं सर्वानां
विद्वानां त्रयलोचनं। सप्तलोचनं धर्मानांज्ञानी अनन्तलो-
चनं ॥ लक्ष्मी पहले अध्यायका महात्म्य सुन शिवजी
पार्वतीको इस तरह वर्णन करते हैं जिस तरह नारायण
जीने लक्ष्मीको सुनाया था॥ श्रीभगवानोवाच—हे लक्ष्मी
शूद्र वर्ण एक प्राणी था। जोचाण्डालों के कर्मकरता था
और तेल लवणका व्यापार करता था उसने एक बकरी
पाली। एकदिन वह बकरी चरानेको बाहर गया वृक्षों के
पत्र तोड़ने लगा तहांसर्पने उसको डसलिया तत्कालप्राण
निकलगए। मरकर उसप्राणीने बहुतनरकभोगे फिरबैल

का जन्मपाया उस बैलको एकभिक्षुकने मोल लिया। वह भिक्षुक उसपर चढ़कर सारा दिन मांगता फिरे जो कुछ भिक्षा मांगकर लावे वह अपने कुटुम्ब साथ मिलकर खावे। वह बैल सारी रात द्वारपर बंधा रहे उस के खाने पीने की भी खबर न लेवे कुछ थोड़ासा भूसा उस के आगे डाल छोड़े। जब दिन चढ़े फिर बैल पर चढ़ मांगता फिरे कई दिन गुजरे तो वह बैल भूखका मारा गिर पड़ा मरने लगा पर उसके प्राण छूटे नहीं। नगरके लोग देखाकरें, कोई तीर्थ का फलदे कोई व्रत का फलदे पर उसबैल के प्राण छूटे नहीं। एक दिन एक गणिका

आई उसने मनुष्यों से पूछा यह भीड़ कैसी है तो उन्होंने कहा इसके प्राण छूटते नहीं अनेक पुण्यों का फल देरहे हैं तो भी इसकी मुक्ति नहीं होती तब गणिकाने कहा मैंने जो कर्म किया है, तिसका फल मैंने इस बैल के निमित्त दिया। इतना कहते ही बैल की मुक्ति हुई तब उस बैल ने एक ब्राह्मण के घरमें जन्म लिया, पिताने उसका नाम सुशर्मा रखा जब बड़ा हुआ तब उसके पिता ने उसको विद्यार्थी किया तब उसको पिछले जन्म की सुध रहीथी वह जाति सुन्दर हुआ उसने एक दिन मनमें विचार किया जिस गणिका ने मुझको बैल की योनि से छुड़ाया था

तिसका दर्शन करूं। विप्र चलता २ गणिका के घर गया और कहा तू मुझे पहचानती है, गणिका ने कहा मैं नहीं पहचानती तू कौन है, मेरी तेरी क्या पहचान है तू विप्र मैं वेश्या हूं तब विप्र ने कहा मैं वही बैल हूं जिसको तुमने अपना पुण्य दियाथा तबमैं बैल की योनि से छूटाथा अब मैंने विप्रके घर आ जन्म लियाहै, तू अपना वह पुण्य बता तुमने कौन पुण्य कियाहै, गणिका ने कहा मैं अपने जाने कोई पुण्य नहीं किया, पर मेरे घर एक तोताहै वह कुछ सवेरे पढ़ता है, मैं उसके वाक्य सुनती हूं। उस पुण्य का फल मैंने तेरे निमित्त दियाथा तब उस विप्रने तोते से पूछा

कि तू सवेरे क्या पढ़ता है ? तोते ने कहा मैं पिछले जन्म विप्रका पुत्र था पिताने मुझे गीता के पहले अध्याय का पाठ सिखाया था, एक दिन मैंने कहा मुझको गुरुने क्या पढ़ाया है तब गुरु जीने मुझे शाप दिया कि जा रे तू सूआ होजा तब मैं सूआ भया । एक दिन फन्दक मुझे पकड़ लेगया, एक विप्रने मुझे मोल लिया वह विप्र भी अपने पुत्र को गीता का पाठ सिखाता था तब मैंने भी वह पाठ सीख लिया। एक दिन उस ब्राह्मण के घर चोरपड़े उनको धन तो प्राप्त न हुआ मेरा पिंजरा उठा ले गए उन चोरों की यह गणिका मित्रथी। मुझेइसके पास लाए

दिया, सो मैं नित्य गीताजी के पहले अध्याय का पाठ करता हूं, यह सुनती है पर इस गणिका की समझ में नहीं आता। जो मैं पढ़ता हूं वही पुण्य तेरे निमित्त दियाथा, सो श्रीगीताजीके पहले अध्यायके पाठका फल है। तब उस विप्रने कहा, हेतोते तू भी विप्रहै, मेरे आशीर्वाद से तेरा कल्याण हो। सो हे लक्ष्मी इतना कहने से तोते की मुक्ति भई और उस गणिका ने भी भले कर्म ग्रहण किये नित्य प्रति स्नान करे और गीता के प्रथम अध्यायका पाठकरे। इसकरके भले २ विप्र क्षत्रियवैष्णव अतीत उस वेश्या की पूजा करने लगे और विप्र अपने

घर गया श्री नारायण जी ने कहा हे लक्ष्मी जो कोई अजान कर भी गीता का पाठ करे या श्रवण करे तिस को भी मुक्ति मिले और इसका फल कितना कहिये, अतुल फल है। यह पहले अध्याय का महात्म्य मैंने कहा है, और तुमने श्रवण किया है ॥ १ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तराखण्डे गीता महात्म्य नाम प्रथमो अध्यायः सम्पूरणम् ॥ १ ॥

* दूसरा अध्याय चला *

सञ्जय उवाच–सञ्जय धृतराष्ट्र को कहे हैं हे राजा जी दयाकर भरा जो है अर्जुन अश्रुपातों कर पूर्ण हैं

नेत्र जिसके सो रुदन करता है, ऐसा विषाद कर व्याकुल जो है अर्जुन तिसको श्रीकृष्ण भगवानजी बोलते भए। श्रीभगवानोवाच-हे अर्जुन ! ऐसी विखड़ी युद्ध की ठौर तुझको यह दुःख कहां से आया यह नीचों की बुद्धि तुमको न चाहिये। इस से स्वर्ग भी नहीं मिलता और संसार विषय कीर्ति भी न होगी। हे अर्जुन ! यह नपुंसकों जैसी तुझको प्रकृति नहीं करनी चाहिये, और तू तत्वकी बात समझता नहीं, हे परंतप अर्जुन इस हृदय से नीच बुद्धि को त्याग, उठ खड़ा हो। श्रीकृष्ण भगवान के मुख कमल से वचन श्रवण करके अर्जुन कहता है।

अर्जुनोवाच–हे मधुसूदन जी, हे शत्रुनाशक जी हे मेरे सखाजी। भीष्म और द्रोणाचार्य्य यह तो पूजाकेयोग्य हैं इनकी पूजा कीजे और कुछ भली वस्तु इनके आगे भेट रखिये। इनको बाणों का प्रहार किस भांत करिये यह तो बड़े महा गुरु हैं, बड़े महाभाव हैं, इनको मारेसे मेरी कल्याण कहां है। इन्द्रियों के भोगों निमित्त इनका घात करिये तो इनको मार जो राज के भोग भोगिये सो भोग इनके रुधिर साथ लपेटे हुए भोगिये और यह बात भी निश्चय कर नहीं जानी जाती जो सर्वदा हमारी ही जीत होय, पर यह बात मैं निश्चय जानता हूं कि यह

हमारे सन्मुख धृतराष्ट्र के पुत्र जो खड़े हैं, सो इनके मारे से हमारा जीवन भला नहीं, और जी आपने जो कहा नीच बुद्धि विषय मत प्राप्त हो, मैं नीच बुद्धि के पाप को मानता नहीं, और मैं ऐसा मूर्ख हो गया हूं, जो धर्म अधर्म को भी नहीं समझता, जो धर्म मुझको किस करके है और अधर्म कैसे है, हे प्रभुजी मैं शासना योग्य हूं मनसा वाचा कर्मणा कर तुमारी शरण आया हूं। जिस कर मेरी कल्याण होय, सो बात निश्चय कर मुझकोकृपा कर कहो जी। हे प्रभुजी ! ऐसे शोक कर मेरी इन्द्रियां सूख गई हैं। सो बात मैं कोई नहीं देखता जिससे मेरा

शोक दूर होवे जी। हे प्रभुजी ! जो शत्रुओं को मारकर
निष्कंटक सारी भूमि का राज्य पाऊं. और देवलोकजो स्वर्ग तिसकी मैं राज्य सामग्री भी पाऊं, इनको मारकर तो भी मेरा शोक नहीं जाएगा। मैं जो इनको मारुं सो भूमी के राज की कितनी बात है। सञ्जय उवाच-हे राजन्यहबातहृषीकेश जो हैं. केशवजीतिनकोगुड़ाकेश जो है. अर्जुन कहता है। हे गोबिंदजी मैं युद्ध इनके साथ किसी भांत न करूंगा। यह कहकर अर्जुन चुप कर गया। संजय धृतराष्ट्र को कहते हैं। हे राजाजी ऐसे दुःख विषय प्राप्त जो है अर्जुन तिसको कृष्ण भगवानजी हंसकर यह

बात कहते हैं। अब सांख्य शास्त्र का मत अर्जुन को कहते हैं। श्रीभगवानोवाच–हे अर्जुन! जो विवेकी पुरुष हैं, तिनको किसी वस्तु की चिन्ता करना नहीं आई, किसी वस्तु की चिन्ता नहीं करते। जिनकेमरनेकी चिन्ता तूने करी है, सो तेरे कहे मारे नहीं जाते। क्या यह अभी उपजे हैं, पीछे भी थे, औरअबभीहैंऔरआगे भी होवेंगे। यह बोलने हारा आत्मा है, सो अविनाशी और देह की जैसी तीन अवस्था हैं। बाल, यौवन, वृद्धतैसी चौथी अवस्था देह की मरण है, यह तो देहके धर्म हैं, सो विवेकी पुरुष आत्मा को अविनाशी जानते हैं और देहका

मरणा ही धर्म है। यह जानकर बुद्धिमान किसी का शोक
नहीं करते। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! तुझको इन्द्रियों का
ज्ञान प्राप्त भया सो यह ज्ञानसुखदुःखऔरशीतउष्ण का
दाता है। यह सुखदुःख प्राप्तभी होता है और मिट भी
जाता है. अन्तवत है। हे अर्जुन! तू इनको सहार। हे श्रेष्ठ अर्जुन! जिनको इन्द्रियों के सुख और दुःख अपनी निश्चलता से चलायमान न कर सकें तिन्हीं पुरुषों ने अमृतपान किया है. सोई पुरुष अमर हुए हैं। हे अर्जुन! यह जो समस्त देह में आत्मा व्यापा है. तिसको तू अविनाशी जान। यह किसी के कहे मारा नहीं जाता। यह अन्तवत है

शरीरउपजते भी हैं. और विनाश भी होते हैं. और आत्मा नित्यहै. अमर है. बहुड़ कैसा है. निराहार है. कुछ खाता पीता नहीं. और यह आत्मा की मर्यादा भी नहीं. कि कितनीक है। तिस कारण से हे अर्जुन ! युद्ध करके कोई कहे अमुक को मैंने मारा है. सो वह दोनों कुछ नहीं समझते। नाहीं मरा और न किसी ने मारा है। आत्मा कैसा है ? कभी जन्मता नहीं. और मरता भी नहीं है. और यह भी नहीं. जो कभी होता है. कभी नहीं होता है. और यह भी नहीं आत्मा जैसा अजर है. जन्ममरणसे रहित है. नित्य अविनाशी है. शाश्वत है और पुरातन

है और किसी केकहे मारा नहींजाता। शरीर मरतेजन्मते
हैं। तिनका मारना ही धर्म है परन्तु मरना आत्मा का
धर्म नहीं। हे अर्जुन जिन ऐसा अविनाशी आत्मा नहीं
पहिचाना सो पुरुष कहे हैं कि कोई हमने मारिया कि
अमुक ने हमें मारा। देह और आत्मा का संयोग अर्थात्
इकट्ठा होना सो किस भांत है सो सुन जैसे पुराना वस्त्र
उतारा और नया पहिर लिया इसी भांत आत्मा पुरा-
तन देह को छोड़कर नया देह लेता है वहुड़ आत्मा कैसा
है शस्त्रोंकर काटा नहीं जाता, अग्नि विषय जलायानहीं
जाता और जलविषय डूबता नहीं और पवनकर सूखता

नहीं। आत्मा छेदने काटने से रहित है, जलने से रहित है डूबने से रहित है, सूकने से रहित है, अविनाशी है, सर्व व्यापी है. सर्व देहों में भरिया है। इसी से स्थान निश्चल कहिये है। सनातनपुरातन है। बहुड़ कैसा है आत्मा अव्यय है किसी ने देखिया भी नहीं. अचिंत है चितव्या नहीं जाता और अकर्त्ता है कुछ किरत काज भी नहीं करता हे अर्जुन जिन्होंने ऐसा आत्मा पहिचाना है सो किसकी चिन्ता करें। आत्मा तो ऐसा कहिये है जैसा मैंने तुझे कहा है, हे महाबाहो जो तू आत्मा को ऐसा न जाने है. तो भी चिन्ता किसी की नहीं करनी आई जो जन्मया है

सो निश्चय कर मरेगा जो मरे हैं तिनका निश्चय करजन्म है। इस भांत समझ चिन्ता नहीं करनी आई। अब और सुन। यह सभी भूतप्राणी शरीरधारी इनका आदि अंत जाना नहीं जाता जो कहां से आये कहां जावेंगे। बीचही ते देखने लगे हैं जब शरीरों को छोड़ते हैं तो नहीं जानते. जो कहां गए, जिनका आदि अन्त न जाना जाए जो कहां आए कहां को गए. तिनकी चिन्ता क्या कीजे इस भांतिकर भी चिन्ता करनी नहीं आई। अब और सुन जो इस बोलनहारे आत्मा को देखा चाहे सो आश्चर्य ही कर देखे और जो कोई कहे सो आश्चर्य

कर सुने भी आश्चर्य। आश्चर्य क्या कहिये जिसका कुछ निर्णय न किया जाय कि यह क्या? जिसके देह विषय रहते ही धर्म न जानिये जो क्या है इस भान्ति चिन्ता नहीं करनी आई और एक बात इस आत्मा की निश्चय कर जानिये है अविनाशी है इस कारण से हे अर्जुन तू किसी भूत प्राणी की चिन्ता मत कर। तू क्षत्रिय है। युद्ध करना तेरा धर्म है तू अपने धर्म से मत गिर ऐसे युद्ध विषय कल्याण क्षत्रियों को दुर्लभ है। अपनी इच्छाकर यह सभी योधा आए प्राप्त हुए हैं स्वर्ग के द्वार इनके उघड़ पड़े हैं हे अर्जुन इस युद्ध के मार्ग कर सुखेन ही

स्वर्ग को जाय प्राप्त होवेंगे और जो तू यह धर्मका संग्राम न करेगा तो तेरा धर्म भी जाता रहेगा और तेरी कीर्त्ति भी जाएगी। अपने धर्म और कीर्त्ति को छोड़ कर पाप विषे प्राप्त होवेंगा। जो लोग तेरी कीर्त्ति करते हैं सोई लोक तेरी निन्दा करेंगे। जो अर्जुन कुछ नहीं, बल हीन है लोगों में जिसकी निन्दा चली तिसका जीवन से मरण भला है और जो योधा तेरे से डरते हैं तुझको महारथी योधा कर मानते हैं सोई योधा तुझको कहेंगे अर्जुन कुछ नहीं, बलहीन है तुझे बुरे वचन कहेंगें; तेरे पराक्रम की निन्दा करेंगें। इस के उपरांत तुझे बड़ा

दुःख होगा, जो तू युद्ध विषे शरीर छोड़ेगा तो स्वर्ग में जाय प्राप्त होवेगा। जो जीतेगा तो पृथ्वी के राज का सुख प्राप्त होगा। इस लिये हे अर्जुन तू उठ खड़ा हो युद्ध को निश्चय कर। सुख और दुःख को एक समान जान लाभ और हानि को एक समान जानकर युद्धकर तुझे पाप नहीं लगेगा। हे अर्जुन मैंने तुझ को सांख्य शास्त्र का मत सुनाया है। अब बुद्धि योग सुन सो कैसा बुद्धि योग है जिसके सुने समझे से जन्म मरण बन्धन को काट डालेगा मुक्त होवेगा अब प्रथम तू मेरी बुद्धि सुन जो मैं अपने भक्तों साथ कैसा हूं। जो मेरा भक्त

मेरी सेवा पूजा भक्ति स्मरण भूलकर भी करे है आगे को पीछे और पीछेको आगे तो तिसको पाप कुछ नहीं मैं क्योंकरमानूं हूं जो मेरा भक्त मेरे प्रेम साथ मग्न हुआ है इसको सुर्त नहीं है तिसकी साख। जैसे राम अवतार साथ भीलनी की गत। प्रेम साथ जूठे बेर भोजन किये हैं हे अर्जुन मेरी गति,देखने में थोड़ी है क्या थोड़ी एक तुलसीदल अथवा पुष्पमाल मुझे समर्पणकरे अथवा एक बार नमस्कार किया अथवा एकवार मेरा नाम लिया, सो यह देखने को तो थोड़ा है इनका फल बड़ा है क्या फल है जन्ममरणके दुःखको काटकर मेरे अविनाशी पद

विषय लय होता है, यह जो भक्तों साथ मेरी प्रीति हैं सो कही है, और भक्ति का फल भी कहा, अब जैसी मेरे साथ मेरे भक्तों की बुद्धि है सो सुन मेरे भक्तों की केवल एक मेरे चरण कमलों की सेवा साथ प्रीति है, मुझ बिना किसी और दूसरे को नहीं मानते, और मेरे बिना कुछ मुख से और कहते भी नहीं और न सुनते ही हैं केवल दृढ़ निश्चय है, और जिनको निश्चय मेरे साथ नहीं तिन की बात सुन उनकी मत अनेक ओर भरमती फिरे है जिस ओर किसे लगाइ तिस ओर लगी और बहुड़ कैसे हैं जिनका निश्चय मेरे साथ नहीं मीठी मीठी बाणी कर

श्लोकों को पढ़ पढ़ लोगों को सुनाते हैं और देवतों की भक्ति उपदेश करें हैं वह अन्धे मूर्ख अपने आप को पण्डित कहाते हैं। हे अर्जुन! वेद के बाद कर आप भी मोहे हुए हैं और लोगों को भी मोहित करते हैं। फिर कैसे हैं इन्द्रियों के भोगों में जिनकी कामना है उन्होंने स्वर्ग को ही परम पद समझा है। सो स्वर्ग जाके गिर पड़ते हैं सो वह अनिश्चित बुद्धि जिनका निश्चय मेरे साथ नहीं सो वही कर्म्म करते हैं जिनके किये से वारम्बार संसार में जन्म मरण होवे और जिन के करने से कष्ट बहुत होवे और जिस कर्म का तुच्छ फल होवे,

स्वर्ग गये फिर गिर पड़े ऐसे जो बुद्धि हीन हैं जिनकी कामना इन्द्रियों के भोगों में है और संसार में अपनी प्रभुता चाहते हैं इन बातों कर बुद्धि अन्ध भई है जिनकी तिनकी बुद्धि का निश्चय मेरे में लगता नहीं और निश्चय मेरे विषे लागे विना परम सुख जो है समाधि परम कल्याण सो कभी नहीं। अब अर्जुन वेद का वृत्तान्त सुन। वेद की बुद्धि भी तीनों गुणों विषे है। तू इन तीनों गुणों से अतीत है। कैसा है जहां न शीत हो, न उष्ण हो, नाही जन्म मरण हो। ऐसा जो आत्मा सत्य स्वरूप और नित्य है। तू इस के साथ

जुड़। आत्म सुख और इन्द्रियों के भोगों का सुख इन में बड़ा भेद है। तिनका दृष्टांत सुन। जैसे जल का पात्र, कुवां, तालाब, टोबा, नदी इनके विषे एक एक ही कार्य्य होए। जो कूप के निकट जा यत्न करके जल निकाले तब पान कीजै पर भली भांत कूप में स्नान नहीं होता है। वस्त्र भी धोये नहीं जाते और जो तालाब टोबे, नदी में जावें तहां पीने का जल नहीं, स्नान करते, वस्त्र धोते हैं और जब महाप्रलय में जहां सातों ही समुद्र एकही समुद्र हो जाते हैं ऐसे अनन्त जल में भली भांत स्नान भी होय जल पान भी होए वस्त्र भी

धोये इसी भांत आत्मा ब्रह्म साथ जुड़ अनन्त सुख पावे है इस सुख को मेरे उपासक जो हैं ब्रह्मा, नारद, तपस्वी सब जानते हैं, तिस कारण हे अर्जुन ऐसा जो आत्मा का सुख है तिस साथ जुड़, तेरा तो क्षत्रिय धर्म्म है सो कर फल कुछ वांछ नहीं। हार जीत एक समान जानकर युद्ध कर। हर्ष शोकसे रहित हो इसका नाम समता योग कहिये। हे अर्जुन ऐसे युद्धयोग साथ जुड़ कर पाप पुण्य दोनों को काट डार और बुद्धियोग कर। आत्म साथ जुड़। इन का नाम कल्याण योग कहिये है। ऐसे जो विवेकी पुरुष हैं सो फल किसी बात का नहीं वांछते मेरे साथ जुड़ते हैं।

जो कुछ फल बांछते हैं सो नीच मति हैं। हे अर्जुन! जब तू मेरे साथ बुद्धि का निश्चय निश्चल करेगा तब जन्म मरण के बन्धन को काटकर मेरे अविनाशी पद को जा प्राप्त होगा। हे अर्जुन जब मोह के जाल को तेरी बुद्धि तोड़ेगी तब जितने शास्त्र सुने हैं उनसे भी विरक्त होगा। जब तेरी बुद्धि निर्मल होगी तब तू समाधि योग के सुख जानेगा। श्रीकृष्ण भगवान् के बचन सुन कर अर्जुन प्रश्न करे है॥ अर्जुनोवाच॥ हे केशव जी जिसकी निश्चल बुद्धि है तिसके लक्षण कृपा कर कहोजी तिसकी बोली कैसी है, समाधि कैसी है, लोगों साथ बात

भगवतगीता

किस भांत करे है और वह चलता किस भांत है और बैठता किस भांत है। सो मैं कैसे समझूं जो यह निश्चल बुद्धि है। इतना सुनकर कृष्ण भगवान् जी कहे हैं श्री भगवानुवाच ॥ हे अर्जुन ! जिसकी कामना किसी बात करने पर नहीं उठती अपने आत्मा को पाकर संतुष्ट आघाय रहा है तिसकी तू निश्चल बुद्धि जान फिर कैसा है जिसकी देह को दुःख लगे तो चिंता न करे और सुख की वांछा न करे किसी साथ जिसका मोह नहीं और किसी का भय नहीं, किसी साथ वैर नहीं और किसी से क्रोध नहीं होता तिसको निश्चल बुद्धि

जान ॥ फिर कैसी है जिसकी किसी से प्रीती नहीं जिसे भली वस्तु पाकर हर्ष नहीं और बुरी वस्तु पाकर शोक नहीं तिसकी बुद्धि निश्चल जान। फिर कैसा है जैसे कूर्म जो है कच्छू सो अपने हाथ, पाओं मुख सभी इन्द्रियां अपनी खोपड़ी में चढ़ा लेता है तैसेही जिसने सभी इन्द्रियां विषयों से वर्ज के बांध रखी हैं तिसको तू निश्चल बुद्धि जान। हे अर्जुन! यद्यापि विवेकी पुरुष इन्द्रियों को जीतने का यत्न करे है तो भी इन्द्रियां बलवान हैं मन को ठौर से चलाय देती है। अर्जुन तिन सब इन्द्रियों को तू वश में कर किस भांत वशकर सो सुन

मनका निश्चल चेता मेरे में राख। मनही कर इन्द्रियां सुरजीत हैं सोई मन मेरे में निश्चल राख तब इन्द्रियां आपही जीती जावेंगी। जिसके बश इन्द्रियां हैं तिसकी बुद्धि निश्चल जान। और जो मेरे नाम, मेरे ध्यान विना कुछ चितवना [बात करना] इससे मनुष्य का किस भांत कार्य्य बिगड़े है सो सुन। जो मनुष्य विषयों की बात करे तिसका संग कीजे अथवा अपने मन में विषयों का ध्यान कीजे तब विषयों का संग इससे होता है तिस संग से मन में काम से आदि लेकर कामना उपजे हैं काम से क्रोध उपजे है क्रोध से लोभ, लोभ से मोह, मोह

से चैतन्य का नाश होता है जब चैतन्य का नाश हुआ
तब बुद्धि का नाश हुआ बुद्धि नाश होने से इसका नाश
हो जाता है। जब बुद्धि नष्ट हुई तव जैसे और पशु योनि
हैं तैसे यह पशु हुआ । इस कारण से मेरे भक्त संसारी
मनुष्यों का संग कभी नहीं करते और नाम के विना
और बात नहीं करते । नाम की चित्तवना विना कुछ
और संकल्प नहीं करते। यह मेरे भक्तों को मेरी आज्ञा है।
अब अर्जुन मेरे भक्त भोजन छादन का अंगीकार कैसे
करें सो सुन जैसे मेरी आज्ञा से आ मिला तैसे ही
भोग लिया शोक से रहित और जिनके मनका निश्चल

चेता मेरे में होता है तिन पर मैं कृपा करता हूं मेरी कृपा से तिनके तन के और मन के छोटे बड़े जो दुःख हैं उनका नाश होता है। तब उनका मन अति प्रसन्न होता है तिनकी बुद्धि का निश्चय मेरे में होता है। अब जिनकी नास्तिक बुद्धि है तिनकी बात सुन। हे अर्जुन नास्तिक बुद्धि किसको कहते हैं। जो कहते हैं परमेश्वर कहां है? किसने देखा है? तिनकी श्रद्धा मेरे में नहीं लगती मेरे में श्रद्धा लगे विना शांति नहीं और शांति के विना कोई सुख नहीं। नास्तिक बुद्धि सदा दुःखी रहते हैं। हे अर्जुन जो कोई इन्द्रिय विषयों को चले तिसके पीछे मन को न

जाने देवे। जो उसकी बुद्धि कैसी है सो सुन जैसे नौका
जो है बेड़ी। नदी के परले किनारे चलती है और पवन
झखड़ आता है तो नौका को इस तट पर नहीं लगने
देता जिधर किधर जा लगती है। इसी भांति इन्द्रियों के
पीछे मन को न जाने दीजे तिस कारण से हे अर्जुन
प्रथम तू इन्द्रियों को वशकर। जिन पुरुषों ने इन्द्रियों
को अपने अर्थों से वर्ज रक्खा है अपने वश करी हैं तिनकी
बुद्धि तू निश्चल जान। हे अर्जुन अब और सुन मेरे स्मरण
भजन की वार्ता का स्वाद जो है तिसकी संसारी मनुष्यों
को सुर्त नहीं तिनके भाने मेरा भजन रात है मेरी ओर

ते सोरहे हैं और संसार के विषयों में सावधान हैं तिनको यह दिन होते हैं। जिसमें मनुष्य जागते हैं और संयमी जो मेरे भक्त हैं सो तिस ओर सो रहे हैं तिनके माने संसार की बात रात्रि है और मेरे भक्त हैं। मेरे भजन में जागते हैं सावधान हैं मेरा जो पूर्ण भक्त है उसके लक्षण सुन। जैसे समुद्र अपने जल से पूर्ण और निश्चल है तैसे ही मेरा भक्त पूर्ण और निश्चल चाहिये। वह कैसा है जिसकी कामना मेरे भजन बिना किसी बात को नहीं चाहती ऐसा जो निःस्पृह और अवांछी निरहंकार ममता से रहित सो शांति पद में लीन है और शांति

उसमें लीन है। हे अर्जुन यह मैंने तुझको ब्रह्मस्थिति
कही है। जो ब्रह्म में है तिसका यह स्थिति स्वभाव है
जिस को यह स्थित स्वभाव प्राप्त हुआ है सो फिर
माया के मोह से कभी नहीं मोहा जाता क्यों नहीं मो-
हता सो सुन, वह माया के पार निर्वाण ब्रह्म पद में
जा प्राप्त हुआ ॥ इति श्री भगवद्गीता सूपानिषद सुब्रह्म-
विद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन सम्वादे सांख्य योगो
नाम द्वितिय अध्यायः ॥२॥

दूसरे अध्याय का महात्म्य ॥

श्रीनारायणोवाच—नारायण जी कहे हैं हे लक्ष्मी तू

श्रवण कर दक्षिण देश में एक पूर्ण नाम नगर था वहां एक देव सुशर्मा बड़ा धनपात्र रहता था। वह साधु सेवा करता था। एक दिन साधों को कहने लगा हे संत जी मुझको नारायणजी के जानने का ज्ञान उपदेश करो जी जिससे मेरा कल्याण होवे, मैं मोक्ष पद पाऊं। ऐसे संत सेवा करके बहुत दिन बीते तहां एक बाल नामा ब्रह्मचारी आया उस की सेवा बहुत करी और विनय करी हे संत जी मुझे कृपाकर श्री नारायणजी के पाने का ज्ञान उपदेश करो, जिससे मेरे जीवन का कल्याण और मुक्ति होवे। तब बाल ब्रह्मचारी ने कहा मैं तुझे

गीताजी के दूसरे अध्याय का पाठ सुनाता हूं उस के सुनने से तेरा कल्याण होगा। तब देव सुशर्मा ने कहा श्रीगीताजी के दूसरे अध्याय के सुनने से कोई आगे भी मुक्त हुआ है। तब बालब्रह्मचारी ने कहा मैं तुझे एक पुरातन कथा सुनाता हूं, श्रवन कर। एक अयाली बन में बकरियां चराता था और वहां मैं भजन किया करता था। एक दिन रात को अयाली बकरियां लेकर घर को चला। मार्ग में एक सिंह बैठा था एक बकरी सब से आगे चली जाती देखकर सिंह भाग गया। तब वह अयाली यह आश्चर्य देखकर बड़ा चकित हुआ और मैं भी वहां

आखड़ा हुआ। उस चरवाहे ने मुझे देख कर कहा मैंने यह आश्चर्य देखा कि बकरी को देखकर सिंह डर के भाग गया है तुम सन्त त्रिकालज्ञ हो यह वृत्तान्त मुझे कह सुनावो यह क्या चरित्र भया है। तब ब्रह्मचारी ने कहा हे अयाली में तुझे एक पिछली वार्ता सुनाता हूं। यह बकरी पिछले जन्म डैन थी, जाती इसकी सुन्दर थी। जब इसका भर्त्ता मरगया तब यह बड़ी डैन भई जिस सुन्दर लड़के को देखे उसको खालेवे और यह सिंह पिछले जन्म फन्दक था वह पक्षी पकड़ने बाहर गया और डैन भी बन को गई थी। वहां डैन ने उस फन्दक को खा

लिया अब वही फंदक सिंह भया और वह डैन यह बकरी भई सिंह को पिछले जन्म की खबर है इस नामित्त कर बकरी देखकर सिंह ने जाना कि अब भी मुझे खाने आई है तब अयाली ने कहा मैं पिछले जन्म कौन था तब ब्रह्मचारी ने कहा तू पिछले जन्म चंडाल था तब अयाली ने कहा हे ब्रह्मचारी जी कोई उपाय भी है जिसकर हम तीनों ही इस अधम देह से छूटें तब ब्रह्मचारी ने कहा हम तुमारे तीनों का उद्धार करते हैं एक वारता मेरे से सुनों प्रथम तो एक पर्बत की कन्द्रा में एक शिला थी तिसपर श्रीगीता जीका दूसरा अध्याय

लिखा हुआ था मैंने तिन अक्षरों को उस शिला पर देखा था अब मैं तुम्हारे को मन वच और कर्म करके सुनाता हूं तुम श्रवण करो तब ब्रह्मचारी ने गीता जी के अक्षर सुनाए तब उसी समय तत्काल ही आकाश से विमान आए तिन सभों को विमानों पर चढ़ा कर बैकुंठ लोक को लेगये अधम देह से छूटकर देवदेही पाई और देव सुशर्मा भी गीता ज्ञान को सुनकर मुक्त हुआ देवदेही पायकर बैकुंठ को गया तब श्रीनारायणजी ने कहा हे लक्ष्मी जो मनुष्य श्रीगीताजी के ज्ञानको पढ़े सुने तिसका फल क्या वर्णन करिये श्रीगीताजी के श्रवण अथवा दर्शन के करने

से मुक्ती को प्राप्त होते हैं और पाठका फल अधिक है ॥ २ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे सतीईश्वर संवादे उतराखंडे श्रीगीता महात्म्य नाम द्वितयि अध्यायः समाप्ताः ॥ २ ॥

* अथ तीसरा अध्याय *

अर्जुनोवाच ॥ अर्जुन श्रीकृष्ण भगवानजी से प्रश्न करे है। हे जनार्दन जी हे केश्वजी यह जो निर्वाण पद ब्रह्म पद सब से श्रेष्ट है तब घोर भयानक कर्म्म जो यह युद्ध है इस विखे मुझको क्यों जोड़ते हो मिले हुए बचन कहकर मेरी बुद्धी क्यों मोहते हो कहां निर्वाण पद, कहां युद्ध करना एक बात निश्चय कर कहो जिससे मेरा कल्याण

होए। अर्जुन के बचन सुनकर श्रीकृष्ण भगवानजी बोलते भये। श्रीभगवानोवाच॥ हे निरपाप अर्जुन पहिले ही जो मैंने लोगों को ज्ञान योग कहा है योगसाथ जुड़ रहना कहा है कर्म्म योगियों को कर्म्म योग कहा है हे अर्जुन जो कोई सब कर्म्म करने त्याग बैठे कुछ आरम्भ ना करे और कहे कि मैं नेहकर्मी हूं सन्यासी हूं सो पुरुष भूल कर कहे है ना वह सन्यासी है ना नेहकर्मी है जो कोई देहधारी है सो एक क्षण भी निहकर्मी नहीं, माता के गर्भ में आने से लेकर मरने प्रयन्त सदा कर्म ही करे है नेहकर्मी कभी नहीं यह मायाकी रची हुई जो देह है सो इसके वश

मैं नहीं माया के वश है हे अर्जुन अब ऐसे योगी जो हैं वैरागी तिनकी बात सुन। कैसे हैं जो बाहर की इन्द्रियोंको संयम करके रोकते हैं और चौकड़ी मार बैठते हैं और मन कर इन्द्रियों के भोगों की चितवना करते हैं कि होवे तो खावें और पहरें सो ऐसे योगीश्वर पाखंडी हैं। और जो ऐसे हैं सो तिनसे भले हैं कैसे जो बाहर की इन्द्रियों कर कर्मकरे हैं और मनका निश्चल चेता मेरे विषय राखते हैं वह श्रेष्ट हैं तिस कारण से तू क्षत्री है युद्ध करना तेरा धर्म है इन्द्रियों कर युद्ध को कर और मन का निश्चल चेता मेरे में राख हे अर्जुन कर्म कीये बिना देह भी नहीं

रहती और क्या कहीये ॥ श्लोक ॥ जगन्नाथ निमित कर्म्म सो नेहकर्म्म निरबन्धनः । लोककर्मौहठ संदेहं जन्म जन्म वह भोगते ॥ १ ॥ हे अर्जुन जग रूप जो भगवान है सो मैं हूं जो मेरे से अलग कर्म करे हैं सो बंधन में पढ़ते हैं तिस कारण से हे कुंती नंदन अर्जुन मेरी आज्ञा मानकर तूं कर्म्म कर और फल कुछ वांछ नहीं अब यज्ञ मार्गकर जगत पुरुष भगवान का जो जन पूजन करते हैं तिनकी प्रकार कहते हैं सो सुन । हे अर्जुन जब ब्रह्मा जीने इस संसार को उत्पन्न कीया तब सर्व यज्ञ करने की रचना बनाई और यज्ञों की सामग्री

भी उपजाई और ब्रह्मा जी ने मनुष्यों को यह आज्ञा करी जो हे मनुष्यो इन यज्ञों की सामग्री कर महां पुरुष भगवान को पूजो और साथ ही जो भगवान के अंग हैं सब देवता तिनकों भी पूजो और जो कुछ तुम वांछोगे सो देवता तुमको मन वांछत फल देवेंगे सो मनुष्य देवतों को पूजने लगे और मनुष्यों की कल्याण देवतों से है ॥ श्लोक ॥ जो भजन करहिं प्राणी लाए पूजा देवता । ते मुक्के सगल पापहिं एक वचन वच कर्म्म यह ॥ १ ॥ अनहोए पूजा करहिं भोजन ते मनुष्य पाप करें । क्षेत्र बाड़ी जीयं मृतक ते पाप आए भोगते॥२॥

हे अर्जुन देवता मनुष्यों के मन वा बांछत फल देने को सामर्थ हैं और मनुष्यों की कल्याण देवतों से है जो कोई मनुष्य देवता के दीये बिना आपही भोजन करे सो देवता का चोर कहिये है और जो मनुष्य मुझको भोग लगायकर मेरा प्रसाद जानकर अन्न भोजन करे है सो सर्व उपाधि से मुक्त है और जिस प्राणीने मेरे स्मर्पण किये बिना आप ही भोजन करलीया है सो प्राणी सर्व पापों को भोगता है कौन पाप सो सुन जो जीव खेती करते समय मूए हैं और चक्की विषे उखली विषे चुल्हे विषे बुहारी साथ पैरों चलते समय सोते समय इन ठाहरों

विषे जो जीव घात होते हैं तिनका पाप तिनके माथे पर होता है । जो प्राणी मेरे स्मरपे बिना आप ही भोजन करे है अब हे अर्जुन परमेश्वर के पूजने से संसार का जो कल्याण होता है सो सुन । सब शरीरधारी जो भूत प्राणी हैं तिनकी उत्पत्ति अन्न से होती है प्रथम यह पुरुष अन्न खाते हैं तिससे वीर्य्य होता है और जो स्त्रियां अन्न खाती हैं तिससे रक्त उपजे है तिसकी रक्त और वीर्य्य के संग देह की उत्पत्ति होती है इस प्रकार अन्न से देह की उत्पत्ति होती है और अन्नकी उत्पत्ति मेघ से होती है मेघ यज्ञ करने से उत्पन्न होता है और यज्ञ

कर्म्म कीये से उपजे है और यज्ञ करने की विधि वेदों से जानी जाती है और वेद परिब्रह्म विष्णु से उपजे हैं तिस कारण से सर्व व्यापक जो है ब्रह्म सो नित्य ही यज्ञ करके पूजने योग्य है जिसके पूजन कीये से संसार की कल्याण होती है जो ऐसे कल्याण रूप पारब्रह्म को पूजे नहीं और अपनी इन्द्रीयों के लीये रसोई करते हैं तिनका जीवना निष्फल है । अब जिनकी प्रीति आत्मा साथ लगी है जो आत्मा लाभी हैं और जो आत्मा के लाभ को पाकर त्रिप्त अघाए रहे हैं और जो आत्मलाभ कर संतुष्ट भये हैं तिनको कोई कर्म्म करना नहीं चाहिये

तिन को किसी भले बुरे कर्म्म कीये का फल नहीं, न कीये से कुछ पाप भी नहीं, कीये से कुछ पुण्य भी नहीं, जो प्राणी आत्मा के लाभी हैं तिनका संसार के मनुष्यों के साथ कुछ प्रयोजन नहीं रहा। अब अर्जुन फिर कर्म्म कहे हैं सो सुन जो भले कर्म्म हैं स्नान से आदि लेकर कर्म नहीं त्यागने चाहिये जो सत्त कर्म करे और फल की वांछा न करे सो पुरुष इन सत कर्मों के मार्ग कर पारब्रह्म को प्राप्त होते हैं हे अर्जुन भले कर्म जो हैं सत्त कर्म स्नान से आदि लेकर इन सत्तकर्मों को करते करते राजा जनक विदेही से आदि लेकर बहुत मनुष्य सिद्ध

अवस्था को प्राप्तहुएहैं तोभी लोगों की कल्याण के निमित्त कर्म करतेही रहे जो कर्म श्रेष्ट मनुष्य करते हैं तिनको देख करवही कर्म और भी लोग करते हैं इसकारणसे महानुभाव विदेह अवस्था विषे प्राप्त भएहैं तो भी सत्कर्म्मनहीं त्यागते क्यों जो और लोगों को सिद्ध अवस्था नहीं प्राप्त हुई यदि सत्त कर्मों का त्याग करेंगे तब लोगों के सब कर्म भ्रष्ट होजावेंगे पशू पंछी जून की भांत मनुष्य होवेंगे इसी कारण से महां भाव शुभ भाव करते रहते हैं हे अर्जुन मुझको देख जो मुझको त्रिलोकी विखे किसी कर्म करने के साथ प्रयोजन नहीं । जो कुछ मैं सत्त कर्म

करूंगा तब मुझको कुछ पुन्य न होगा और अनकीये
से कुछ पाप न होगा पर मैं लोगों के कल्याण के नमित्त
स्नान गायत्री सन्ध्या तर्पण करता हूं और ब्राह्मणों
की, गौ की माता पिता की सेवा करता हूं और भी
शुभ कर्म करता हूं लोगों को सत्कर्म सिखाने के निमित्त
और मैं जो आलस करके सत्कर्मों को त्यागकर बैठूं
तब मुझको देखकर सभी लोग सत्कर्मों का त्याग कर
बैठेंगे। हे अर्जुन जिस मार्ग में चलता हूं सो मुझको देख
कर मेरे मार्ग विखे समस्त मनुष्य चले हैं और जो तू
कहे कि लोगों के निमित्त यह कर्मों का जंजाल क्यों करते

हो लोगों के साथ तुम्हारा क्या प्रयोजन है तिसका उत्तर सुन हे अर्जुन यह मनुष्य नारायण की मूर्त्ति हैं जब यह सभी कर्म भ्रष्ट होवें तव जैसे और पशू हैं तैसे ही मनुष्य भी पशुवत होजावें तब अपनी प्रजा की हानि होने से अपनी भी हानि होएगी इस निमित्त अपनी प्रजा के कल्याण के लिये सत्कर्म करता हूं और प्रयोजन मुझको कुछ नहीं तिस कारण से हे अर्जुन जो कोई विवेकी पुरुष होवे सो सिद्ध अवस्था को भी प्राप्त भया है तो भी चाहिये जो लोगों की कल्याण निमित्त सत्कर्मों का त्याग न करे और अपनी बुद्धि सिद्ध अव-

स्था को प्राप्त हुए और संसारी लोगों को भेद न देवे । और लोगों को यह भी न कहे जो सत्त कर्म करने कुछ नहीं सत्कर्मों की निंदा न करे क्योंलोग तो सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए नहीं और सत्कर्मों का त्याग कर देवें तब कर्म्म भ्रष्ट होजावेंगे इसी से जो प्राणी सिद्ध अवस्था को प्राप्त भये हैं वह पुरुष और संसारी लोगों को सत्कर्मों से भ्रष्ट न करें यह मेरी आज्ञा है सिद्ध को भी सत्य कर्म्म करने चाहियें । अब अर्जुन और सुन जिन पुरुषों के भले बुरे कर्म्म होते हैं सो यह देह इन्द्रियों और मन माया प्रकृति से उत्पन्न हुवे हैं और माया भी

यही अहंकार है और जो अहंकार बुद्धि कर पुरुष मूढ़ हुआ है जो मनुष्य अहंकार से कहिता है कि यह कर्म मैंने किया है हे महाबाहु अर्जुन इन गुणों और कर्म्मों का तत्व तूं मुझसे श्रवण कर यह देह इन्द्रियां जैसे २ इनके स्वभाव हैं तैसा तैसा कार्य्य इनसे होता है और आत्मा साक्षी भूत है और कर्त्ता है गुणों विषे वरते है इतना समझकर हे अर्जुन तूं न्यारे का न्यारा रहो अब अर्जुन और सुन। श्लोक। भाव अभावी कर्म्मकर राखे रह प्रभु चीत। उश्न शीत व्यापे नहीं कारण करते कीत॥ १॥ आत्म है सर्वत्र में घट २ भोगी आप।

सब में अधिकारी प्रभु तिस ही को तूं जाप ॥ २ ॥ मन राखहु चरणारविंद त्यागो आशा रीत । हो अचिंत पेखो दरस निरवासन प्रभु कीत ॥ ३ ॥ चर्ण केवल मन मैं बसे इच्छा थरहू न कोय । चिंता ममता त्यागकर बुद्धि सफल यूं होय ॥ ४ ॥ यह मार्ग तुझको कहुं सुनियो हित चित्त लाय । प्रीत भावकर महि वसे दुःख पाप सब जाय ॥ ५ ॥ जो यह कथा माने नहीं निन्दा दुतीया जान । ते अज्ञानी अन्ध मत बांधे किरत कमान ॥ ५ ॥ हे अर्जुन तू सर्व अपने कर्म मुझ विषे अर्पण कर । और जितने देह धारी आत्मा हैं सारे, तिनका ठाकुर प्रभु जो मैं हूं । इस

6

कारण से मेरा नाम अध्यात्म है अध्यात्म कहिये सर्व
आत्मा का अधिकारी ऐसा ईश्वर जो मैं हूं, सो तू मनका
निश्चल चेता मेरे में राख। और निरास हो आशा किसी
फलकी ना कर। और चिन्ता ममता को त्याग कर युद्धकर
यह मार्ग जो मैंने तुझको कहा है सो इस मेरे मार्गको श्रद्धा
संयुक्तमन विषेरखकर मुझको निरसंशयही आय मिलेगा।
और जो प्राणी इस मेरे मार्ग को मानते नहीं और निन्दा
करते हैं सो कैसे हैं सो सब से अज्ञानी अन्ध मत मूढ़ मूर्ख
हैं। अब अर्जुन और सुन जैसी प्रकृति का जीव माया ने
उत्पन्न किया है तैसाही तिससे कर्म होता है सभी भूत

प्राणी स्वभावके वस हैं अपने वस नहीं। इस बात को समझ कर ना किसी को भला कहिये और बुरा भी ना कहिये। कोई भला करे कोई बुरा सबका साखी भूत होकर संसार का कौतुक देखे। इस से सदा आत्मपद विषे लीन रहे। अब अर्जुन और सुन यह असाधरूप जो इन्द्रियां हैं तू इनके भोगों की और मत जा यह हर्ष शोक की दोती हैं और जैसे बाट मारने हारे चोर होते हैं तैसेही इस मेरे मार्ग के मारने हारी यह इन्द्रियां चोर हैं। तू इनके भोगों की ओर मत जा। श्रीकृष्ण भगवान के वचन सुनकर अर्जुन बोलता भया ॥ अर्जुनोवाच ॥ हे यादवों के पति

श्रीकृष्ण भगवान जी इस बात को तो सभी मनुष्य जानते हैं कि पाप किये से दुःख मिलता है। हे प्रभुजी पाप कर्म इन मनुष्यों से बल कर कौन करावे है सो मुझको कृपा कर कहो जी ॥ श्रीभगवानोवाच ॥ हे अर्जुन काम और क्रोध इनकी रजोगुण से उत्पत्ति है। इनका आहार भी बहुत है यह कभी तृप्त नहीं होते और यह पाप रूप हैं मनुष्यों के यह शत्रु हैं। यह दोनों मनुष्यों को बांधकर पाप कराते हैं॥अर्जुनोवाच ॥ हे भगवान इनका वृत्तान्त मुझको विस्तार पूर्वक कहो जो इनका जन्म किस प्रकार होता है और जन्म कर बड़े कैसे होवें और इनका आत्मा

कौन है इनका आचार कैसा है सब विस्तार पूर्वक कहो॥ अब इनका उत्तर श्रीकृष्ण भगवान जी कहते हैं श्री भगवानोवाच॥ हे अर्जुन यह सूक्ष्म शत्रु हैं। और देह इन्द्रियां मन इन विषे इनका निवास है। सूक्ष्म रूप धार कर यह देह विषे आगए हैं यह तो इनका निवास कहा है। अब इनकी उत्पत्ति सुन। भले स्वाद खाए से उत्तम सुगन्धता के सूंघने से और भले वस्त्र पहरने से काम की उत्पत्ति होती है। अब क्रोध की उत्पत्ति सुन अहंकार अभिमान करना कि मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं इस से क्रोध की उत्पत्ति होती है। हे अर्जुन यह बड़े दुष्ट हैं।

अब इनकी करतूत सुन। पहिले हर्ष प्रसन्नता से काम उपजया तब अपनी स्त्री से संग किया जब वीर्य्य गिरा तब मृतककी न्याईं चिंतातुर होए कर गिर पड़ा सोए गया यह अपनी स्त्री के संग किये का फल है। फिर संतान हुई तिस से अति मोह को प्राप्त होय के अज्ञान अन्धकार में अन्धा हुआ जन्ममरण का अधिकारी हुआ यह अपनी स्त्री के संग का फल है। और कदाचित परनारी साथ प्रीत करी या संग किया किसी दूसरे पुरुष ने देखा तो भी खराबी। राजा के हाथ आया तो दंड देता है धन छीन लेता है कैद करता है राज दंड भरना पड़ा परलोक

की शासना बहुत सहारनी पड़ी। जम जंदार शासना देवेगा परलोक बिगड़ गया बाकी कुछ ना रहा। यह तो काम की करतूत कही अब हे अर्जुन क्रोध के लक्षण और करतूत सुन। अहंकार मन्द कर्म्म से अन्धभरी जो मनुष्य की देह है विषयों के वास्ते या दूसरे किसी कार्य्य के वास्ते किसी को मारया या किसी कष्ट दिया तब राजा ने पकड़ कर खूब दण्ड दिया बांधिया पदार्थ छीन लिया और परलोक में जम की शासना सहेगा। यह क्रोध की करतूत कही, हे अर्जुन काम और क्रोध दोनों भय के दाता हैं। बारम्बार मनुष्य को मोहते भ्रमावते

रहते हैं। फिर कैसे हैं यह दोनों पापरूप हैं, और निपट नीच हैं, धनंजय अर्जुन यह मनुष्यों के सदा ही छिद्र देखते रहते है। जैसे चोर अपना समय देखता रहता है जो कब घर का धनी सो जावे कब मैं द्रव्य लेऊं इसी भांत छिद्र देखते रहते हैं। और रजोगुण से इनकी उत्पत्ति है और आत्माके मारने को सावधान हैं मनुष्यों में यह ही दोनों उपद्रव हैं। जिस प्रकार मेरे जानने का ज्ञान इन्हों पर छाया है सो सुन। जैसे धूएं कर के अग्नि छादी जाए है ज्यों आरसी मैल करके अछादी जाए और जैसे जाली विषे लपेटा हुआ बालक जन्मता है इसी भांत इन दोनों

ने मेरा ज्ञान अछाद लिया है, और नित्यही यह ज्ञान के बैरी हैं, हे कुन्ती नन्दन अर्जुन दोनों काम और मद कर अपूर रहे हैं पूर्ण कभी नहीं होते। और पापरूप हैं इन्द्रियां और मन और बुद्धि इनके विषे कामका निवास है इनमें बसकर मनुष्यों को मोहित करें हैं तिस कारण से हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन प्रथमे तूं इन्द्रियों को वशकर। इन्द्रियों से आदि लेकर मन बुद्धि चित्तको वश कर, यह पापरूप हैं ज्ञान और विज्ञान को नाश करने हारे हैं ॥ अब जिस प्रकार इन्द्रियां जीतियां जावें सो सुन। यह देह जड़ है इस विषे जो चैतन्यरूप इन्द्रियां

हैं । और इन्द्रियों से परे मन है मनकर इन्द्रियां सुरजीत हैं मन से परे बुद्धि है बुद्धि से परे आत्मा है । सो बुद्धिकर तिस आत्मा के ध्यान साथ जुड़कर हे महाबाहू अर्जुन इसका रूप बड़ा बलबान हो जावे है तिस अपने बलकर महा दुष्ट काम क्रोध तिनको मार डाल तिनको मारकर जय को प्राप्त हो ॥ इति श्रीभगवत गीता सूपनिषध सुब्रह्म विद्यायोग शास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे कर्म योग नाम तृतीया अध्यायः ॥ ३ ॥

* अथ तीसरे अध्यायका महात्म्य *

श्रीनारायणोवाच ॥ हे लक्ष्मी एक शूद्र महां मूर्ख

अकेलाही एक बन विषे रहिता था बड़े अनर्थों कर कितना
ही द्रव्य उसने इकट्ठा किया था किसी कारण कर यूंही वह
पदार्थ जातारहा पदार्थ के जाने से वह शूद्र बहुत चिंतावान
रहे और लोगों से पूछे कोई ऐसा कर्म बताओ जहां पृथ्वी
में द्रव्य होवे मैं निकाल लूं मुझे फिर वह पदार्थ हाथ
आवे। किसी को कहे कोई अंजन बताओ जिसे नेत्र म
पाय कर पृथ्वी का पदार्थ निकालूं। किसी ने कहा मास
मदरा खाया पिया कर। वह वही खोटा कर्म करने लगा
चोरी करने लगा एक दिन धन की लालसा कर चोरी
करने गया रस्ते में चोरों ने मार दिया इस मृत्यु कर

मरा हुआ प्रेत की जून पाई । वह एक बट के वृक्ष पर रहा करे बड़ा दुखी हुवा हाय हाय करके रुदन करे। और विरलाप करे । ऐसे हाहाकार करता रहे कहे कोई ऐसा भी होवे मेरे कुल में जो इस अधम देह से छुड़ावे ऐसे हाहाकार करते करते बहुत दिन बीते। इतने में उस शूद्र की स्त्री से पुत्र जन्मा जब उसका पुत्र बड़ा हुआ तो एक दिन अपनी माता को उसने पूछा मेरा पिता क्या व्योपार करता था और देहांत किस प्रकार हुआ है तब उसकी माता ने कहा हे बेटा तेरे पिता के पास पदार्थ बहुत था सो यूंही जाता रहा । वह धनके चले जाने से बहुत

चिंतावान रहे। एक दिन बन को गया कहे किसी का धन
चुरालाऊंगा मार्ग में चोरों ने मारडाला तब उसने कहा हे
माता उसकी गति कराई थी? तब माताने कहा नहीं। फिर
पूछा हे माता उसकी गति करावनी चाहिये। उसने कहा
भली बात है। तब पंडितों से पूछने गया जाकर प्रार्थना करी
हे स्वामी मेरा पिता एक दिशा में जाकर मृत्यु हुआ है।
इसका उपाय कृपा कर कहिये जो उसका उद्धार होवे।
तब परिडतों ने कहा तूं गयाजी जाकर उसकी गया करा
तब तेरे पितरों का उद्धार होगा। तब उसने आज्ञा मान
कर माता की आज्ञा लेकर गया को गमन किया। प्रयाग

राज का दर्शन स्नान करके फिर आगे को चला रास्ते
में एक वृक्ष के नीचे बैठा वहां से उसको बड़ा भय प्राप्त
हुआ। यह वृक्ष वही था जहां उसका पिता प्रेतकी जून
में प्राप्त हुआ था। उसी जगह में चोरों ने उसको मारा
था। तब उस बालक ने अपना गुरमन्त्र पढ़ा और एक
उसका और भी नियम था जो वह एक अध्याय श्रीगीता
जी का भी नित्य पाठ किया करता था उस दिन उसने
श्रीगीताजी के तीसरे अध्याय का पाठ किया उस वृक्ष
के तले बैठ कर। उसके पिता नें प्रेत की जून में सुना
सुन के उसकी प्रेत देह छूट गई! देव देही पाई स्वर्ग से

विमान आए। वह विमान पर चढ़कर उसके सामने आया
आकर आशीर्वाद दिया। और कहा हे पुत्र मैं तेरा पिता
हूं जो मर कर प्रेत हुआ था इस तेरे पाठ श्रवण करने
से मेरी यह देव देही हुई। अब मेरा उद्धार हुआ है तेरी
कृपा से स्वर्ग को जाता हूं। अब तूं गयाजी में अपनी
खुशी से जा मेरा उद्धार होगया है। वहां जाय के भी
तुमने मेरा उद्धार करना था जो तैंने यहां पाठ मुझको
सुनाया है इसी से मेरा कल्याण हुआ। इतना सुन कर
पुत्र ने कहा हे पिता जी कुछ और आज्ञा करो जो
मैं आप की सेवा करूं तब उस देव देही ने कहा हे

पुत्र देख मेरी सात पीढ़ियां पित्र नरक में पड़े हैं बड़े दुःखी हैं अब तूं श्रीगीताजी के तीसरे अध्याय का पाठ कर के उनको फल दे। वह इस दुःख से मुक्ति पावें वह तेरे बड़े हैं नरक से निकल कर स्वर्ग में पहुंचेंगे। इतना वचन कहकर वह देव देही स्वर्ग को गया तब उस बालकने वहांही तीसरे अध्याय का पाठ किया सभ पित्रों को पुण्य देकर वैकुंठगामी किया तब राजा धर्मराजजी के पास यमदूतों ने जाकर कहा हे राजा जी नरक में तो बहुत से लोक नहीं हैं नरक में तो उजाड़ पड़ी है जो कई जन्मों के पाप कर्मी थे तिनको विमानों पर बैठाय कर

श्रीठाकुरजी के पारषद लेगये हैं इतना सुनते ही धर्मराज ६७
उठकर श्रीनारायणजी के पास गए । जहां पाताल में भाषा
शेषनाग की शय्या बना के श्रीनारायणजी सोए हुए भ० गी०
थे । और श्रीलक्ष्मीजी चरण झस रही थीं । वहां जा अध्या २
राजा ने दण्डवत की और हाथ जोड़कर कहा हे त्रिलोकी
नाथ श्रीमहाराज जी । जो जीव जन्मजन्मान्तर के पापीथे
उनको तुम्हारे पारषद विमानों पर चढ़ा के वैकुंठ को
ले गए हैं तब नरकों का भुगाना यह दंड किसको देवें ।
और किस प्रकार दंड दिया करें । तब श्रीनारायणजी ने
बहुत प्रसन्नहोकर कहा हे धर्मराज तू दुःखी मत हो । तू ७

अपने मन में कुछ बुरा न मान मैं तुझे एक वृत्तान्त कहता हूं, श्रवण कर । यह जो जीव पापी थे इनका कोई पिछला धर्म उदय हुआ है। उस अपने धर्म कर कई महा पापी जीव वैकुंठ को गए हैं और यह एक आज्ञा मैं तुझे देता हूं जो जीव श्रीगीता जी का पाठ करे अथवा श्रवण करे या कोई किसी को पाठ किए का फलदान करे उन जीवों को तू कभी नरक न देना यह तुझ को मेरी आज्ञा है। यह बात सत्यकर निश्चय से सुन याद रख इतना सुनकर धर्मराज अपनी पुरी को पधारा। आकर अपने दूतों को बुलाकर कहा, हे यमदूतो जो प्राणी श्रीगीता

जी का पाठ या श्रवण करे या पाठ किये का किसी को
पुण्य देवे तिस प्राणी को तुम कभी नरक में न डालना।
गीता जी के पाठ अथवा श्रवण कीये से पापी जीव भी
वैकुंठ को प्राप्त होंगे। जो जीव श्रीगीताजी का पाठ करे
या श्रवन करे तिस का फल कहां तक कहे कहने में नहीं
आसक्का। तब श्रीनारायणजी ने कहा हे लक्ष्मी यह तीसरे
अध्याय का फल मैंने तेरे ताईं कहा है सो तूने सुना है॥
इती श्रीपद्मपुराने सति ईश्वर संवादे उत्राखण्डे श्रीगीता
महात्म्य नाम तृतीयो अध्यायः॥ ३॥

---

* अथ चतुर्थ अध्यायः *

श्रीभगवानुवाच–श्रीकृष्ण भगवान जी अर्जुन को कहे हैं। हे अर्जुन यह जो तुझको ज्ञान उपदेश किया है सो पहले मैंने सूर्य्य को कहा था सो यह योग अविनाशी है। सूर्य्य ने अपने पुत्र मनु को कहा था, मनु ने इक्ष्वाकु को कहा था। यही ज्ञान योग परम्परा पुरातन चला आया है। इसको राजऋषि जानते हैं। इसको समझ कर राज करते हुवे भी परम पद को प्राप्त होते हैं। दृष्टांत आवत हर्ष न उपजता, जावत शोक न होय। ऐसी करनी जो रहे, ग्रह बन योगी सोय। हे परंतप अर्जुन

इस योग को चिरकाल व्यतीत होगया। अब पुरातन होगया, संसार से नष्ट होगया, मिट गया है। अब वही पुरातन योग तेरे प्रति कहता हूं। यह योग वार्ता तेरे प्रति इस लिए कहता हूं कि तूं मेरा भक्त है, और मेरा सखा है, सो चित्त एकाग्र कर सुन। आई वस्तु का हर्ष न कर चली जावे उसका शोक न कर एक ही जैसा जान। हर्ष शोक से असंग रहो चित्त को स्थिर राख॥ अर्जुनोवाच–अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् जी के यह वचन सुन कर प्रश्न करता है॥ हे महाप्रभो! तुम्हारा जन्म तो अब वासुदेव के घर हुआ है और

सूर्य्य पुरातन है आगे का प्रकट हुआ है तुम ने
कब सूर्य्य को यह ज्ञान दिया था सो कृपा कर मुझको
समझाओ जी । अर्जुन के प्रश्न का उत्तर श्रीकृष्ण
भगवान जी कहते हैं श्रीभगवानुवाच—हे अर्जुन तेरे
और मेरे बहुत जन्म व्यतीत हुए । सो मैं उन सब
जन्मों को जानता हूं तू नहीं जानता ! सो कैसा हूं जन्म
मरण से रहित हूं, अविनाशी हूं, आत्मा हूं । समस्त भूत
प्राणियों का ईश्वर हूं, प्रभु हूं। मैं ऐसा हूं और अपनी माया
के पीछे होकर जन्म भी लेता हूं, माया का पीछा क्या
कहिये जैसे कोई राजा अपने राज्य वस्त्र उतार के और

अन्य वेश करने से लोगों द्वारा पहचाना नहीं जाता इसी
भांत मैं देह धारकर संसार में आया हूं। हे अर्जुन मैं
देह धारी नहीं, देह स परे हूं मेरा देह शिवरूप है। जैसे
मिश्री की झारी हो तिस में मिश्री का शर्बत भी घोला
हुआ हो तैसे मेरी देह और आत्मा एक ही स्वरूप हैं।
हे अर्जुन मैं कब और किस निमित्त जन्म लेता हूं सो
सुन। जब धर्म विषे ग्लानी उपजे है अधर्म उठ कर
धर्म के मार्ग को अछाद लेवे तब मैं प्रकट होता हूं।
साधों की रक्षा निमित्त और दुष्कृति जो पापी जीव है
तिनको नाश करने के निमित्त आत्मा परमात्मा को

वधावने के निमित्त मैं युग २ में अवतार धारण करता हूं अब जो मेरे दिव्य जन्म और कर्म हैं तिनको जान सो दिव्य क्या कहिये। जैसे और देहधारी रक्त बिंद से उपजे हैं तैसे मेरी देह नहीं। जैसे और जीव कर्मों के बन्धन साथ बन्धे देह लेते हैं जैसा जीवों ने कर्म किया है तैसे ही देह पावे हैं। हे अर्जुन मैं ऐसे जन्म नहीं लेता मेरा जन्म स्वच्छ है अपनी इच्छा से प्रकट होता हूं। जन्म जो मेरे ऐसे दिव्य ज्योति रूप हैं और मेरे कर्म भी ऐसे दिव्य हैं। जो मैं करता हूं सो और किसी से करे नहीं जाते। जो मन की चितवना कर भी किये जायें तिनका

दृष्टान्त दिखावे हैं। प्रह्लाद भक्त की रक्षाहेत नृसिंहरूप होकर स्तंभ से निकल कर प्रकट होता भया तो कहो किसी ने जाना भी नहीं। हिरण्यकशिप की छाती वज्र से भी कठोर थी सो कोमल घास की न्याई नखों से विदीर्ण कर दी, फाड़ डाली। और गोकुल के भक्तों की रक्षा निमित्त सात दिन गोवर्धन पर्वत एक हाथ की नन्नी उंगली पर धारण किया और जो मैंने अनेक कर्म्म किये हैं सो दिव्य ही किये हैं। जैसे कोई मनुष्य मेरे जन्म और कर्म्म जो हैं दिव्य तिनको जाने सोई फल पावे सो भी सुन हे अर्जुन सो मनुष्यदेह को त्याग कर मेरे परमानन्द

अबिनाशी पद में जा प्राप्त होता है । फिर जन्म मरण के बंधन में नहीं आवे । अब अर्जुन जिसको मेरे चरणार-विन्द की भक्ति उपजी है तिसकी बात सुन । कई बहुत जन्म वैरागी होकर बीते और कई जन्म बीतते भए । वैरागी होकर, निर्भय होकर क्रोध रहित होकर और मनका चेता मेरे विषे रखकर बहुत जन्म किसी भांत मेरी उपासना करता रहा हो इन साधनों से जिनका मन पवित्र हुआ हो, तिनको मेरी प्रेम भक्ति उपजती है । जिनको प्रेम लक्षण भक्ति उपजी है हे अर्जुन तिनके रोम रोम में आ निवास करता हूं । अब अर्जुन और

सुन। जिस प्रकार कोई मेरा भजन स्मरण करे उसी
प्रकार मैं तिस का स्मरण भजन करता हूं और मनुष्य
सब ही जिस जिस प्रकार से मैंने लगाए हैं तैसे ही वह
लग रहे हैं। अब और सुन मैं अपने भक्तों के साथ ऐसा
हूं जिस प्रकार मेरे भक्त मुझ साथ हैं और जो तू कहे
सभी मनुष्य तुम्हारा भजन क्यों नहीं करते और देवता
की उपासना क्यों करते हैं। तिनकी बात सुन देवता
की उपासना करके मनुष्य फल मांगते हैं जो मुझे पुत्र
मिले, धन मिले, सो देवता तिनकी कामना पूरी करते
हैं, सो देवता थोड़े यत्न किये से प्रसन्न होते हैं इस निमित्त

देवता की उपासना करते हैं और मेरे में तो उसी पुरुष की श्रद्धा लगे है कि जिस के नेत्र ज्ञान रूपी देवीकर खुले हैं जिसको सब कुछ देह प्रपञ्च झूठा ही दृष्टी आवे है। और मेरे को ही सर्व व्यापक सत्यरूप जाने तिस की श्रद्धा मेरी उपासना में लगी है। अब अर्जुन यह जो चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हैं सो मैंने ही उपजाए हैं, और इन को भिन्न भिन्न अपने २ कर्म मैंने कहे हैं। इन चारों वर्णों से इन के कर्मों का कर्त्ता अकर्त्ता अविनाशी और अजन्ता तू मुझको जान और जो कोई कर्म करता है सो तिसको तिस कर्म किये

का सर्वथा कर लेप लगता है और मुझको किसी कर्म्म किये का लेप नहीं लगता, सो इस वास्ते नहीं लगता जो मुझको किसी बात की वांछा नहीं अवांछी हूं, जैसे बालक मट्टी के खिलौने बनाता है, फिर तोड़ डालता है बालक को कुछ लेप नहीं लगता वह हर्ष शोक कुछ नहीं करता तैसे ही मुझको किसी कर्म्म का लेप नहीं लगता। जो प्राणी इस भांति कर मुझको ऐसा कर जाने जो श्रीकृष्ण भगवान् जी को किसी कर्म्म किए का लेप नहीं सो मानकर सब कर्म्मों से अलेप रहेगा। अब हे अर्जुन ऐसा मुझको पहिचान कर तेरा युद्ध कर्म्म

है इससे तू अवांछी हो । अपना कर्म कर तुझको भी
किसी कर्म का लेप न लगेगा । निर्लेप का निर्लेप रहेगा ।
और जो तुझसे आगे हो गए हैं, जिनको मुक्ति की
वांछा थी तो मेरी आज्ञा मान कर कर्म करते भए

श्लोक सत्कर्मों की भावनी, करते सदा सदीव । कर्म
पंथ किह कर्म होए मुक्ति प्राप्त थीव ॥ १ ॥ यह बात तुझ
को कह, युद्ध तुम्हारा धर्म । पण्डित भेदन पावही क्या
अकर्म क्या कर्म ॥ २ ॥ सुरते सुरत न कर सकें, लोग
किसके पछान । सोई कर्म तुझको कहूं, मान लेहु परवान
॥ ३ ॥ जिन जाने से दुःख हरे । बन्धन होय खलास ।

गूज कथा तुझ को कहूं तुम सुनहु ब्रह्म के दास ॥ ४ ॥
हे अर्जुन एक तो कर्म है, एक विकर्म है, एक अकर्म है।
उनकी बात सुन जिस भांति शास्त्र की आज्ञा है उस
भांति स्नान से आदि लेकर कर्म करने को कर्म कहते हैं
और जो भूल से पाप कर्म करे उसको विकर्म कहते हैं और
जो आलस्य या अज्ञान से स्नान से आदि सब कर्मों का
त्याग कर देना सो अकर्म कहावे है। जो पुरुष इन तीन
ही कर्मों को समझ कर ज्यों शास्त्र की आज्ञा है त्यों
करे सो बुद्धिमान् पुरुष श्रेष्ठ सत्कर्मी कहावे है यह तो
कर्म करने की बात कही। अब और जो काइ मनुष्य

ऐसा है जिस को मेरी महिमा के जानन का ज्ञान उपजा है। तिस ज्ञान कर तिसको किसी कर्म का आरम्भ नहीं उपजता काम क्रोध से रहित हुआ है। ज्ञान अग्नि से जिसके सब कर्म जल गए हैं ऐसा जो होवे तिसको विवेकी पुरुष पण्डित कहते हैं फिर कैसा है वह ज्ञानी पण्डित जिसने सब ही कर्म त्यागे हैं और कर्मों के फल भी त्यागे हैं सो पुरुष ज्ञान रूपी अमृत को पानकर तृप्त रहता है। ऐसा जो प्राणी होवे उस पुरुष को किसी कर्म किये का लेप नहीं निर्लेप है। किसी कर्म का बन्धन नहीं निर्बन्धन है। फिर कैसा है जो एक परमेश्वर बिना किसी

को मानता नहीं किसी की आशा नहीं करता निराशी है
संसारकी वासना जिसने रोक रक्खी है। चित्त अविनाशी
जिसका, जीता है आत्मा जिसने किसी और वस्तु की
संचना नहीं। जिसका सदाही एकांत और अकल्परूपी है
शरीर मात्र जिसका रहा है। शरीर की रक्षा के निमित्त
जो कुछ करे है सो तिसको तिन कर्म्मों का कुछ पाप
नहीं। फिर कैसा है जो ईश्वर इच्छा से भोजन छादन
आ प्राप्त होवे तिसकर संतुष्ट रहे। शीत उष्ण, हर्ष शोक
से रहित और किसी की जिसको बखीली नहीं और भली
बुरी वस्तु पाने से एक जैसा है ऐसा जो है सो निर्बंध ८

कहावे है। फिर कैसा है दूसरे को जिसका संग नहीं ऐसा जो प्राणी है सो मुक्तरूप है और जिसका चित्त मेरी महिमा के ज्ञान में सदा निश्चल है जितने कर्म हैं उतने सभी ज्ञान के समुद्र विषे डूब गये हैं। फिर कैसा है जिसको सर्वत्र ब्रह्म दृष्ट आया है जहां कहां लेन देन खान पान पहिरना जो कुछ देखना सुनना उपजना विनाश इत्यादि जिसको ब्रह्म ही दृष्ट आया है सो प्राणी ब्रह्म रूप है। वह पुरुष ब्रह्म से उपज कर ब्रह्म में लीन हुआ है ऐसी समाधि जिस पुरुष को प्राप्त हुई सो प्राणी ब्रह्म ही कहावे है। अब अर्जुन बहुत प्रकार के योग सुन। जिस जिस

योगके मार्ग से मेरे भक्त मुझे पूजते हैं सो सुन। एक तो सार योग ब्रह्मज्ञान योगकर मुझको पूजते हैं जो पीछे कहा है। सर्वरूप ब्रह्म इस भांत। और एक प्राणी सब इन्द्रियां जो नेत्र कर्ण आदि हैं इन सब को मेरे स्मरण के निमित्त संयम करते हैं, एक तो यह योग है। और एक मौनकर रहते हैं एक यह योग है। और सर्व इन्द्रियों को रोक कर प्राण दसवें द्वार में रोकते हैं एक यह योग है, और एक प्राणी सन्तों साधों देहधारी की सेवा अन्न वस्त्र कर शीत ऊष्णता निवारण जल अग्नि कर सेवा करते हैं सो यह द्रव्य योग है। और एक तप योग है सो तप की

प्रकार सतारवें अध्याय में कहूंगा, और एक यज्ञ योग जो मुझ साथ जुड़ रहना और मेरी महिमा करनी। एक यह भी योग है क्या महिमा, वेद पढ़ने शास्त्र पढ़ने, विष्णु पदे गावने, मेरे नाम का कीर्तन करना, राम कृष्णगोविन्द हरी, नारायण, परमानन्द, अच्युत, अविनाशी, करुणाकर इत्यादि नाम जपने वाले नरक से बच जाते हैं, हे अर्जुन श्रद्धा ही यज्ञ कहावे है। हे अर्जुन जो मनुष्य एकांत वासी होकर अपने मन में ही मेरी महिमा करते हैं तिनको भी किसी कर्म का लेप नहीं। हे अर्जुन ऐसा मुझ को समझ कर, तेरा कर्म युद्ध करना है। क्यों तूं क्षत्रिय है

सो तू अवांछी होकर युद्ध कर। यह तेरा कर्म है तुझ को भी किसी कर्म का दोष नहीं लगेगा। और सुन, जिसके जानने से मूर्ख जीव पंडित होते हैं और बड़े २ पंडित भी नहीं जानते औरों की क्या कथा। सो कर्म्म मैं तेरे ताईं कहता हूं, जिसके जानने से दुःख दायक जो संसार बन्धन है तिस से तू मुक्त होगा। हे अर्जुन! विचार कर स्तुति करने का नाम ज्ञान यज्ञ है। एक जीव यज्ञ है। और एक प्राण अपानवायु इकट्ठा कर प्राणायाम करते हैं एक यह यज्ञ है। और एक क्रम क्रम से एक एक ग्रास घटाते हैं। यह जितने प्रकार के यज्ञ कहे हैं सो सभी पापों का नाश

करते हैं। इन सब यज्ञों में से जिस यज्ञ कर पूजे उसी कर मुझको प्राप्त होंगे तिसका जीना अमृत के समान है, मेरी कृपाकर और जो कुछ वह भोजन करता है वह भी अमृत है और देह को त्याग कर जो सनातन परे से परे तिससे परे और कुछ नहीं सो ऐसे मेरे सनातन ब्रह्म को पावेगा। हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! मेरे पूजे बिना इस लोक में भी सुख नहीं पुनः पर लोक की बात क्या कहिये। हे अर्जुन! यह बहुत प्रकार के यज्ञ मैंने पूर्व ही कहे हैं इनके जानने से तू मुक्त होगा। अब इन यज्ञों विषे जो श्रेष्ठ है सो सुन। हे परंतप पांडव यह

द्रव्य यज्ञ से आदि लेकर सभी यज्ञ मैंने कहे हैं। इन समस्त यज्ञों से श्रेष्ठ मेरी महिमा जानने का जो यज्ञ है सो श्रेष्ठ है। और जितने और यज्ञ करे सो ज्ञान पाने के निमित करे हैं। और जब ज्ञान उपजे तब सभी यज्ञ उदय हो जाते हैं, जैसे वृक्ष के फल लगे से फूल गिर जाते हैं तैसे यह भी मिटजाते हैं। अब जिसको मेरी महिमा का ज्ञान मेरी कृपा से होवे है तिससे और कोई ज्ञानपाया चाहे सो क्या विधि करे, सो सुन। प्रथम तो सद्गुरू की न्याईं तिसकी शरण आकर दोनों हाथ जोड़ परम नम्रतासे तिसके चरण कमलों को नमस्कार कर मुख से मेरा नाम

लेवे श्रीराम, श्रीकृष्णजी, श्रीगोपालजी, ओंनमोनारायण जी, राधाकृष्णजी, परमेश्वर की न्याई जानकर आधीन होवे तिस आगे विनय करे, हे प्रभु जी । हे गुरुदेव जी कृपा करो जी श्रीभगवान के जानने का ज्ञान मुझे दान करोजी तब ज्ञान के देने हारा जो है ज्ञानी तिसको ज्ञान श्रवण करावे, और ज्ञान किस तरह श्रवण करावे सो सुन । हे पांडव अर्जुन जिस ज्ञान के जाने से फिर माया मोह व्याप नहीं सकता सो ज्ञान जिसके जाने से सब भूत प्राणियों विषे एकही आत्मा ब्रह्म व्यापिया जानेगा दूसरा भेद मिट जायेगा सो ज्ञान है । अब इस ज्ञान का फल

सुन जितने पाप जान अजान किये हैं तिन पापों का
जो दुःख फल है सो तिन दुःखों से ज्ञान नाव में चढ़ के
पार पड़ेगा। जिस प्रकार लकड़ियों के अम्बारों को अग्नि
जला के भस्म करे है तैसे ही ज्ञान अग्नि मोह को
जला के भस्म करती है । और ज्ञान के समान दूसरा
पवित्र कुछ नहीं। श्लोक-ईंधन भानस के लिए पावक
चखम में लाए। ज्ञान वैसंत्र प्रकट होय, कर्म पाप जलजाय
॥१॥ हे अर्जुन! ज्ञान महा पवित्र है। ज्ञान के समान कुछ
नहीं लगता सो ज्ञान कब उपजता है मेरे योग साथ
जुड़ने के प्रसाद कर चिरकाल तक जो मेरे ध्यान साथ

जुड़ रहे तब तिसको आत्मा से ज्ञान उपज आवे है।
जिसको मेरे ज्ञान पाने की श्रद्धा हो सो सावधान हो
कर पढ़े, समझे, इन्द्रियों को वश करे सो पुरुष ज्ञान
को पावे। ज्ञान पाये से परम शांति जो परम सुख है
तिसको तत्कालही प्राप्त होवे है। और जो ज्ञानी पुरुष है
तिनको मेरे ज्ञान पाने की वांछा नहीं। जिसके आत्मा में
संशय है उस पुरुष का आत्मा नाश को प्राप्त होता है
न तिसको इस लोक में सुख न परलोक में, और जो मेरे
योग साथ जुड़े तिस से कोई कर्म नहीं उठता और न
तिसको कोई संशय ही व्याप सकता है। ऐसा जो योगी

ज्ञानीहै तिसको कोई चला हिला नहीं सकता। तिस कारण
से हे अर्जुन तुझको तेरे हृदयही से अज्ञानका कारण शंसय
संदेह उपजता है, सो तू हृदय ही से ज्ञान नाम खड्ग लेकर
इस संशय[संदेह]को काटडार और उठखड़ा हो। इति
श्रीभगवद्गीता सूपनिषधसुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण
अर्जुन सम्बादे कर्म सन्यास योगोनाम चतुर्थो अध्यायः॥४॥

अथ चौथे अध्याय का महात्म्य। श्रीभगवानुवाच-हे लक्ष्मी जो पुरुष श्रीगीताजी का पाठ करते हैं तिनके साथ छूये से अधम देह से छूट कर विवेक को प्राप्त होवे है तब लक्ष्मी जी पूछे हैं हे श्रीमहाराजजी श्रीगीताजी के पाठ

करने वाले साथ छुहकर कोई जीव मुक्त भी हुआ है। तब श्रीभगवान् जी ने कहा हे लक्ष्मी तुम को मुक्त हुए की एक पुरातन कथा सुनाता हूं तू श्रवणकर भागीरथी गङ्गा जी के तट पर श्रीकाशी जी नगर है। वहां एक वैष्णव रहता था वह श्रीगङ्गाजी स्नानकर श्रीगीता जी के चोथे अध्याय का पाठ किया करता था। और उस साधू के पास तपस्या ही धन था, माया का जंजाल कुछ नहीं था, एक दिन वह साधू वन में गया। वहां बेरी के दो वृक्ष थे। उनकी छाया थी। वह साधू वहां बैठ गया और बैठते ही उसको निद्रा आ गई। एक बेरी से

उसके पांव लगे और दूसरी के साथ सिर लग गया। वह दोनों बेरियां आपस में कांप कर पृथिवीपर गिरपड़ीं। पत्ते उनके सूखगये। परमेश्वर के करने से वह दोनों बेरिया ब्राह्मण के घरजा पुत्रियां हुईं, हे लक्ष्मी बड़े उग्र पुण्योंकर मनुष्य देह मिलता है फिर ब्राह्मण के घर जन्म। उन दोनों लड़कियों ने तपस्या करनी आरम्भ की। जब वह दोनों बड़ी हुईं तब उन के माता पिता ने कहा हे पुत्रियो! हम तुम्हारा विवाहकरते हैं। तब उन दोनों ने माता पिता से कहा हम विवाह नहीं करातीं। उनको अपने पिछलेजन्म की ख़बरथी। वहजाति में सुन्दर जन्मी थीं उन्होंनेकहा

एक हमारे मन में जो कामना है परमेश्वर वह पूर्ण करे तब बहुत भली बात है। उनके मनमें यही था कि वह साधू जिसके स्पर्श करने से हमारा अधम देह छूट के यह देह मिली है वह मिले। तब बहुत भला है। इतना विचारकर उन दोनों अकेलियों ने माता पिता से तीर्थ यात्रा करने की आज्ञा मांगी। तब माता पिताने तीर्थ यात्राकी आज्ञा दी। कहा तुमको श्रीपरमेश्वर जी की आज्ञा है, तब उन दोनों कन्याओं ने माता पिता को चरण बन्दना करके गमन किया। तीर्थ यात्रा करती २ बनारस में पहुंची वहां जाकर देखा वह तपस्वी बैठा है जिसकी कृपा से

हम बेरी की देह से छूटी हैं। तब उन दोनो कन्याओं ने जा दण्डवत करी। चरण वन्दना करके बिनय करी। हे संतजी ! धन्य हो हमको कृतार्थ किया है जी। तब उस तपस्वी ने कहा तुम कौन हो मैं तुमको पहिचानता नहीं, तब कन्याओं ने कहा हम आपको पहिचानती हैं हम पिछले जन्म बेरियों की योनि में थीं, तुम एक दिन बन में आए। तुमको बहुत धूप लगी थी तब, बेरियों की छाया तले आ बैठे। लम्बासन होने से एक बेरी को आप के चरण लगे दूसरी को सिर लगा। उसी समय हम बेरी की देह से मुक्त हुईं। अब ब्राह्मण के घर जन्म

लिया है ब्राह्मणी हैं बड़ी सुखी हैं। तुम्हारी कृपा से हमारी गती हुई। तब तपस्वी ने कहा मुझे उस बात की खबर नहीं थी अब तुम आज्ञा करो तुम्हारी सेवा करूं तुमं ब्रह्मरूप उत्तम जन्म श्रीनारायणजी का सुख हो। तब उन कन्याओं ने कहा,हमको श्रीगीताजीके चौथे अध्याय का फल दान करो जिसको पाकर हम देवदेही पाकर सुखी होवें। तब उस तपस्वीने चौथे अध्याय के पाठ का फल दिया। देते ही उनको कहा कि तुम आवा-गमन से छूट जावो। इतना कहते ही आकाश से विमान आए उन दोनों ने देव देही पाकर बैकुण्ठ को गमन

किया फिर तपस्वी ने कहा मैं नहीं जानिया जो श्रीगीता जी के चौथे अध्याय का ऐसा महात्म है। तब वह मन वच, कर्म कर नित्य प्रति पाठ करने लगा तब श्रीनारायण जी ने कहा, हे लक्ष्मी यह चौथे अध्याय का महात्म है जो तुमको सुनाया है। इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे उत्राखंडे श्रीगीता महात्मनाम चतुर्थो अध्याय॥४॥

* अथ पांचवां अध्याय *

अर्जुनोवाच॥ अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान जी से प्रश्न करे है जो हे श्रीकृष्ण भगवानजी कर्मों का त्याग सन्यास कहो जी और कर्म्म योग भी कहो जी यह निश्चय कर

 कहो जी जिस से मेरी कल्याण होवे जी। अर्जुन के प्रश्न
 का उत्तर श्रीकृष्ण भगवानजी कहे हैं। श्रीभगवानोवाच
 हे अर्जुन सन्यास योग, कर्म योग यह दोनों कल्याण के
 दाता हैं। इस में जो कर्म्म त्यागने हैं सन्यास के निमित्त सो उचित नहीं। कर्म्म करने अर्थात कर्म्म योग भला है और जो प्राणी ऐसी ज्ञान की बात का समझने हारा है सो सन्यासी है सो कैसा है जो सर्व बातों के हर्ष शोकसे रहित है। हे महाबाहु अर्जुन ऐसा जो निरद्वन्ध है सो सुखै नहीं संसार के बंधनो से मुक्त होता है। अब अर्जुन और सुन सांख्य को और योगको भिन्नभिन्न बालक अज्ञानी कहिते

हैं पण्डित नहीं कहते। योग कहिये मेरे स्मरण साथ जुड़े रहना। और सांख्य कहिये मेरा ज्ञान गोष्ठ, कथा वार्त्ता करनी सो यह दोनों एक ही हैं और इन दोनों का फल भी एक ही है जिस मेरे परम स्थान को सांख्य वाला पावे है तिसी स्थान को योगी जाय प्राप्त होता है। जिन सांख्य और योग एक ही कर जाना है तिनही यथार्थ ज्यूं का त्यूं जाना है। हे अर्जुन सन्यास जो है संसार के कर्म सभी त्यागिये देहकर और मन कर भी त्यागिये इसका नाम सन्यास कहिये है। हे महाबाहू अर्जुन यह सन्यास पावना ब्रह्म योग जुड़े बिना कठिन है जब स्मरण साथ

जुड़ता है तब सुखेन ही संसार के सुखों की बात भूल जाती है, इसी का नाम सन्यास कहिये है। जो स्मरण योग साथ जुड़े ऐसा मुनीश्वर है सो तत्काल ही पारब्रह्म को आय प्राप्त होता है ऐसा जो प्राणी योगसाथ जुड़या और निष्काम निर्मल है आत्मा जिसका, संसार की वाश्ना से निवारिया है आत्मा को जिसने और समस्त इन्द्रियां जिसने पकड़ रखी हैं। और सब भूत प्राणियों विषे एक ही आत्मा ब्रह्म दृष्टि आया है ऐसा जो प्राणी है सो कर्म्म कर्त्ता भी अकर्त्ता है। निर्लेप है वह क्या समझता है कि जो आत्मा है सो कुछ नहीं करता। नेत्र देखते हैं

श्रवण सुनते हैं, स्पर्श देह करे है, नासिका सूंघती है स्वाद जिह्वा लेती है, स्वाश पवन कर आवे जावे हैं हाथ पकड़ते हैं छोड़ते हैं, चरण चलते हैं निमख नेत्रों के लगते हैं सोवती जागती देह है, जो इस प्रकार समझे जो यह सब इन्द्रियां अपने अपने विषयों को वरतती हैं, और मैं जो आत्मा राम हूं सो अकर्ता हूं इन सब से न्यारा हूं । इस भांत आत्मा को समझे है और इन्द्रियों कर कर्म करे सो तिस पुरुष को किसी कर्म किये का दोष नहीं । जैसे जल विषे कमल निरलेप न्यारा है तैसे ही वह पुरुष न्यारा है । हे अर्जुन जो कोई योगीश्वर पुरुष हैं सो देह कर

मन कर इन्द्रियों कर सत्य कर्म जो स्नान से आदि है
सो करते हैं और फल कुछ वांछते नहीं तिसका फल
निश्चल शान्ति को पावे हैं और जो कामना के निमित्त
कर्म करते हैं, सो बन्धन को प्राप्त होते हैं । अब अर्जुन
सदा सुखी कौन हैं तिन की बात सुन । जो प्राणी
आत्मा साथ जुड़ा है और किसी इन्द्रियों का उदम
नहीं उठाता सो सदा सुखी है । अब अर्जुन मेरी बात
सुन जो मैं कैसा हूं । मैं संसार को उपजाता हूं और
प्रतिपालना भी मैं ही करता हूं मेरी माया का यह स्वभाव
है । यह संसार माया की खेल है और मुझ को इस

संसार से कुछ प्रयोजन नहीं। न मैं किसीसे पाप कराता हूं न पुण्य कराता हूं, अज्ञानकर जीव मोहित हुएहैं और पाप करते हैं। और जो मुझ ईश्वर को न्यारा निरलेप समझते हैं तिनको कभी अज्ञान नहीं उपजे है। जैसे सूर्य्य को अन्धकार नहीं तैसे ज्ञानी निरलेप है। कैसा है॥

श्लोक-तत्त बुद्धि वस आतमा, निश्चल निज घर सोय
सब किल विष उतरे ज्ञानकर, बौड़ जन्म न होय॥१॥
अति अडोल और चेतना सब जाने प्रभु सोय। सब से
वरते सो प्रभु सब से न्यारा सोय॥२॥ ध्यान रूप गुरु
ज्ञान कर, अवर न पेखहु कोय। मनुआ निश्चल बुद्धि

थिर, आपे आप सुहाये ॥३॥ स्वास स्वास स्मृत रहो, आत्म राम सुचीत। शरण एकही पकड़ तूं दृढ़ चित्त राखो मीत ॥४॥ तन धन तुमरा मन तूंही, मोहें नहीं सब तोय। ऐसा निश्चा दृढ़ करे, विघ्न न लागै कोय ॥ ५ ॥ फिर न्यारा निरलेप मुझको जान और मेरे विषे ही परम प्रीती रहे। मेरी ही शरण रहे और स्वास स्वास मेराभजन स्मरणकरे। ऐसा मुझकोजानकर जोमेराभजन करता है। हे अर्जुन जो ऐसा पहिचाने सो मेरे परमानन्द अविनाशी पद विषे जाय प्राप्त होता है। वहां गये से गिरता नहीं सो पूर्ण ज्ञानी है ऐसा जो होय ब्राह्मण

कैसा । जन्म से ऊंचा ब्राह्मण के घर का और विद्या कर
पूर्ण होय तिस ब्राह्मण को जन्म का गर्भ भी नहीं होय ।
सब साथ नम्रता राखे ऐसा साधू ब्राह्मण और गौ हाथी
श्वान जो है कुत्ता और चंडाल ऊंच नीच तिसको सब
एक ही समान हैं ऐसा सम दृष्टि पण्डित कहिये है। फिर
कैसा है इस प्रकार जिसको समदृष्टि आई है सो जन्म
मरण के बन्धन से मुक्त हुआ । और आत्म ब्रह्म जो
सभ विषे निरलेप जानता है । ऐसा जिसके ब्रह्म दृष्टि
आया है । फिर कैसा है भली वस्तु पाये से प्रसन्न नहीं
होय और बुरी वस्तु पाय से बुरा नहीं माने है ऐसा जो

स्थिर बुद्धि ज्ञानी ब्रह्म को जानने हारा जिसके हृदय विषे कुछ अज्ञान नहीं रहा, बाहर की इन्द्रियों के सुख तिस को विसर गये हैं और आत्मा के सुख विषे जाय मग्न हुआ है। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन जिसका आत्मा ब्रह्म योग साथ जुड़या है तिनही अविनाशी सुख पाया है। और भोगो का सुख अन्त वत है सो विषे भोगों को त्याग के आत्मा का सुख भोगते हैं इन्द्रियों के भोगों विषे नहीं रमते। इन्द्रियों के भोग दुःखों के उपजावने हारे है। इन्द्रियों के भोगों की ओर नहीं जाते अब जिसको आगे जन्म नहीं तिसकी बात सुन जैसे बलटोही से एक दाना

निकाल देखते हैं यदि वह गला है तो सभी दाने गले हैं । जो एक कच्चा है तो सभी कच्चे हैं इसी प्रकार जिस ज्ञानी को काम क्रोध नहीं उपजता तिसको फिर जन्म नहीं जिसने काम क्रोध दोनों शत्रु जीतेहैं तिसनेही योगकी युक्ति जानी है और सोई मनुष्य संसार विखे सुखी है तिस को क्यों नहीं कामक्रोध उपजते तिसकी बात सुन आत्मा जो है ज्योतिस्वरूप तिस साथ जाय जुड़ा तिस आत्मा साथ जुड़ने का जो है निर्वाण सुख तिस निर्वाण सुख विषे जाय मग्न हुआ। तिस कारण से तिसको कामक्रोध नहीं उपजते सो आत्म ब्रह्म निर्वाण सुख को प्राप्त हुआ

है तिसके पाप मिटगये हैं और दूसरी दृष्टि तिस पुरुष की दूर हुई। सो ब्रह्मदर्शी हुआ है और सब भूत प्राणियों के कल्याण विषे है प्रीत जिसकी और शीतल स्वभाव है, और काम क्रोध जिसके नहीं ऐसा जो है ज्योतिस्व रूप ब्रह्म निर्वाण सुख तिस विषे मग्न हुआ है अब जो देह साथ होते ही मुक्ति रूप है तिनकी बात सुन जिन बाहर की इन्द्रियां विषयों से वर्ज राखी हैं और नेत्रों कर त्रिकुटी का ध्यान कर और प्राणवायु ऊपर की और समान वायु तले इकट्ठी कर नासिका विषे लाई है और जीता है जन्म जिसने और नहीं किसी वस्तु की

वांछा और नाही जिसको किसी का डर है और क्रोधभी नहीं ऐसा जो मेरा भगत है सो जीवन मुक्त कहिये है। अब मेरी बात सुन, हे अर्जुन कई कोट लोग योग पावने के निमित्त यज्ञ करते हैं और कई कोट लोग तपस्याकरते हैं और यज्ञ भी करते हैं। सो तिन यज्ञों को और तपस्या को भोगता भी आप है और सब लोगों का ईश्वर और सब भूत प्राणियों का मित्र ऐसा सो प्रभु है। जो कोई ऐसा जाने कि श्रीकृष्ण भगवानजी ऐसे हैं तिसके जानने का फल क्या पावे है सो परमात्मा सुख को पावे है ॥५॥

इति श्री भगवद्गीता सूपनिषध सुब्रह्म विद्या योगशास्त्रे

श्रीकृष्णअर्जुनसंवादेसन्यासयोगोनामपञ्चमोऽध्याय॥५॥

* अथ पांचवें अध्याय का महात्म *

श्री भगवानोवाच—हे लक्ष्मी पांचवें अध्याय का महात्म सुन। एक ब्राह्मण पिङ्गल नाम अपने धर्म से भ्रष्ट हुआ था कुसंग में जाय बैठे मच्छी मांस खावे मदरापान करे, जूआ खेले, तब उस ब्राह्मण को भाई चारे में से छेद दिया तब वह किसी और नगर में चला गया दैवयोग कर वह पिङ्गला एक राजा के नौकर जा हुआ राजा के पास और लोगों की चुगलियां किया करे जब बहुत दिन बीते तब वह धनवन्त हो गया तब उसने

अपना विवाह कर लिया, पर स्त्री भी व्यभिचारणी आई जैसा वह था तैसी स्त्री आई, जो कुछ वह ब्राह्मण कहे सो वह न करे। ब्राह्मण कहे तूं बाहर न जा वह रहे नहीं जहां उसका जी चाहे तहां वह जावे, भर्त्ता को जानेनहीं वह कल्पना करे और स्त्री को मारे, एक दिन उसस्त्रीको बड़ी मार पड़ी। उस स्त्री ने दुःखी होकर अपने भर्त्ता को विष देदिया। वह ब्राह्मण मरगया उस ब्राह्मण ने गीध का जन्म पाया कितने काल पीछे वह स्त्री भी मर गई उसने तोती का जन्म पाया तब वह एक तोते की स्त्री हुई वह तोता एक बन में रहता था एक दिन उस तोती

ने तोते से पूछा, हे तोते तूने तोते का जन्म क्यों पाया तब उस तोते ने कहा, हे तोती मैं अपने पिछले जन्म की बारता कह सुनाता हूं, मैं पिछले जन्म में ब्राह्मण था अपने गुरु की आज्ञा नहीं मानता था। मेरा गुरु बड़ा विद्यवान् था। उसके पास और विद्यार्थी भी रहते थे सो गुरुजी किसी और विद्यार्थी को पढ़ावें मैं उनकी बात में बोलपड़ता, कईबारहटका मैं नहीं माना मुझको गुरुजीने श्राप दिया कहा जा तूं तोते का जन्म पावेगा इसकारण से तोते का जन्म पाया अब तू कहो किस कारण से तोता हुई उसने कहा मैं पिछले जन्म ब्राह्मणी थी जब ब्याई तब

भर्त्ता की आज्ञा नहीं मानती थी। भर्त्ता ने मुझे मारा। एक दिन मैंने भर्त्ता को विष दिया। वह मर गया। जब मेरी देह छूटी तब बड़े नरक में मुझे गिराया। कई नरक भुगाकर अब मुझे तोती का जन्म हुआ। तोते ने सुन सुनकर कहा तू बुरी है जिस अपने भर्त्ता को विष दिया तोती ने कहा नरकों के दुख भी तो मैंने ही सहे हैं अब तो मैं मुझे भर्त्ता जानती हूं। एक दिन वह तोती बन में बैठी थी वह गीध आया। तोती को उस गीध ने पहचाना जो वही मेरी भार्य्या है जिस ने मुझे विष दिया था। वह गीध तोती को मारने चला। आगे तोती पीछे गीध जाते २ तोती एक

श्मशान भूमिका में थककर गिरपड़ी। वहां एक साधू को दाह दिया था। साधू की खोपरी वर्षा के जल के साथ भरी हुई पड़ी थी। उस में गिरी। इतने में गीध आया उस तोती को मारने लगा। उस खोपरी के जलके साथ उनकी देह धोई गई। वह आपस में लड़ते २ मर गये अधम देह से छूट कर देव-देही पाई। विमान आये। तिन पर बैठ कर वैकुंठ को गये। तब तोती ने कहा, हे गीध ऐसा पुण्य कौन किया है जो बैकुंठ को चले हैं। गीध ने कहा हमने तो जन्म में पुण्य कोई नहीं किया। मैं इस पुण्य को नहीं जानता। इतने में दोनों धर्मराज की पुरी म गये। धर्मराज ने कहा

क्यों रे गीध तू पीछे कौन था उसने कहा ब्राह्मण था मुझे मेरे भाइयों ने देश से निकाल दिया। मैं और देश में जा बसा। वहां मैंने विवाह किया। दुराचारिणी स्त्री मिली उस ने मुझे विष देकर मारा और वह मर कर तोती हुई। मैं गीध हुआ। मैं इसको पहिचान कर मारने लगा। वहां एक श्मशान में मनुष्य की खोपरी जल के साथ भरी हुई थी। जिस में तोती गिरी, मैं भी वहां पहुंचा। उस जल का हम दोनों को स्पर्श हुआ। तत्काल हमारी देह छूटी देव-देही पाई विमानों पर चढ़ा कर हम दोनों को बैकुंठ धाम को लेचले हैं। यह कौतुक हमको कुछ मालूमनहीं

हुआ। तब धर्मराज ने कहा, वह खोपरी एक साधू की थी वह श्रीगङ्गा जी में स्नान करके नित्य श्रीगीता जी के पांचवें अध्याय का पाठ करता था। वह खोपरी परम पवित्र थी। उस के स्पर्श से तुम वैकुण्ठवासी हुए हो और अपने पारषदों को धर्मराज ने आज्ञा दी जो प्राणी श्रीगङ्गाजीका स्नान करके गीता का पाठ करते हैं तिन को मेरे पूछे विना वैकुण्ठ को लेजाया करो, जो सन्तों की सेवा करते हैं तिनको भी वैकुण्ठ लेजाओ। तब वह पारषद दोनों को वैकुण्ठ में ले गये। श्रीनारायण जी ने कहा हे लक्ष्मी यह गीताजी के पांचवें अध्याय

का महात्म्य है जो तुमने श्रवण किया है।

इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्राखण्डे श्रीगीता महात्म्य नाम पञ्चमो अध्यायः ॥ ५ ॥

* अथ छठा अध्याय *

श्रीभगवानुवाच—हे अर्जुन जो कर्मयोग कर मेरे साथ जुड़े हैं और फल कुछ वांछते नहीं तिनको सन्यासी जान। जो मेरे साथ जुड़े हैं इसी से योगी कहिये फल कुछ वांछे नहीं इसी से सन्यासी कहिये ! हे अर्जुन कुछ जटा के धारे से, भस्म के लगाने से, अग्नि धूनि जला बैठने से, सन्यासी नहीं होते। हे पाण्डव योगीजन सन्यासी

तिसको कहते हैं जिसके मन में मेरे चरणकमल विना और कुछ वांछा नहीं। मेरे स्मरण साथ जुड़े विना अवांछी होता नहीं। अवांछी हुए विना मेरे स्मरण साथ जुड़ता नहीं। जब मेरे स्मरण साथ जुड़े तब अवांछी होय, अवांछी हुए विना योगी कोई नहीं। इस कारण से संन्यास और योग यह कहे हैं। और जो कोई मेरे योग साथ जुड़ा तिस को मेरे जानने के जो हैं सत्य कर्म स्नान से आदि लेकर सो करने चाहियें। जब सत्य कर्म कर निर्मल होवे तब मेरे साथ जुड़े। और जो कोई योग आरूढ हुआ तिसको कोई कर्म नहीं करना चाहिये जो कुछ उसकी

इच्छा हो सो करे। सोवे तब सोरहे, जो बैठै तो बैठ रहे योगारूढ़ इच्छा चार्य्य मुक्तरूप है। योगारूढ़ क्या होता है, तिसके लक्षण सुन। इन्द्रियां किसी विषय को न उठैं और मन में मेरे स्मरण बिना कोई चिन्ता भी नहीं होवे जब ऐसा होय तब योगरूढ़ कहिये। तिन अपने आत्मा का उद्धार किया, संसार के विषयों के स्वादों में नहीं रमा। और अपना ही आत्मा मित्र है, अपना ही शत्रु है। जिसने विषयों से वर्जकर अपना आत्मा मेरे भजन साथ जोड़ा है तिसका अपना आत्मा मित्र है। जिस मुझको बिसार कर अपना आत्मा विषयों में लगाया है

तिसका आत्मा शत्रु है। फिर न कोई मित्र है न शत्रु है, जिस आत्मा विषयों से वर्जकर परमात्मा पारब्रह्म अविनाशी साथ जोड़ा है सो परमशान्ति सुख को प्राप्त हुआ है। और उसको शीत उष्ण भी नहीं व्यापता। उसे मेरी कृपा से और कोई दुःख भी नहीं व्याप सकता जो आदर करने से प्रसन्न नहीं और अनादर करने से बुरा नहीं मानता। अपने आपका जानना इसका जो ज्ञान है। मैं क्या वस्तु हूं यह क्या खेल है और विज्ञान अर्थात परमेश्वर को जानना, यह दोनों ज्ञान विज्ञान हैं। इसको मैं तेरहवें अध्याय में कहूंगा। जिस ने ज्ञान विज्ञानरूप

अमृतपान किया हुवा है जिसका आत्मा तृप्त हुआ है सो इन्द्रियों को निवारण करे। सदा एकसा रहे कंचन माटी शत्रु मित्र एक समान जाने। धर्मी पापी एक से देखे। राग द्वेष न करे, निरन्तर एक ध्यान, मित्र शत्रु को जाना करे। यह पूर्ण लक्षण योगके कहे। इस युक्त रहे योगी आत्मा से जुड़े अभय रहे परमानन्द रूप रहे दूसरे की आशा न करे। माया के मोह से रहित हो परम पद को पावे है। हे अर्जुन जो कोई और भी योग अरूढ हुआ चाहे तिसकी बात सुन वह क्या करे। प्रथम तो एकांत स्थान में एक थड़ी चार अंगुल ऊंची जिसमें कंकर टोया टिब्बा

न हो सो बनाए । ऐसी साफ थड़ी बनाकर तिस पर गोबर का चौका फेरे तिस पर कुशा उस पर मृगछाला बिछा क ऊपर कपास का धुला हुआ कपड़ा डाले । ऐसे पवित्र स्वच्छ आसन पर चौकड़ी मार बैठे मन को निश्चल करे इन्द्रियां वश कर ऐसा होकर मेरे साथ जुड़े और सारे देह को सीधा रक्खे, बांका टेढा न बैठे शिर ग्रीवा को भी सीधा रक्खे, ऐसा निर्मल होके बैठकर अपनी नासिका का अग्र भाग देखे। और किसी दिशा को न देखे, अपने आत्मा को परमात्मा में लीन करे। किसी का भय न करे, गोविन्द को गहरावे और मनको संयम

कर मनका निश्चल चेता मेरे में राखे इस भांत मेरे साथ योगी जुड़े। इन लक्षणों साथ जुड़े तो परम शांत सुख जो निर्वाणपद है तिसको प्राप्त होवे है। हे अर्जुन और भी तिसकी युक्ती सुन। जो प्राणी उदर भर के भोजन खावे उसे भी योग नहीं होय। योग किस भांत होवे सो सुन। युक्त आहार हो अर्थात् दो ग्रास भूखा रहे, जिससे श्वास सुखी चलें और गिरे भी नहीं। और मस्त हाथी जैसा मन्द मन्द चले। जूता न पावे दृष्टिकर पृथिवी को देखता चले। जहां कोई जीव जन्तु कंकर कांटा न हो वहां चरण धरे अपवित्र ठौर

पर न धरे, जागता रहे तो भी योग नहीं होय। सोय रहे तो भी योग नहीं होय। सोना जागना सहज कर पहर रात पहिली जागे, पहर पिछली जागे, सो ऐसी युक्त कर योग करे तिसको योग प्राप्त होय। ऐसी युक्त कर देह को कोई रोग भी नहीं व्यापता। इसका नाम दुःखनाश योग है। विवेकी पुरुष योगी का मन जब आत्मा साथ जुड़ जाय तब इसके मन में किसी वस्तु की वांछा नहीं रहे तिसको योग युक्त कहते हैं। अब योगी को एकांत बैठना क्यों कहा है तिसका दृष्टान्त सुन। जैसे जिस जगह पवन नहीं चलता उस जगह दीपक निरमल अडोल

ज्योति प्रकाश करे है और जो पवन लगने के स्थानमें

रखे तो तिसकी ज्योति डोले है। इस कारण से योगी को

एकांत बैठना कहा है। जो एकांत बैठकर मुझको चितव्या

करे तब योगी का चेता मेरी सेवायुक्त कर निश्चल होय।

तब तिसको आत्मा का दर्शन होता है आत्मा के दर्शन कर अति सुख को पावे है। आत्मा के दर्शन का सुख कैसा है अति अविनाशी सुख है। तिसको बुद्धि जानती है। वह सुख बुद्धि गोचर है। इन्द्रियां उस सुख को नहीं जानतीं इस कारण से इसका नाम अति इंन्द्रिय सुख है और जिस सुख को पाने से वह योगी निरलेप निश्चल

होता है और जिस सुख के उपरांत और कोई लाभ नहीं मानता, जिस सुख के पाने से शरीर को कोई बड़ा दुःख लागे और शस्त्रों साथ काटे अग्नि में जलावे तो भी तिसको कुछ दुःख नहीं लागे तिसपर साक्षी प्रह्लाद की है। जैसे प्रह्लाद को हिरण्यकशिप ने अनेक प्रकार की शासना दी, प्रह्लाद को कुछ कष्ट न हुआ ऐसा सुख जिस सुख पाये से सभी दुःख भाग जायें। ऐसा सुख निधान योग संसार से विरक्त होकर अवश्य कीजिये विलम्ब न कीजे। सभी कामना विसार कर और सब इन्द्रिय वश करके योग कीजे। शनैःशनैः मन को बुद्धि

साथ पकड़ कर आत्मा में निश्चल राखे और कुछ न चितवे। यह मन चंचल है जिस २ बात को चितवे तिससे निवारण कर आत्मा साथ लगावे। जब मन आत्मा साथ जुड़ जाय तब कैसे परमशांत सुख को पावे है। तीन गुण को काट जावे है निर्मल पाप से तब ब्रह्म साथ मिलके ब्रह्म का ब्रह्म हुआ कपट माया दूर किया इस प्रकार जिसने योग जाना सो नहीं डोलता आपसे आप जुड़िया तिनके सब पाप सहज से ही झड़े हैं। तिन योग पाया तब ब्रह्म सुख को प्राप्त हुआ आत्मासंग किया परम सुख को पाया सकल घट में आपको देखा आत्मा में

सकल देखा। अपना पराया कुछ न व्यापे आत्मा जाना
सदा ही समदृष्टि देखिया आप मध्य ब्रह्म देखा जुगत
निर्मल योग ब्रह्म प्रताप से पाया। हे अर्जुन सभी भूत
प्राणी तिसको अपने आत्मा में दृष्टि आये और सब
भूत प्राणियों में अपना आत्मा तिसको दृष्टि आया
तिसको ऐसी सम दृष्टि भई। आप विषे भी मुझको लगा
देखे जो सब में मुझ आत्मा ब्रह्म को देखे और सभी
भूत प्राणी मुझ बिराट पुरुष पर बैठे देखे। ऐसी
जिस की दृष्टि भई सो तिस से मैं भिन्न नहीं मुझ से
वह भिन्न नहीं मैं और वह एकही रूप हैं। सो भी भूत

प्राणियों विषे मुझको व्यापिया पहचान कर जो मेरा भजन करते हैं तिनको फिर जन्म नहीं और जो सब जनों विषे मैं व्यापा हूं तिन्हों विषे मेरा भजन क्या करना है, सो सुन। हे अर्जुन जैसा अपने आत्मा में दुःख सुख लगता है तैसा ही दूसरे को जाने यह जान कर किसी को दुखावे नहीं, सबका सुख दायक मित्र होकर वर्तें, मेरे मत में सब योगियों में वह योगी श्रेष्ठ है जो सबका सुखदायक है॥ अर्जुनोवाच—अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान् जी से प्रश्न करे है, हे मधुसूदनजी तुमने जिस योग का मुझे उपदेश किया है हे प्रभोजी यह योग तो मेरे

मैं नहीं है और मैं ऐसा योग कर भी नहीं सकता। हे भगवान मन तो चञ्चल है ! मस्त हाथी की न्याईं बलवान है। तिस मन को पकड़ना मैं पवन से भी कठिन जानता हूं अर्जुन के प्रश्न का उत्तर श्रीकृष्ण भगवान् जी कहे हैं, श्रीभगवानुवाच–हे महाबाहो अर्जुन। इस बात में कुछ सन्देह नहीं, मन तो चंचल है। पकड़ा नहीं जाता। पर इसके पकड़ने के दो उपायहैं सो सुन मेरे साथ प्रीति,संसार के विशयों से वैराग्य, यह दोनों उपाय हैं। इन से मन निश्चल होता है, सो जिसने मेरे साथ प्रीति नहीं करी संसार के विषयों से वैराग्य नहीं किया सो मुझको नहीं

पावेगा। जिन्हों ने अभ्यास द्वारा मन मेरे साथ नहीं जोड़ा तिनको योग कहां है अभ्यास कहिये जब मेरे स्मरण विना जो कुछ और चितवना मन चितवे है मन को बुद्धि साथ पकड़ कर मुझ ही को सिमरे। इसका नाम अभ्यास है। जिसने वैराग्य और अभ्यास दोनों उपाय नहीं किये तिसको योग कठिन है जिन्हों ने अभ्यास और वैराग्य कर मन मुझ साथ जोड़ा है तिनको योग पावना सुखैन है। अभ्यास वैराग्य दोनों उपाय मन के पकड़ने के हैं।

अर्जुनोवाच-अर्जुन प्रश्न करे है। हे महाबाहो प्रभुजी जिन तुम्हारे साथ योग जोड़ा है देह छुटने के समय

तिनकी श्रद्धा अर्थात् प्रीति तुम्हारे योग से छूट कर किसी और बात पर गई हो सो प्राणी योग की विधि को नहीं प्राप्त हुआ हे श्रीकृष्ण भगवान् जी सो किस गति को प्राप्त हुआ सो तुम्हारे योग से भ्रष्ट हुआ कि नहीं उसकी सारी सिद्धी निष्फल हुई वा कुछ गति भई जैसे मेघ वर्षा के निमित्त उमङ्ग कर संसार में आवे किसी ओर से पवन आके मेघ को खण्ड २ कर दे वर्षा न हुई तिस मेघ की भांति योगी का नष्ट हुआ वा तिसकी गति हुई। हे महाबाहो प्रभो श्रीकृष्ण जी सो तुम्हारे योग को नहीं पहुंचा। तुम्हारा जो ब्रह्मपद है मुक्ति

पद बैकुण्ठ तिस मार्ग से वह फिर अन्ध हुआ तिसकी गति कहो। हे प्रभो! मेरे मन का संशय काटो। तुम विना इस संशय को छेदने हारा कोई नहीं श्रीभगवानुवाच-हे अर्जुन तिस योगी का योग तू नाश हुआ मत जान। हे अर्जुन जिन एकवार मेरा नाम लिया और नमस्कार किया है मैं सत्य पुरुष अविनाशी सो सदा कल्याणरूप हूं। अब योगी जिसका मन देह छूटने के समय स्मरण को त्याग के और बात पर गया है: तिसकी गति सुन जिस स्वर्ग पाने के लिये मनुष्य बड़े दान करते हैं, यज्ञ करते हैं: तपस्या करते हैं सो स्वर्ग मेरे योगी को दंड

है सो भ्रष्ट योगी स्वर्ग जाय भोगे है सो स्वर्ग का वृत्तान्त सुन वहां देवता ही वसे हैं। वहां न किसी की कोई स्त्री है, न कोई किसी का भर्त्ता है तहां अप्सरां भोगने को हैं, कैसी हैं जिनकी देह से बड़ी सुगन्धि आवे है और दिव्य गन्धर्व गायन करते हैं। खाने को अमृत भोजन हैं सूंघने को दिव्य पारजात के फूल, पहरने को दिव्य वस्त्र और अनेक प्रकार के दिव्य भोग हैं। योगी भ्रष्ट तहां जाकर पहुंचे तब वह भ्रष्ट योगी उन दिव्य भोगों को भोग कर आजावे है जब तिन भोगों से तिस का मन विरक्त होगा, तब तिस स्वर्ग लोक को त्याग

कर मनुष्य लोक में आ जन्मपावे है। किसके घर पावे है सो सुन। पवित्र कुल ब्राह्मण क्षत्रिय और लक्ष्मी युक्त कुल में जन्में है। जिन थोड़े दिन योग साधना करी मरने के समय योग से चल गया होए सो स्वर्ग के भोग भोग कर ब्राह्मण क्षत्रिय द्रव्यवान के घर जन्म लेताहै फिर वही योग की साधना तिसके मन में जाग उठती है। तिस पर दृष्टांत; जैसे कोई कार्य करता करता सो जावे जब वह जागता है तब वही कार्य करने लगताहै; इसी भांत तिस के मन में योग उपजावे है; तब मेरे योग साथ जुड़के मेरे परमानन्द अविनाशी पद में प्राप्त होता है यह

तो जिसने थोड़े दिन साधन किया था और मरने के समय तिसका मन योगसे चल्लिया तिसका वृत्तांत है। अब जिसने बहुत दिन योग साधन किया हो और मरने के समय मन चलायमान नहीं हुआ उसकी बातसुन। वह योगी भी स्वर्ग के भोग भोग कर फिर मनुष्य जन्म पावे तो बड़े बुद्धिमान्, मेरी महिमा जाननेहारे ऐसे मेरे जो योगी हैं तिनके घर जन्म पावे है। जो अति दुर्लभ से दुर्लभ हैं तहां जन्म लेकर जो कुछ पूर्व जन्म योगाभ्यास किया था सो यत्न से विनाही तिससे अभ्यास होता है जैसी पिछले जन्म तिसकी बुद्धि थी सोई तिसको बुद्धि

प्राप्त होती है। सो हे कुरुनन्दन ! योग का अभ्यास तिस से जाग उठे सो वह योगी शब्द ब्रह्म जो वेदों का तत्व है सो तिसमें मेरी महिमा को जानने लगा परग्रामी हुआ और यत्न विना ही मेरे साथ जुड़ जाता है। सब पापों को काटकर मेरे योग की साधना को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! इस योग मार्ग की सिद्धि एक जन्म में नहीं होती। अनेक जन्म बहुत वार योग करता आवे तब मेरे परमगति परमपद अविनाशी धाम को जा प्राप्त होता है। अब अर्जुन योगी भी तीन प्रकार के हैं। एक तप योगी हैं सो उनकी वार्त्ता सतारवें अध्याय में कहूंगा

तपयोगी से ज्ञानयोगी श्रेष्ट हैं। एक ज्ञान योगी हैं एक कर्म योगी, मेरी पूजा करनेहारे तपयोगी से ज्ञानयोगी अधिक श्रेष्ट है तिसकी बात सुन जिस योगी का आत्मा मेरी प्रीति साथ मेरे में मग्न हुआ क्या डूब गया और नित्य ही श्रद्धा से मेरी पूजा करता है और श्वास श्वास श्रद्धा से मेरा स्मरण भजन करता है सो मेरे मन में सर्व योगियां से श्रेष्ट है, उस से अधिक मुझे और कोई प्यारा नहीं ॥ इति श्रीभगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योग शास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन सम्वादे आत्मा संयम योगो नाम

षष्टो अध्यायः ॥ ६ ॥

❀ अथ छटवें अध्याय का महात्म्य ❀

श्रीभगवानुवाच—हे लक्ष्मी ! छठे अध्याय का महात्म्य सुन। गोदावरी नदी के तट पर एक नगर था, वहां एक जानश्रुतिराजा था। बड़ा धर्मज्ञ था। धर्म, अर्थ काम मोक्ष का साधक था। तिसकी प्रजा भी धर्मज्ञ थी, लोग राजा की स्तुति करते थे। एक दिन उस नगर में हंस उड़ते उड़ते आ निकले। उन में से एक बैठता ही उतावला उड़गया। तब नगर के पण्डितों ने कहा, हे हंस ! तू ऐसा उतावला उड़ा है क्या तू राजा जानश्रुति से आगे ही स्वर्ग को जाया चाहता है तब उन पक्षियों

में जो सरदार था उसने कहा, इस राजा से भी एक रैयक मुनि ऋषीश्वर श्रेष्ठ है। वह वैकुण्ठ का अधिकारी होवेगा। वैकुण्ठ लोक स्वर्ग से ऊंचा है जब यह वार्ता राजा ने श्रवण की तब मन में विचार करी कि मेरे से उसका पुण्य बड़ा होवेगा जिसकी यह हंस स्तुति करते हैं। विचार के कहा, उसका दर्शन करिये, राजा ने सारथी से रथ मंगवाकर सवारी करी। प्रथम बनारस श्रीकाशी जी में जाकर गङ्गा में स्नान किया, दान किया, शिवजी महाराज का दर्शन किया, फिर लोगों से पूछा यहां कोई रैयक मुनी भी है ? लोगों ने कहा नहीं, तब राजा दक्षिण

देश को गया द्वारकानाथ को परसा, वहां स्नान ध्यान
कर दान किया। लोगों से पूछा यहां कोई रैयक मुनी
है ? उन्होंने कहा नहीं। तब राजा पश्चिम दिशाको गया
जहां जहां तीर्थों पर जावे तहां तहां जा दान स्नान कर
रैयक मुनी को पूछा फिर राजा उत्तर दिशा को गया
बद्रीनाथ जी परसा वहां से राजा का रथ चले नहीं।
तब राजा ने कहा, मैंने सकल धरती की प्रदत्तिणाकरीहै
किसी स्थान रथ नहीं अटका यहां रथ अटका यहां
कोई ऐसा पुण्यात्मा रहे है जिसके तेज से मेरा रथ नहीं
चलता। तब राजा रथ से उतर कर आगे चला देखे तो

एक पर्वत की कन्दरा में अतीत बैठा है उसके तेज से बहुत प्रकाश हो रहा है। जैसे सूर्य्य की किरणें होती हैं तब राजा ने देखते ही कहा यह रैयक मुनी होगा। राजा ने दंडवतकरचरण बन्दना करी। हाथ जोड़ के स्तुति करी हे गुसाईं जी आप के दर्शन कर मेरा कल्याण हुआ। आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मैं कृतार्थ हुआ हूं। तब रैयक मुनि ने राजा का आदर किया और कहा हे पृथ्वी पति तू चार धाम के परसनहारा धर्म के साधन हारा है तू पुण्यात्मा है। सत्कार सहित राजा को अपने पास बिठा लिया सेव, कन्द मूल मंगवाकर राजा को दिये। तब राजा

ने मुनीसे पूछा किआपका तेज ऐसा किसके बल से है। तब मुनी ने कहा हे राजा मैं तो अतीत जटाधारी भस्मलगा कौपीनधारी हूं पुण्यक्या करना था। माया मेरे पास नहीं पर हमारे यहां एक बात है। नित्य प्रति गीता के छटे अध्याय का पाठ करता हूं। इस कन्दरा में इसीका उजाला है। यह सुनकर राजा ने अपने पुत्र को बुलाकर कहा, हे पुत्र आज से तू राज्य कर मैं तीर्थों को जाता हूं। इतना कहकर राजा ने राज्य त्याग दिया। रैयक मुनी से छटे अध्याय गीताजी का पाठ करना आरम्भ किया। तब पाठ करने लगा इस पाठ के प्रताप से राजा त्रिकालदर्शी हुआ

इस प्रकार वन में रहते कई वर्ष बीत गये। एक दिन प्राणायाम करके दोनों ने देह त्याग किया, स्वर्ग से विमान आये। तिनपर बैठकर बैकुण्ठ गये। श्रीनारायण जी कहे हैं हे लक्ष्मी यह छटे अध्याय का महात्म्य है सो तूने श्रवण किया है इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर सम्वादे श्री गीता महात्म्य नाम षष्ठो अध्यायः॥६॥

* अथ सप्तमो अध्यायः *

श्रीभगवानुवाच–चित राखहु चर्णारविंद भगवत् भक्ति को पाये। एक टेक डोलत नहीं, यह विध योगकमाए। हे अर्जुन। मेरे आश्रय योग धार मेरा आश्रय क्या कहियेकि

हे महाप्रभु श्रीकृष्ण भगवान् जी मैं जो तेरे स्मरण साथ योग कर जुड़िया हूं सो तुम्हारी कृपा से जुड़िया हूं आप से नहीं जुड़िया। यह विधि सगली समझ के पाया योग का राह। तुम्हारी कृपा से स्थित भई मत्ते वे परवाह

हे अर्जुन मेरे योग जानने के प्रसाद से तिनको ज्ञान उपजे है, सो ज्ञान मैं तुझको कहता हूं, जिस ज्ञानके जानने से फिर कुछ जानना नहीं रहता। जो कोई एक पुरुष संसार से विरक्त होता है जितने विरक्त होते है उन विरक्तों में कोई एक मुक्तिपद को प्राप्त होता है और जितने मुक्त होते हैं तिनमें कोई एक मेरी महिमा के ज्ञान को

पहिचानता है जो कोई कोटों मुक्त होनहारों में एक कोई जानता है। सो मेरी महिमा तूं मुझसे श्रवण कर, हे अर्जुन अप तेज वायु पृथिवी, आकाश और मन बुद्धि अहंकार यह आठ प्रकृति कही सो इनको उपजावन हारी मेरी माया है। यह आठों शरीर धारियों के बाहर भी हैं और भीतर भी हैं। जिस भांत देहों के विषे हैं सो भांत सुन धरती का अंश मास है। जल का अंश लोहू है, वायुका अंश स्वास, तेज का अंश अग्नि जो उदर में अन्न को पचावे है आकाश का अंश पुलाड़ है। मन बुद्धि और अहंकार यह सब आठों है यह सब मेरी माया है, हेमहाबाहू

अर्जुन नौवां इसमें जीव भूत है सारा जगत संसार इन्होंका है सब चौरासी लक्ष जून इन्हीं को बनाई है और बात सुन मैं कैसा हूं, सब संसार और संसार के रचने हारी मेरी माया है तिस सबकी उत्पत्ति करता हूं, पालन करता हूं, प्रलय भी करता हूं, सब से न्यारा हूं, हे अर्जुन मुझसे न्यारा कुछ नहीं सब भूत—प्राणी मेरे साथ परोए हैं ज्यों धागे साथ मणी प्रोई है। हे अर्जुन यूं कोई मत समझे, जो वासुदेव और देवकी के घर जन्मे हैं। जो सारे देह विषे जहां कोई तुचा पाड़े तहां ही पीड़ा होती है इसी तरह सबके समीप जो देखिये है सुनिये है सब में ब्रह्म

मैं ही हूं ज्यों मेरे अधार सब लोक हैं सो भी मैं हूं हे कुन्तीनन्दन सब देह-धारी जल के आसरे हैं। जलका जीव- रस है इस जल के रस को खाय कर जीते हैं, जैसे दूध विषे घी है तैसे जल विषे रस है सो जल का जीव रस है, जल रस के आधार है, सो रस मेरे आधार है सभी लोक चन्द्रमा सूर्य्य के आधार हैं, चन्द्रमा सूर्य्य ज्योति के आधार हैं। जितने ब्रह्मा से आदि लेकर विद्या के पढ़ने हारे हैं जो वेदों में मेरी महिमारूप अमृत है सो ब्रह्मा से आदि लेकर जितने वेद-पाठी हैं सो उनका अधार मेरी महिमा है। और वेद-पाठी वेद के आधारी है, वेदों का

जीवन जीवरूप ओंकार है, सो वेद ओंकार के आधार हैं
सो ओंकार मेरे आधार है। और सभी लोक आकाश के
आधार हैं और आकाश का जीव शब्द है आकाश शब्द
के आधार है शब्द मेरा आधार है, सब मनुष्य बलके
आधार हैं सो बल मेरा आधार है सब लोक धरतीके आधार
हैं धरती का जीव गन्ध है, गन्ध जो वाश्ना है सो धरती
वाश्ना के आधार है, वह वाश्ना मेरे आधार है। यह सब
लोग अग्नि के आधार हैं, अग्नि का जीव तेज है, अग्नि
तेज के आधार है, सो तेज मेरा आधार है, और सब
भूत प्राणियों का जीवन मैं हूं, जितने तपस्वी हैं सब

तपस्या के आधार हैं तपस्या मेरे आधार है। हे पुरुषों में श्रेष्ठ अर्जुन सब भूत प्राणियों का बीज तूं मुझको जान। और सनातन पहिले तूं मुझको जान और जो कुछ बुद्धवन्तों में बुद्धि है सो तूं मुझको जान तेज वालों में तेज मुझको जान बलवन्तों में जो बल है सो मेराही जान जो मुझको किसी वस्तु की वांछा नहीं, अपने आनन्दकर पूर्ण हूं, किसी साथ मेरा मोह नहीं. हे कुरुवंशी अर्जुन जो शुभ धर्म का मार्ग मारने हारा है काम सो भी मैं हूं, यह जो तीनों गुण हैं, सात्विक, राजस, तामस, तिन्हों में सब मेरीही शक्ति की सत्ता है, और मेरे में यह नहीं इन से मैं

न्यारा हूं। त्रिगुण माया, महा माया, प्रजा मोह उत्पन्न से मोह मग्न मूढ़ अन्ध महा प्रभु नहीं गंमते। देवियें गुणमई माया, देवियं अर्थ कह प्रजा रच खेल करती, देवियं यह अर्थ कह ॥ १ ॥ ऐसी माया प्रभु की; तरणी कठिन अपार। एक देव की शरण होय सो जन उतरे पार ॥ २ ॥ हे अर्जुन और उपाय माया से तरणे का कोई नहीं महामूढ़ पापी जिन्होंने शरण प्रभु की नहीं लई वह बहुत माया के भ्रम में भूले हैं। हे अर्जुन तिनका ज्ञान माया ने अछाद लिया है और स्वभाव तिनके वैसे हो रहे हैं। हे अर्जुन चार प्रकार

के जीव पुण्यात्मा हैं। एक तो रोगी मेरा स्मरण करते हैं। मनुष्य रोग मिटावन के अर्थ मेरा भजन करते हैं तिनका रोग ही गुरु है। एक ज्ञान पावने निमित्त मेरा भजन करते हैं। एक अर्थी मन की कामना पाने के निमित्त:पुत्र वा धन आदि के लिए मुझको सिमरतेहैं। हे अर्जुन चौथे ज्ञानी भजन करते हैं। तिन सभों में ज्ञानी श्रेष्ठ हैं किस कारण ज्ञानी श्रेष्ठ हैं। सत्य स्वरूप स्वामी प्रभु; अविनाशी सदा अनन्त। सुखदाता दुःख हरण प्रभु ऐसा कवला कन्त ॥१॥ इस प्रकार पहिचान कर चरण कमल का ध्यान। सो ज्ञानी अति श्रेष्ठ है; मुझ उस में

भेद न मान ॥ २ ॥ हे अर्जुन मुझ को ज्ञानी प्यारे हैं,
और ज्ञानियों को मैं प्यारा हूं, पर यह जो रोगों से आदि
लेकर मुझको सिमरते हैं, तिनको भी बुरा मत जान। सो
भी बड़े उदार हैं, बड़े श्रेष्ठ हैं, जो मुझ ईश्वर कोसिमरते
हैं, पर ज्ञानी मेरा आत्मा हैं तिन ज्ञानियों ने केवल मेरे
चरणों साथ दृढ़ निश्चय बांधा है। और तिन्होंने भी
उत्तम ठाकुर ईश्वर जाना है। हे अर्जुन बहुत जन्म
प्रयन्त भजन करते करते साधना से इनकी बुद्धि निर्मल
होती है तब उनको मेरे जानने का ज्ञान उत्पन्न होता है
कैसा ज्ञान सो सुन। तिनको सभी वासुदेव ही दृष्टि आवे

हैं सो ज्ञानी महा पुरुष महन्त कहिये है पर ऐसे ज्ञानी संसार में दुर्लभ हैं। जो मुक्ष को त्याग कर मनुष्य और देवता की उपासना करते हैं तिनकी बात सुन । कामना कर तिनका ज्ञान अच्छादिया है। कामना के पावने के निमित्त और देवता की उपासना करते हैं, और जिस देवता की उपासना करते हैं सो मैं तिनके हृदय विषे बैठकर उस देवता के विषे दृढ़ श्रद्धा लगाता हूं; तिसकी श्रद्धा तिस देवता में निश्चल करता हूं;सो मनुष्य प्रीतिके साथ देवता की पूजा करता है। और मैं ही तिस देवता विषे अन्तर्यामी होकर मनुष्यों को देवता से कामना

वर दिलाता हूं; देवता का दिया जो वर सो नित्य
अविनाशी नहीं अन्तवत है बिनस जाता है और जिनकी
निपट थोड़ी बुद्धि है देवतों की उपासना करते हैं। अब
अर्जुन और निर्णय की बात सुन। देवतों के पूजने हारे
देततों के लोक में जाय प्राप्त होते हैं। और मेरे भक्त
मेरे परमानन्द अविनाशी पद विषे जाय प्राप्त होते हैं;अब
अर्जुन और सुन मैं अविनाशी हूं; एकान्ती हूं; किसी से
प्रगट नहीं हुआ किसी ने जाना भी नहीं किसी सुधारा
भी नहीं अपनी कला कर मैं आपही पूर्ण हूं। दुर्बुद्धि
जो मत के हीन हैं सो मुझको किसी से प्रगट जानते

हैं। सो मेरे प्रताप को नहीं जानते जो मैं कैसा हूं॥
अति उत्तम वह ऊंच प्रभु तिस समान नहीं कोय
निर्मल निश्चल अति अगम; यह प्रताप प्रभु होय ॥१॥
हे अर्जुन विचारे मनुष्य क्या करें। तिनका ज्ञान मेरी योगमायाने अच्छादलिया है सो माया प्रकाश होने नहीं देती॥मोह माया महा मदर, अधमं नीच विमोच कहं।
अविनाशी अजन्मा तिह प्रताप अन लखत ॥ १ ॥ हे अर्जुन एक मेरा नाम वेदों में चैतन्य पुरुष है। तिसका अर्थ सुन ब्रह्मा से आदि चींटी प्रयन्त सब भूत प्राणी वर्तमान जो अब वर्तै हैं और जिन्होंने आगे होना है

और पीछे होय बर्तें हैं सो तिनको मैं भली भांत जानता हूं, मुझको एक तुहीं जानता है और कोई नहीं जानता क्यों नहीं जानते इन्द्रियों के भोगों में तिनकी कामना है भली वस्तु पाये से प्रसन्न और बुरी वस्तु पाये से दुःखी होते हैं, ऐसे हर्ष शोक कला क्लेश कर मोह को करते हैं इस कर मुझको नहीं पहिचानते मूढ़ हुए हैं इसी कर जन्मते मरते हैं और जिनके पाप काटे गए हैं सो ऐसे पुण्यकर्म्मी परमपुण्यात्मा हैं संसार के हर्ष शोक कला क्लेश से मुक्त होयकर मन के दृढ़ निश्चय साथ मेरा भजन करते हैं, मेरे ही आसरे हैं सो मेरे भजन के ज्ञान का फल क्या पावेंगे

सो सुन। जरा जो बुढ़ापा और जन्म मरण तिन दुःखों से मुक्त होवेंगे। तिनके मनमें मेरे जानने का ज्ञान उपजे है सो कैसा ज्ञान, मुझको ही ब्रह्म जानते हैं मुझ को ही अद्भुत जानतेहैं, मेरेको ही अध्यात्म देव जानतेहैं। ऐसा मुझको जानकर प्राण त्यागन के समय मनका निश्चल चेता मेरेमें राखकर मेरास्मरण करतेदेहको त्यागतेहैं इसी से प्राणीपरमानन्द अविनाशीपद विषे जाय प्राप्त होते हैं।

इति श्रीभगवत गीता सूपनिषध सुब्रह्म विद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन सम्बादे प्रकृति भेदनाम सप्तमोऽध्याय

* अथ सातवें अध्याय का महात्म्य *

श्रीनारायणोवाच–हे लक्ष्मी ! अब सातवें अध्याय का महात्म्य सुन। एक पटेल नाम नगर है, तिस में संकूकर्ण वैश्य रहता था वह व्यापार करने को नगर के बाहर कहीं को जाता था रसते में संकूकर्ण को सर्प ने डसा वह मर गया उसके साथी उसकी दाह कृत्य कर आगे को सिधारे। जब फिरके घर में आये तिसके पुत्रने पूछा मेरा पिता संकूकर्ण कहां है उन व्यापारियों ने कहा तेरे पिता को सर्प ने डसा था, वह मर गया, और यह पदार्थ तेरे पिता का तू ले। एक करोड़ रुपया दिया और तिसकी गति करने को कहा। क्यूं जो वह अवगति

मरा था। उस बालक ने अपने घर आयकर ब्राह्मणों से पूछा कि सर्प के डसे से मरे की क्या गति करनी चाहिये पंडितों ने कहा नारायणबलि करावो। ऊर्द के आटे का पुतला बनाय चूनियां जड़ाये। जैसी विधि पंडितों ने कही तैसी करी बड़ा यज्ञ किया बहुत ब्राह्मण जिवाये श्राद्ध पिंड पत्तल कराये। बाकी द्रव्य जो रहा चारों भाइयों ने बांटा एक पुत्र ने कहा जिस सर्प ने मेरे पिता को काटा है मैं तिसको मारूंगा उन व्यापारियों से पूछा वह ठौर मुझे बतावो, जहां मेरा पिता संकूकर्ण मरा है व्यापारियों ने कहा चल वह ठौर तुझे बतादें, वहां लेजाय कर

खड़ा किया। देखे तो वहां एक वर्मी है तिसे कुन्दालों के साथ खोदने लगा जब छेद बड़ा हुआ वहां से एक सर्प निकला। कहा तू कौन है मेरा घर क्यों खोदता है। उस बालक ने कहा मैं शंकूकर्ण का पुत्र हूं जिस सर्पने मेरे पिता को मारा है मैं उसको मारूंगा तब उस सर्पने कहा हे पुत्र मैं तेरा पिता हूं तू मुझे इस अधम देह से छुड़ा और मुझे मत मार। यह मेरा पूर्व का कर्म था सो मैंने भोगा। तब पुत्र ने कहा हे पिता कोई यत्न बतावो जिस से तेरा उद्धार हो। तब उस सर्प ने कहा। हे पुत्र किसी गीता-पाठी ब्राह्मण को घर में भोजन करवा और उस

की सेवा करो उसके आशीर्वाद से मेरा कल्याण होगा। तब उस बालक ने अपने घर आकर अपनी स्त्री को समाचार कहा। तब उसकी स्त्री ने कहा अवश्य करो जी। साधुओं को जिमावो सन्तों की सेवा करने से उद्धार होय तो करो तब खोज कर उस नगर में जितने गीता का पाठ करते थे तिन सबको बुलाकर श्री गीता जी के सातवें अध्याय का पाठ कराया और उनको भोजन करवाया। और सेवा बहुत करी तन मन करके उनकी प्रदक्षिणा करी विनय करी हे महापुरुषो। आप आशीर्वाद करो जो मेरे पिता शंकूकर्ण का उद्धार होवे अधम

देह से छूटे। तब उन साधू ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दी तत्काल वह अधम देह से छूटकर देव-देही पाये विमान पर चढकर आकाश मार्ग को जाता हुआ अपने पुत्र को धन्य धन्य करता वैकुण्ठ धाम में जा प्राप्त हुआ। श्रीनारायणजी ने कहा, हे लक्ष्मी सातवें अध्याय का यह महात्म्य है जो तूने श्रवण किया है। जो पढ़े सुनेगा, सो सद्गति पावेगा॥ इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर सम्वादे श्री गीता महात्म्य नाम सप्तमों अध्यायः ॥७॥

❀ अथ अष्टमो अध्यायः प्रारभ्यते ❀

अर्जुनोवाच—श्रीकृष्णजी के वचन सुनकर अर्जुन

प्रश्न करे है, हे पुरुषोत्तम जो तुमको तुम्हारे भक्त ब्रह्म जानते हैं सो ब्रह्म क्या कहिये अध्यात्म क्या कहिये है कर्म्म क्या कहिये है अद्‌भुत क्या काहिये अद्वैत क्या कहिये हे मधुसूदन जो अधयज्ञ क्या कहिये है और जो प्राण त्यागन के समय तुमको ऐसा जानते हैं तिनको गति क्या है। इन सब अपने नामों को कृपा करके मुझको समझावो जी अर्जुन के प्रश्न का उत्तर श्रीकृष्ण भगवान् जी कहते हैं श्रीभगवानोवाच–हे अर्जुन मैं सब से न्यारा और अविनाशी हूं, इस कारण मेरा नाम ब्रह्म है, और मुझको अपने ही प्रताप से प्रताप है अपने बल

से बल है, और अपने ज्ञान से ज्ञान है। अन्य जितने भूत प्राणी हैं तिन सब को मेरे बल से ही बल है मेरे प्रताप से ही प्रताप है मेरे ज्ञान कर ही ज्ञान है। सब मनुष्यों का अधिकारी ठाकुर प्रभु हूं, इस कारण से मेरा नाम अध्यात्म है, और सब भूत प्राणियों को उपजाता हूं। जैसा २ किसी के मस्तक में कर्म रेखा लिखता हूं वैसाही तिसको प्राप्त होता है। इस कारण से मुझको कर्म कहते हैं पंचभूत जो अप तेज, वायु पृथ्वी, आकाश हैं, तिनका अविनाशी कर्त्ता हूं। इस कारण से मेरा नाम अद्भुत है और जो कुछ होनहारी है तिसका भी प्रभु ठाकुर मैं ही हूं इससे

मेरा नाम अद्वैत है। जितने यज्ञ होते हैं देवतों पितरों के निमित्त श्राद्ध, दाह, मनुष्य करते हैं सब में प्रथम मेरीही पूजा होती है। इससे मेरा नाम अधयज्ञ है और एक मेरा नाम देह भरतम्बर है, इसका अर्थ सुन, जितने देहधारी हैं तिन सब में मेरी देह अति सुन्दर है। मेरी देह जैसी किसी की देह सुन्दर नहीं। और न मेरे जैसा किसी में बल है। देह धारियों की क्या कहिये जितने मेरे अवतार हैं उन सब में से यह मेरा अवतार महा श्रेष्ठ है। इस कारण से मेरा नामदेहभरतम्बरहै, जोअन्तकाल देह त्यागनेकेसमयऐसा मुझको पहचानकर मेरा स्मरण करते२ देह त्यागते हैं सो

मेरे परमानन्द अविनाशी पद में जा प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं। हे अर्जुन देह त्यागने के समय जिस २का स्मरण करते देह को त्यागते हैं तिस ही को पहुंचते हैं इसीसे सर्वकालों में मेराही स्मरण कर। क्या जानिये यह देह क्षण भंगुर है किस समय छूट जावे। मेरे में निश्चल चेता राखे तो मुझको पावैगा, इसमें संशय नहीं। हेअर्जुन सब समय चित्तकर श्वास२ मेरा ध्यानकर, मेरास्मरणकर यह अभ्यास योग का लक्षण है। मुझ प्रभु में मन राखै महां ईश्वर पूर्ण प्रभु ऐसा जानकर ध्यान करने से तो मेरा विषे मिल जाता है। फिर कैसा हूं कामरूप सब का ज्ञाता

सब से आदी अलेख हूं मेरी आज्ञा सब के शिर पर
मुझ पर किसी की आज्ञा नहीं। और सूक्ष्म से अति
सूक्ष्म हूं सबका उत्पात्ति कर्ता हूं अचिन्त हूं प्रविण हूं
सबके जानने हारा हूं, जिसको अचिन्त रूप कहते हैं, वही
तेजरूप होकर सूर्य्य में विराजमान होता हूं। अज्ञान
अन्धकार से न्यारा हूं, पारब्रह्म हूं। और एक योगी पुरुष
प्राण त्यागने के समय अपनी इच्छा को निश्चल रखकर
भक्ती योग के बल से प्राणवायु को त्रिकोटी से भली
भांत ठहरा परमपुरुष की श्रद्धा साध ऐसा जप संग्रह
कर देह त्यागते हैं। सो मेरे परमानन्द अविनाशी पद

में जा प्राप्त होते हैं। और जिस पुरुष के पाने के निमित्त
ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य्य रखते हैं तिस पुरुष का महात्म्य
मैं तुझको थोड़े ही में कहता हूं। एक योगी इस प्रकार
देह त्यागते हैं सो सुन। यह नवद्वार देह के संयम
साथ मन्द कर्म्मों को हृदय से निश्चल करते हैं और
प्राण पवन को रोककर मस्तक में लेआते हैं। और मेरे
नाम का हृदय में जप करते हैं 'ओंब्रह्म' इस नाम का जप
स्मरण करते देह त्यागते हैं। सो मेरे परमपद ब्रह्म
अविनाशी पद में जा प्राप्त होते हैं। और मेरे प्रेमी भक्तों
का वृत्तान्त सुन जो मेरे मेप्री, मन करके निश्चल चेता

२०१
भाषा
भ० गी०
अध्या० ८

मेरेमें रखकर चलते,फिरते बैठते उठते मुख से राधाकृष्ण कहैं, राम भगवान, पारब्रह्म, परमेश्वर,परमात्मा, बासुदेव कृष्णविश्वंभर इननामों का जप करते हैं ऐसे जो नित्य योगी मेरे साथ जुड़ते हैं सो मुझे सुखेन ही पवेंगे। और देह को त्यागकर मेरे परमधाम में प्राप्त होते हैं। संसार तो दुःखों का समुद्रहै इससे महापुरुष जो परमसिद्ध हैं सो फिर जन्म नहीं पावेंगे। हे अर्जुन यह जीव ब्रह्मलोकतक जाकर फिर आते हैं। और संसार में जन्म मरन पाते हैं, और जिनपुरुषों ने मुझे पाया है सो प्राणी मेरे पद में आ फिर जन्म नहीं पाते। अब अर्जुन जिन पुरुषों ने मेरा

महात्म्य सुना है तिनकी दृष्टि सुन । कैसे हैं सो प्राणी चारों युग जो हैं । सतयुग, द्वापर, त्रेता, कलियुग जब यह चारों युग सहस्रवार वर्त चुके हैं तब ब्रह्मा का एक दिन होता है इसी प्रकार यह चारों युग सहस्रवार व्यतीत होते हैं तब ब्रह्मा की रात्रि होती है । अब इन युगों की मर्यादा सुन सत्रहलक्ष अठाईसहस्र वर्ष का सतयुग, बारहलक्षछानवें हजार वर्ष का त्रेतायुग, आठ लाख चौसठ सहस्र का द्वापरयुग; चारलाख बत्तीसहजार वर्ष का कलियुग है। यह चारों त्रितालीलक्ष बीसहजार वर्ष के हैं; जिन मेरा प्रताप परम अविनाशी जाना है तिनकी दृष्टि सुन: यह चारों

सहस्रवार बीत जावैं, तब ब्रह्मा का एक दिन होता है। इनके जाने से एकसा ही है अपनी आयु भोगकर ब्रह्मा भी नष्ट होजाता है, मनुष्य भी मरजाते हैं। इस से जो बिनसे हैं सो एक समान हैं तिन्होंने एक अविनाशी ही पहचान कर मेरे चरण कमलों के साथ दृढ़ निश्चय बांधा है। अब और सुन। हे अर्जुन मेरा जो है अवगति स्वरूप तिस स्वरूप से ब्रह्मा के दिन में सृष्टि उपजती है। फिर ब्रह्मा की रात्रि में मेरे अविनाशी अवगति स्वरूप में जा समाती है। हे अर्जुन यह जो चौरासीलाख जून ब्रह्मा के दिन में उपजी हैं और रात्री को मेरे अवगति

स्वरूप में जा लीन होती हैं। सो मेरा अवगति स्वरूप सब से न्यारा है। और सनातन पुरातन है सब के नाश होने से तिसको नहीं होता। ऐसा तो परम अविनाशी हूं और किसी ने कभी प्रगट देखा भी नहीं इस कारण से इसका नाम अवगति है उसको परमगति कहते हैं। उसके प्राप्त होने से फिर संसार के मार्ग में नहीं आता। सो परमधाम मेरा घर है। हे अर्जुन सो पुरुष सब से न्यारा है और तिस मार्ग के पाने को उपाय सुन। जिस मार्ग के पाने से अनन्त भक्ति अखंड भक्ति कर पावे है अब अखण्ड अनन्त का वृत्तान्त सुन मेरे

साथ दूसरा देवता नहीं पूजना, मेरे भजन बिना एक श्वास नहीं खोना इसका नाम अनन्त अखण्ड भक्ति है। इस भक्ति से मैं पाया जाता हूं। सो कैसा पुरुष है जिस से सभी सृष्टि उपजती है फिर उसमें जा लीन होती है। हे अर्जुन और सुन इच्छाचारी जो दो योगी हैं एक तो देह त्याग कर मुझ पारब्रह्म में जो लीन होते। फिर संसार मार्ग में नहीं आते। दूसरे योगी चन्द्रमा के लोक तक जाकर फिर आते हैं। अब जो चन्द्रमा के लोक तक जाकर फिर आते हैं तिनकी बात सुन। वह इच्छाचारी योगी कब देह को त्यागते हैं। जब मनुष्यों का

दिन होता है शुक्लपक्ष चान्द्रायण सोई पितरों को दिन होता है। और कृष्णपक्ष जो अंधेरा पक्ष है सो पितरों की रात्री होती है। देवताओं का दिन कौन है जब छः महीने सूर्य्य का रथ उत्तरायण रहता है। और छः महीने सूर्य्यका रथ दक्षिणायण होता है तब देवताओं की रात्री होती है वह इच्छाचारी योगी जबदेवताओं का पितरों का मनुष्यों का दिन हो तब देह का त्याग करे हैं। मनुष्य भी जागते हों पितर भी और देवता भी जागते हों सो देह त्यागकर मनुष्यों का पितरों का, देवताओं का कौतुक देखते हुए जाते हैं। इन लोकों से आगे अग्निका जोत नामा नगरहै

तिसका कौतुक देखते हुए मेरे अविनाशी परम पद में जा लीन होते हैं। तब मेरे जानने हारा परम सुखरूप हो जाता है। अब दूसरे योगी की बात सुन जो जाकर फिर आवे है। वह योगीश्वर जब मनुष्यों की देवताओं की रात्री होती है तब देह त्यागकर इन लोकों के बीच होकर एक धुएं का नगर है उस बीच से चन्द्रमा की ज्योति में जा प्राप्त होता है। तहां कितनाक काल बास करके फिर मनुष्य लोक में आवे है यह दोनों मार्ग योगियों के पुरातन हैं। एक का नाम क्लचांदनी रात्री और एक का नाम कृष्ण अंधेरी रात्री एक मार्ग

को गये फिर नहीं आते एक मार्ग को गए फिर आते हैं। २०६
हे अर्जुन! तुमने दोनो मार्ग योगियों के सुने। जिन्होंने भाषा
यह बात समझी है सो मोह को प्राप्त नहीं होते, इससे हे भ०गी०
अर्जुन तू भी इन सर्व कालों में मेरे साथ युक्त रहो। अध्या ८
अब जो पुरुष इस अध्याय को पढ़े सुने तिसको कितना पुण्य प्राप्त होता है सो सुन। चार वेद पढ़े से जो पुण्य होए सर्व यज्ञ किए से जो पुण्य होय, सर्व तप करने से जो पुण्य होए, सभी तीर्थ स्नान किए से जो पुण्य होय, सब दान किये से जो पुण्य उपजे हैं सो सभी पुण्य इस अध्याय के पढ़ने से प्राप्त होंगे। जो श्रद्धा सहित इसको धारण करे

तिसको अनन्त पुण्य प्राप्त होंगे । इति श्रीभगवद्गीता सूपनिषद् सूब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे अक्षर ब्रह्म योगो नाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

❁ आगे आठवें अध्याय का महात्म्य चला ❁

श्रीनारायण जी बोले—हे लक्ष्मी ! अब आठवें अध्याय का महात्म्य सुन। दक्षिणदेश नर्बदा नदी के तट पर एक नगर है, उसमें सुशर्मा नाम एक ब्राह्मण रहता था, उसके पास बहुत द्रव्य पदार्थ था। और सन्तों की सेवा करने वाला था, बड़े यज्ञ करता था। एक दिन संत से पूछा, हे ऋषिजी मेरे संतान नहीं है। तब ऋषीश्वर ने कहा, तू

अश्वमेध यज्ञ कर। बकरा देवी को चढ़ा। देवी तुझको पुत्र देगी, तब उस ब्राह्मण ने यज्ञ करने को एक बकरा मोल लिया उसको स्नान करा मेवा खिलाया जब उसको मारने लगा तब बकरा कह कह शब्द करके हंसा। तब ब्राह्मणने पूछा, रे बकरे तू! क्यों हंसा है बकरे ने कहा, पिछले जन्म मेरे भी संतान नहीं थी, एक ब्राह्मण ने मुझे भी अश्वमेध यज्ञ करने को कहा था, सारी नगरी में बकरा ढूंढ रहा था, बकरा हाथ न लगा। ढूंढते २ एक बकरी का लेला दूध चूसता था उस लेले समेत बकरी को मोल ले लिया। जब बकरी के स्थन से छुड़ाकर यज्ञ होने लगा, तब

२.२ बकरी बोली, अरे ब्राह्मण! तू ब्राह्मण नहीं जो मेरे पुत्रको
भाग होम में देने लगा है तू महापापी है। यह कभी सुनाहै कि
भ०गी० पराये पुत्र को मारने से किसी ने पुत्र पाया हो, तू अपनी
अध्या८ सन्तान के लिए मेरे पुत्र को मारता है, तू निर्दयी है,
तेरे पुत्र नहीं होगा। वह बकरी बहुत कहरही पर मैंने होम
किया। बकरी ने शाप दिया कि तेरा भी गला इसी भांत
कटेगा। इतना कह तड़पकर बकरी मर गई। कई दिन बीते
मेरा भी काल हुआ। यमदूत मारते २ धर्मराज के पास ले
गये। तब धर्मराज ने कहा इसको नरक में देवो यह बड़ा
पापी है। फिर नरक भुगाकर वानर की योनि दी। एक

बाजीगर ने मोल लिया। वह मेरे गले में रज्जु पाकर
द्वार द्वार सारादिन मांगता फिरे। खाने को थोड़ा दियाकरे
जब वानर की देह छूटी तो कुत्ते का जन्मपाया। एक दिन
मैंने किसी की रोटी चुरा खाई। उसने ऐसी लाठी मारी
कि पीठ टूट गई। उस दुःख से मेरी देह छूट गई। फिर घोड़े
की देह पाई उस घोड़े को एक भठियारे ने मोल लिया
वह सारा दिन चलाया करे। खाने पीने की खबर न लेवे
साय पढ़े तो एक छोटी सी रस्सी के साथ बाध छोड़े।
ऐसा बांधे कि मैं मक्खी भी नहीं उड़ा सकूं। एक दिन
दो बालक एक कन्या मेरे पर चढ़ कर चलाने लगे वहां

कीचड़ अत्यन्त था। फंस गया, ऊपर से वह मारने लगे वहां मेरा मरण हुआ। इस भांत अनेक जन्म भोगे। अब बकरे का जन्म पाया, मैंने जाना था जो इसने मुझे मोल लिया है मैं सुख पाऊंगा तू छुरी लेकर मारने लगा है। तब ब्राह्मण ने कहा, हे बकरे ! तुझे भी जान प्यारी है। जैसे चिड़िया को कंकर मारने से वह आगे से उड़ जाती है अब मैं अपने नेत्रों से देखी हुई कहता हूं सो सुन ! कुरु-क्षेत्र में एकराजा स्नान करने आया। नाम उसका चंद्र-सुशर्मा था। उसने ब्राह्मण से पूछा ग्रहण में कौन दान करूं उसने कहा राजन् काले पुरुषका दानकर तब राजा

ने काले लोहे का पुरुष बनवाया। नेत्रों को लालजड़वा सोने के भूषण पहरा कर तिसको तय्यार किया। राजा स्नान करने चला स्नान करके दान किया। वह काला पुरुष कह कह कर हंसा। राजा डर गया कहे कोई बड़ा अवगुण है जो लोहे का पुरुष हंसा है। तब राजा ने बहुत दान किया वह फिर हंसा ब्राह्मण को कहा हे, ब्राह्मण! तू मुझे लेगा तब ब्राह्मण ने कहा मैंने तेरे सरीखे कई पचाये हैं। तब काले पुरुषने कहा, तू मुझको वह कारण बता जिस कारण तूने अनेक दान पचाये हैं, तब ब्राह्मण ने कहा जो गुण मेरे में है सो मैं ही

जानता हूं। तब वह काला पुरुष कह कह कर फट गया
उसमें से एक और कालिका की मूर्त्ति निकल आई तब
ब्राह्मण ने श्रीगीताजीके आठवें अध्याय का पाठकिया
तब उस कालिका की मूर्त्ति ने सुनकर देह पलटी। जल
की अञ्जलि भरके उस ब्राह्मण ने मूर्त्ति पर छिड़की
जल के छूने से तत्काल उसकी देह छूटी दिव्य देह पाई।
विमान पर बैठकर बैकुंठ को गया। तब उस अजा ने कहा
तुम्हारे में भी कोई ऐसा है जिनके शब्दकर मैं भी अधम
देह से छूटूं। तब उस ब्राह्मण ने कहा, मैं वेदपाठीहूं उस
नगर में एक साधू गीता पाठी भी था तिससे आठवें

अध्याय का पाठ सुनकर अजा की देह छूटी दिव्य देह पाकर बैकुण्ठ को गया और कहता गया। हे ब्रह्मण ! तू भी गीता का पाठ कर तुम्हारा भी उद्धार होगा, तब वह ब्राह्मण श्रीगीताजीका पाठ करने लगा श्रीनारायणजी कहे, हे लक्ष्मी ! यह गीताजीके आठवें अध्यायकामहात्म्य है सो तूने सुना है। इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे उत्तराखंडे गीतामहात्म्य नाम अष्टमोऽध्यायः॥८॥

२१७ भाषा भ०गी० अध्या ९

* अथ नवम अध्याय *

श्रीभगवानुवाच-श्रीकृष्ण भगवान् जी अर्जुन को कहे हैं हे अर्जुन ! मैं गुह्य से परम गुह्य ज्ञान तेरे प्रति

कहता हूं तू सुन तेरे प्रति क्यों कहता हूं तू मेरे वचनों की निंदा नहीं करता, सत्य सत्य कर मानता है। इसीसे ज्ञान जिसके जानने से संसार से निर्लेप रहेगा। जितनी विद्या है और जो गुह्य वस्तु है तिनका भी राजा है। और पवित्र से अति पवित्र है उत्तम से अतिउत्तम है। और अगम पुरुष जो किसी के कहे जाना नहीं जाता तिसको प्रत्यक्ष दिखाऊंगा जिस ज्ञान के जानने से अति सुन्दर अविनाशी पुरुष प्राप्त होता है ऐसेज्ञानकोजोपावेहै तिसकी बात सुन। हे परंतप अर्जुन! जो ऐसेज्ञानके जानने से विना हैं, सो प्राणी मुझको नहीं पाते बारम्बार

संसार में जन्मते हैं। अब अर्जुन और सुन जिस ज्ञान की पीछे महिमा कही है सो सुन। हे अर्जुन मेरा जो अव्यक्त स्वरूप है तिस से सारा जगत् प्रगट हुआ है। और दूसरा जो मेरा विराट स्वरूप है तिस पर ब्रह्मा से आदि लेकर च्यूंटी पर्यंत जो बसे हैं, सो किस भान्त विराट परलोक वसे हैं सो सुन। जैसे एक बड़े वृक्ष पर असंख्य पक्षी वसते हैं तैसे ही मेरे विराटरूप में लोक देहधारी भूत प्राणी वसते हैं। और सब के हृदय में आत्माराम मैं ही वसू हूं, एक रूप तेरे रथ पर तेरे साथ कौतुक करूं हूं। हे अर्जुन देख तो मैंने तुझको अपनी प्रभुताई बड़ाई ऐश्वर्य योग कहा है। सब के भरण पोषण हारा भी मैं हूं सब से

न्यारा भी मैं हूं। सब वार्ता तेरे आगे कही है, सबका उपजावनहारा भी मैं ही हूं। और निर्लेप कैसा हूं इसका दृष्टांत सुन जैसे नित्य ही पवन का निवास आकाश में रहता है और आकाश का स्पर्श नहीं करता है। तैसे सभी भूत प्राणी मेरे से ही उत्पन्न हुए हैं। मेरे में ही वसते हैं और मैं ही सबके भीतर हूं और सब से न्यारा हूं। ऐसा निर्लेप हूं। हे कुन्ती नन्दन जब यह संसार अपनी मर्यादा लग पहुंचता है तब संसार प्रलय होकर मेरी प्रकृति जो माया है तिस में जा लीन होता है। फिर तिस माया और संसारका आदि मैं ही हूं। फिर संसार को प्रकट करता हूं और अपनी जो प्रकृति

माया है तिसमें बारम्बार संसार को प्रकट करता हूं पालन करता हूं, प्रलय करता हूं। और यह जो सब भूत प्राणियों का गांव चौरासी लाख जीव का योनि है, यह अपने बश नहीं माया के वशहै अब अर्जुन और सुन, मैं संसार को उपजाताहूं, संहार करता हूं, पर इस कर्म किये का मुझको लांछन दोष नहीं लगता क्योंकि मैं किसी के साथ ममता मोह नहीं रखता। मैं निर्मोही उदासीन हूं इन सबसे उदास हूं, इस कारण से मुझको कोई बन्धन नहीं बांध सक्ता। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन। मेरी कृपा दृष्टि को पाकर तू भी निर्लेप न्यारा हो रहो, अपने को निर्लेप जान। अब

 अर्जुन और सुन। यह जो मेरी प्रकृति माया है सो संसार
 जड़ जंगम को उपजाती है, प्रसिद्ध करती है। दूसरी प्रकार
 संसार के उपजाने की तू मत जान ऐसा ईश्वर मैं ही हूं।
 हे अर्जुन यह जो मनुष्य देह मैंने धारण की है सो मूढ़
मति मूर्ख अज्ञानी मुझको समझते नहीं मुझे पहचानते
नहीं जो श्रीकृष्णजी ऐसे प्रभु हैं, सो प्राणी मेरे प्रताप को
नहीं जानते जो मैं कैसा हूं। सब भूत प्राणियों का ठाकुर प्रभु
हूं। जो पुरुष मुझको ऐसा नहीं जानते सो क्या फल पाते
हैं, सो सुन तिनकी आशा सब निष्फल है वह जो कुछ भले
कर्म, दान पुण्य आदि करते हैं सब निष्फल हैं फिर कैसे

हैं राक्षसों जैसे तिनके स्वभावहैं। तिस प्रकृति के मोहे हुए
मुझे नहीं पहचानते। जो भले पुरुष महात्मा भक्तजनमेरा
भजन करते हैं वह कैसे हैं तिनकी बातसुन। तिनकी देव-
ताओं जैसी प्रकृतिहै मेरा भजन मुझको पहचानकर करते
हैं। कैसे पहचानकर करते हैं श्रीकृष्ण जी सर्व के आदि हैं।
निरन्तर मेरी ही महिमा को गाते हैं, पढ़तहैं, कथ कीर्तन करते हैं, दृढ़ निश्चय से मेरी पूजा करते हैं; बारम्बार मुझको नमस्कार करते हैं इस प्रकार मेरा भजन करते हैं दूसरे ज्ञानी जो मेरे हैं मुझको किसप्रकार भजते हैं तिन का भजन सुन। ज्ञानी मुझको जानते है जो एक मरमे-

श्वर पारब्रह्म है सो अनेक रूप होकर पसारिया है दूसरा भेद कोई नहीं, एक है। और कहां २ वह मुझको जानते हैं। हे अर्जुन प्रकृति भी मैं हूं यज्ञ भी मैं ही हूं सो प्रकृति यज्ञ का नाम है पर तिन में कुछ भेद है स्वाहा और स्वधा इन बचनों कर जो कुछ अग्नि में होमये है यह बचन भी मैं हूं। खीर से आदि लेकर जो अन्न है सो मैं हूं, यज्ञों में जो मंत्र पड़ते है, सो मैं हूं। विधाता भी मैं हूं, वेदों में ओंकार मैं हूं, ऋग, यजु, साम, यह वेद भी मैं हूं उस की गतिकर्त्ता भी हूं। सखा भी मैं हूं, निवास सौन के ठाहर भी मैं हूं और संसार मेरी शरण है मैं ही सबका

मित्र हूं सब को प्रलय भी मैं ही करता हूं, सबका उत्पत्ति कर्त्ता भी मैं हूं, और विश्व मेरे में लीन होता है सब बातों कर मैं पूर्ण हूं। इस कारण से मेरा नामानिध निधान कहा है। सर्व का अविनाशी बीज हूं सूर्य्य होकर मैं ही तपता हूं प्रलय होकर प्रलय भी मैं ही करता हूं। मैंनेही देवता अमर किये हैं और मनुष्यों से आदि लेकर सब शरीरों को मैंने ही मृत्यु लगाई है। हे अर्जुन जो मनुष्य मुझको इस विध कर पूजते हैं। तिनके पाप काटे जाते हैं जो प्राणी यज्ञकर स्वर्ग पाने की कामना करते हैं, वह अपने पुण्य की मर्यादा लग स्वर्ग दिव्य भोग कर जब

तिनका पुण्य क्षीण होता है तब स्वर्ग से गिरते हैं। फिर मनुष्य लोक में जन्म पाते हैं। जो इस प्रकार स्वर्ग की कामना के लिये त्रिविध यज्ञ करते हैं, सो स्वर्गके सुख भोगते हैं। पुण्य भोगकर वहां से गिरकर फिर गर्भ में आते हैं। बहुत दुःख पाते हैं और यह बात निश्चलहै कि कामना वाले को सुख नहीं। अब अर्जुन मेरे भक्तों की बात सुन। मेरे भक्त मन का निश्चल चेता मेरे में रख कर श्वास२ मेरा स्मरण करतेहैं तिनके कल्याण निमित्तमैं चारों ओर सावधान होकर फिरता रहता हूं किस प्रकार जैसे धनपात्र मनुष्य के घर के चारों तरफ़ चौकीदार

पहरा देता रहता है। हे अर्जुन! तू जो मेरा भक्त है, इस लिये मैं तेरी देह की रक्षा करता हूं। सो देख कैसा सावधान होकर तेरे रथ की रक्षा करता हूं और अपनी दिव्य महिमा कहकर तेरे मनको अपने साथ दृढ़ करता हूं, और परम प्रीति के साथ तेरे रथके घोड़े हांकता हूं, मैं ऐसे अपने भक्तों साथ प्रीति करता हूं, हे कुन्तीनन्दन्। मैं जैसा तेरे आधीन हूं, ऐसा और किसी के साथ नहीं। हे अर्जुन जो मुझको छोड़ किसी और देवता की प्रीति साथ उपासना करते हैं सो भी मेरी ही पूजा करते हैं पर भूल कर करते हैं भूल कर क्यों करते हैं सो सुन। हे अर्जुन।

सर्व यज्ञ भोक्ता मैं ही हूं। और सर्व यज्ञों का प्रभु हूं। जो मुझको ऐसा प्रभु ईश्वर नहीं जानते हैं वह जन्मते मरते हैं। अब अर्जुन एक न्याय की बात सुन जो कोई मनुष्य देवतों का उपासक है सो देवलोक को प्राप्त होता है। जो प्राणी पितरों का उपासक है सो पितरलोक में जा प्राप्त होता है। जो मुझ पारब्रह्म का उपासक है सो मुझे आ मिलता है। अर्जुन मैं जो शालिग्राम हूं। सो मेरी पाषाण की प्रतिमा अथवा धातुकी, जैसे चतुर्भुज लक्ष्मी नारायण वैकुंठ में बिराजता है सो इन विषे मेरे भक्त प्रीति साथ पुष्प पत्र जल समर्पण करते हैं

सो अपने भक्तों का दिया प्रीति साथ लेता हूं। जोतूभोजन करता हुआ पहले अग्नि में होमे है सो सब मेरे में समर्पण कर तिनका फल क्या पावे है। जो संसार के भले बुरेकर्म तिनका फल सुख दुःख तिनके बन्धन को काटकर होगा। हे अर्जुन ! मैं सब भूत प्राणियों के साथ एकसा हूं, किसी देवता के भक्त साथ मोह नहीं पर जो कोई भक्त मुझे स्मरण करते हैं तैसेही मैं तिनका स्मरण भजन करता हूं, अब अर्जुन और सुन जो कोई अज्ञानी दुराचारी पापी है किसी समय आनन्द होकर मेरा स्मरण करता है कि हे श्रीकृष्णजी ! मैं जैसाकैसा हूं, आपकीशरण हूं, मैंतुम्हारा

८३० हूं। हे अर्जुन! तिसको भी तू साधू ही जान। जिस प्राणी ने
भाषा मेरे साथ निश्चय किया है तिसको साधू होते क्या लगता है।
भ० ३।० मेरे भजन के आगे पाप क्या वस्तु है! जैसे लकड़ियों की
अध्य. ९ पोट की एक ओर से अग्नि लगावे तो एक घड़ी में सब
भस्म हो जाती है। इसी प्रकार मेरे भजन के आगे पाप क्या
वस्तु है, तत्काल धरमात्मा हो जाता है, शान्तिपद को प्राप्त
होता है। हे कुन्तीनन्दन! जो मुझको पाप योनि भी होकर
सिमरे, कौन पाप योनि स्त्री, वैश्य शूद्र से प्राणी भी परम
गति के अधिकारी होंगे, यह निश्चय जान जो
मेरे भक्त हैं तिनका नाश नहीं होता। हे अर्जुन

ब्राह्मण का जो पुण्य जन्म है सो मेरा मुखहै क्षत्रियमेरी भुजा हैं तिनको कृतार्थ होना कुछ आश्चर्य्य नहीं तिस कारण हे अर्जुन! मनुष्य का देह तुझको प्राप्त हुआ है ऐसी देह को पाकर मेरा भजन कर अब मनुष्य देह का वृत्तांत सुन जो कैसी मनुष्य देह है सदा नहीं क्षण भंगुर तत्काल नाश हो जाती है रोगी का घर है हाड़ मांस से आदि अपवित्र वस्तुओं से पूर्ण है यह तो मनुष्य देहके अवगुण हैं। अब इस देह की बड़ाई सुन जब यह भ्रमते भ्रमते मनुष्य देह में आवे है तब मेरे जानने का ज्ञान पावे है, मुझे पहचान कर मेरा स्मरण करता है। मेरे भजन के

प्रताप से मेरे अविनाशी परमानन्दपद में आ प्राप्त होता है। मेरे पदका दाता यह मनुष्य देहही है इसकी बड़ाई कही है, इसी कारण से हे अर्जुन। यह देह तुझे प्राप्तहुई। इसको पाकर मेरा भजन कर अब भजन सुन। मनका दृढ़ निश्चय मुझ में राख, मेरा भक्त हो मेरी पूजाकर मुझको नमस्कार कर। इस प्रकार निश्चय कर भजन कर "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" ऐसे मेरा भजन स्मरण कर। मेरे साथ ऐसा मिलेगा; जैसे पानी के साथ पानी मिल जाता है। इसी प्रकार मेरे साथ अभेद हो "ओंनमो नारायण" यह कहो। इति श्रीभगवद्गीता सूपनिषद्

सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन सम्वादे राज-विद्या योगो नाम नवमो अध्यायः ॥ ९ ॥

❀ अथ नवम अध्याय का महात्म्य ❀

श्रीनारायणोवाच—हे लक्ष्मी ! तू श्रवण कर। दक्षिण देश में एक भाव सुशर्मा नाम शूद्र था, बड़ा पापी मांस मदिरा आहारी था। जूआ खेले, चोरी करे, पर स्त्री रमे ऐसा पाप कर्मी था। एक दिन मदिरापान से तिसकी देह छूटी वह मर कर प्रेत हुआ एक बड़े वृक्ष पर रहे, एक ब्राह्मण भी उसी नगर में रहता था, दिनको भिक्षा मांग कर स्त्री को ला देवे, उस की स्त्री बड़ी कलहनी थी

वह कभी किसी को भिक्षा न देवे। समय पाकर उन दोनों ने प्राणत्यागे वह दोनों मर कर प्रेत हुए, वह भी उसी वृक्ष के तले आ रहे जहां प्रेत रहता था वहां रहते २ कुछ काल व्यतीत हुआ। एक दिन उसकी स्त्री पिशाचनी ने कहा, हे पुरुष पिशाच! तुझको कुछ पिछले जन्म की खबर है। तब पिशाच ने कहा, सब खबर है, मैं पिछले जन्म ब्राह्मण था। तब पिशाचनी ने कहा तैने पिछले जन्म में क्या साधना करी थी जिससे तुझको पिछले जन्म की खबर है। तब उसने कहा, मैने पिछले जन्म एक ब्राह्मण से अध्यात्म कर्म सुना था।

तब फिर पिशाचनी ने कहा तैंने और कौन साधना करी
थी और वह ब्राह्मण कौन था और वह अध्यात्म कर्म
कौन है जिस के सुनने से तुझे पिछले जन्म की खबर
रही। पिशाच ने कहा, मैंने और कोई पुण्य नहीं किया।
गीता जी का श्लोक श्रवण किया है उसका प्रयोजन
यह है। एक समय अर्जुन ने श्रीकृष्ण से तीन बात
पूछीं जो गीता जी के नवम अध्याय में लिखी हैं वह
तीन बातें पिशाचनी ने पिशाच से श्रवण करीं इन बातों
के सुनते ही एक और प्रेत वृक्ष से निकला उसने कहा, री
पिशाचनी यह तीन बातें फिर कहो जो अब कह रही थी।

पिशाचनी ने कहा, तू कौन है मैं तुझे नहीं सुनाती मैं अपने भर्त्ता से पूछती हूं। वह ब्राह्मण कौन था, वह कर्म कौन था, जिससे पिछले जन्म की खबर रही; इन बातों के सुनते करते ही प्रेत देही छूटी। तब ब्राह्मण ने कहा, हे साधू एक श्लोक गीता का है जिसके सुनने से पिशाच और पिशाचनी की देह छूटी। तत्काल देवदेही पाई स्वर्ग से विमान आए तिन पर चढ़ कर वैकुंठ को गमन करते हुए जाते२ मार्ग में देवताओं ने रोक लिया। कहा तुम ने ऐसे कौन उग्र पुण्य किये जिनके करने से इतनी जल्दी वैकुंठ को चले हो। तीर्थ, स्नान, व्रत, तपस्या, दान, पुण्य ऐसा कोई नहीं

हुआ जिसका यह फल तुमको मिला है। श्रीनारायण
जी की भक्ति नहीं करी कौन करनी के बल से बैकुण्ठ को
जाते हो। तो उन्हों ने कहा एक ब्राह्मण के मुखसे हमने
श्रीगीताजीका अर्ध श्लोक श्रवण करा है तिसके प्रताप से
बैकुण्ठ को जाते हैं तब देवतों ने सुनके कहा श्रीगीताजी
का ऐसा प्रताप है जिसके आधे श्लोक श्रवण से ऐसे जीव
बैकुण्ठवासी हुए हैं वह तीनों जा बैकुण्ठ मे प्राप्त हुए।
श्रीनारायणजीने कहा, हे लक्ष्मी! यह नवम अध्यायका मा
हात्म्य है, तैने श्रवण किया है। इतिश्रीपद्मपुराणेसती ईश्वर
संवादे उत्राखंडे गीता महात्म्य नाम नवमो अध्यायः॥९॥

❀ अथ दशम अध्यायः ❀

श्रीभगवानुवाच-श्रीकृष्णजी अर्जुन प्रति कहे हैं हे महाबाहो अर्जुन! फिर भी तू मेरा परम वचन सुन मैं तुझ को कहता हूं। क्यों कहता हूं जो तुझको सुनने की प्रीति है सो मैं तेरे कल्याण के निमित्त कहता हूं हे अर्जुन! ऐसी मेरी प्रभुता, प्रभाव और प्रताप है तिसको तू भली प्रकार जानता है। ब्रह्मा से आदि लेकर, महादेवजी और असंख्य जो मुनीश्वर हैं सो भी नहीं जान सकते। क्यों नहीं जान सकते सो सुन सर्व देवतों के आदि मैं हूं, यह देवता सब मेरा ही रूप हैं सो मेरे में उपजे हैं यह बात प्रकट है

कोई किसी से उपजता है सो उपजावन वाले की बात को उपजता हुआ क्या जाने। तिसका दृष्टांत सुन। जैसे माली बाग में वृक्ष लगावे है वृक्ष मालीका क्या कर्म जाने ऐसे जो ऋषि मुनि और देवता हैं सो मेरे प्रताप को नहीं जानते। जिस मेरे प्रताप को देवता ऋषिमुनि नहीं जानते सो तुझको कह सुनाता हूं। जन्ममरण से रहित हूं, अनादि हूं मेरा आदि नहीं। सबका ईश्वर हूं, जो पुरुष मुझको ऐसा जानते हैं तिनको क्या फल होवे। हे अर्जुन! वह ज्ञानी सब पापों से मुक्त होगा। और सुन—बुद्धि, ज्ञान, निर्मोह क्षमा, सत्य बोलना, इन्द्रिय का जीतना, सुख दुःख में

एकसा रहना। भय से निर्भय होना, दया ममता में संतुष्ट तपस्या, दान, यश, अपयश, यहसभी लक्षण मनुष्यों में पाये जाते हैं। हे अर्जुन ! मैं इनसे न्यारा हूं और जिस प्रकार सबकी उत्पत्ति करता हूं, सो भी सुन। कमल नाम नारायण जो मैं हूं सो मेरे नाभि कमल से मेरा अंशजो ब्रह्मा उपजता है तिस ब्रह्मा की इच्छा से सप्तऋषि चार मुनि उपजे। फिर सप्तऋषि चार मुनी और देवता से आदि मनुष्य राक्षस असुर सभी प्रजासृष्टि हुई है। हे अर्जुन सब संसार अनेक भांतिकर पधारा इसका आदि कर्त्ता मुझ को जानने से निश्चल योग प्राप्त होता है। इस में

संशय कुछ नहीं है। हे अर्जुन सबका उत्पत्ति कर्ता मुझ को जान। पर कुम्भकार की न्याईं कर्ता नहीं, कुम्भार तो बासन घड़े आदि बनाने के लिए माटी पृथिवी से लेता है। पृथिवी से माटी न लेवे तो कुम्भार के बासन नहीं बनते, और मैं कैसा हूं एक सृष्टिकी उत्पत्तिं करी है, किसी दूसरी ठौर से लेकर नहीं उपजाई। आपसे आप सृष्टिभी उपजाईहै और आपही सुधारी है। मेरे ज्ञानी भक्त ऐसा मुझे जानकर भाव श्रद्धा साथ मेरा भजन करते हैं। हे अर्जुन मुख्य तो मनका निश्चल चेता मेरे में रखते हैं, मेरी प्रीति में तिनके प्राण भी चले जाते हैं, पर संसार की कोई बात तिनके

चित्त में नहीं आती। और परस्पर एकांत बैठ कर मेरी गोष्ठि करते हैं। नित्य मेरी कथा सुनते हैं। जो २ मेरी कथा सुनते हैं तिसी तिसी में जाकर रमते हैं। मेरे गुणों को सुन कर संतोष सुख पाते हैं। निरन्तर मेरा भजन प्रीत साथ करते हैं और मैं तिनको बुद्धि योगदान करता हूं। सो कौन बुद्धि योग है। जिसको पाकर मुझको आ मिलते हैं। हे अर्जुन तिन पर एक और भी कृपा करता हूं। क्या, तिनके हृदय में अपनी महिमा का ज्ञानरूप दीपक जला कर प्रकाश कर देता हूं। तिसी प्रकाश के होने पर उनकी जीव बुद्धि का नष्ट हो जाता है। यह वचन श्रीकृष्ण के मुख

से सुनकर अर्जुन पूछता है। हे श्रीकृष्ण भगवान् जी। तुम
पारब्रह्म हो क्या सबसे परे हो, हे प्रभु जी ! तुम परमधाम
हो, परमधाम क्या धाम नाम घरका है, सो जिसका धाम
वैकुंठ सबसे परे है और धाम नाम तेज का भी है, और
जी तुम पवित्र हो; क्योंकि आप के चरणों से गंगा से
आदि तीर्थ प्रकट हैं। जो सबको पवित्र करते हैं; ऐसे तुम
परम पवित्र हो; सर्व व्यापी हो। पुरातन हो पूर्वजों से
भी पहले हो; दिव्य हो, किसीने तुमको किया नहीं तुम
ने सबको किया है। हे प्रभुजी ! यह महिमा आपकी सर्व
ऋषि मुनि कहते हैं। प्रभुजी तुम अपने सुख कीर्त्ति को

सर्व प्रकार, आपही जानते हो। अपना प्रताप सब कह सुनावो। पीछे कुछ न रखो अपने आत्मा की दिव्य विभूति श्रवण करावो। जिस विभूति से विस्तार व्यापक होकर विराज रहे हो। हे महा प्रभु जी तुम्हारे कौन२ भावों विषे चितवना करें। यह सारे ब्रह्मांड जो हैं; तिनमें स्थावर जंगम भूत प्राणी विचरते हैं। खेलते हैं; सो यह तुम्हारी रचना को देखकर मैं तुम्हारा भजन करता हूं; प्रभुजी मुख कमल से तुम्हारी माहिमा जो अमृतरुप है सुनकर मुझको शांति आती है अपनी महिमा दिखातेहो। हे केशब जी महानूभाव जो तुम्हारी महिमा कहते हैं सो मुझको

कैसे श्रवण करावे हैं। हे भगवन्! जितनी किसी की बुद्धि है उतनी ही कही है। पर जैसी तुम्हारी महिमा मर्यादा प्रभुता है, तैसे तिन के जानने को न देवता ऋषि मुनि न कोई और समर्थ है। हे पुरुषोत्तम जी अपने आपको और मर्यादा को तुम आपही जानते हो सो तुम कैसे हो सर्व भूतों के उत्पात्ति कर्ता हो। सबके ठाकुर हो सब के देव हो, सर्व संसार के प्रभु हो। हे प्रभुजी! तुम्हारी शक्ति सुनके तृप्त नहीं होते कृपाकर अपनी विभूति माहेमाका श्रवणकरावो। मैं देखूं जो कितनी तुम्हारी प्रभूता है, और कितनी प्रभुता के तुम प्रभु हो। अर्जुन की विनय मान कर

श्रीकृष्ण भगवानजी बोले। हे पाडवों में श्रेष्ठ अर्जुन मैं तुमको दिव्य विभूति कहता हूं, परन्तु सारे विस्तार का अन्त कुछ नहीं। अब दिव्य से दिव्य विभूति कहता हूं तिसका दृष्टांत सुन। जैसे किसी चक्रवर्ती राजा का द्वीप नगर होवे उस बड़े नगर के मनुष्य गिने नहीं जाते तिस सारे नगर से दस बीस घर परिवार समेत चुन लेवें तिन घरों में श्रेष्ठ एक मनुष्य चुन लेवें, इसी प्रकार मैं कहता हूं। हे अर्जुन मेरे शरीर के विस्तार का कुछ अन्त नहीं है थोड़ा विस्तार सुन हे अर्जुन सारे संसार का आत्मा तू मुझको जान और सर्व भूत प्राणियों के हृदय में

मैं ही बसता हूं, अब सब का आदि मध्य अन्त तू मुझको जान। यह प्रभुता थोड़े में कही। अब दिव्य और प्रधान प्रताप सुन। बारह सूर्य्य जो प्रतिमास में प्रकाशते हैं। उन में पोष मास का विष्णु नाम सूर्य्य मैं ही हूं। जितनी प्रकाश करने वाली वस्तु हैं, तिन सब में सूर्य्य मैं हूं। उनचास पवनों में मारीचि नाम पवन मैं हूं। अठाईस नक्षत्रों में चन्द्रमा मैं हूं। चारों वेदों में सामवेद मैं हूं तेतीस कोटी देवतों में इन्द्र मैं हूं। इन्द्रियों में ग्यारहवां मन मैं हूं और जो कुछ भूत प्राणियों में चेतनता है सो मेरी है ग्यारह रुद्रों में शङ्कर रुद्र मैं हूं।

दानियों में कुबेर मैं हूं। आठों वसु जो हैं तिन में अग्नि मैं हूं। सब पर्वतों में चार लाख कोस ऊंचा सोने का सुमेरु पर्वत मैं हूं। पुरोहितों में देवतों का पुरोहित बृहस्पति मैं हूं। सब सेना के नायकों में शिवजी का पुत्र स्वामि कार्त्तिक मैं हूं। सरोवरों में सागर मैं हूं। सप्त ऋषियों में भृगु मैं हूं अंगिरा भी मैं हूं, जितने बोलने वाले वचन हैं तिन में ओंकार मैं हूं, और मेरे प्रसन्न करने तोषन हारे जो समग्र यह हैं तिन में श्वास २ मेरा भजन करना जो जप यज्ञ है सो मैं हूं, जितने स्थावर, ठौर से न चलने वाले हैं उनमें हिमाचल पर्वत मैं हूं, वृक्षों में पीपल मैं हूं देवर्षियों में

नारद मैं हूं गन्धर्वोंमेंचित्ररथमैं हूं। और सिद्धोंमें कपिल
मुनि मैं हूं। और अश्वों में खीरसमुद्र के मथने से जो
अमृतके साथ निकला है जिसका नाम ऊच्चश्रवस है सो
घोड़ा मैं हूं। और हाथियों में ऐरावत मैं हूं नागों मैं अनन्त
जो शेषनाग है सो मैं हूं। नदियों मेंगंगा मैंहूं। सप्त समुद्रों
में खीरसमुद्र मैं हूं। सब जलों मैं जो जलका राजा वरुण
है सो मैं हूं। और मनुष्यों विषे राजा मैं हूं। शस्त्रों में
वज्र मैं हूं। और गौओंमें कामधेनू मैं हूं। और जितने पदार्थ
प्रजा के उपजानहारे हैं तिनों मैं काम मैं हूं। और सर्पों
मैं वासुकि नाग मैं हूं। दण्ड दायकों में यम मैं हूं।

और मृगों में सिंह मैं हूं। पितरों में अर्य्यमा मैं हूं। दैत्यों में प्रलाद मैं हूं निगलने हारों में काल मैं हूं सब पंखेरुओं में गरुड़ मैं हूं। पवित्र करने हारों में पवन मैं हूं शस्त्र धारियों में परशुराम मैं हूं नादियों में मूल जो गङ्गागोमुखी है सो मैं हूं हे अर्जुन ! सब संसार का मूल आदि अन्तमध्य मुझको ही जान। और सब विद्याओं में अध्यात्म विद्या मैं हूं अध्यात्म विद्या कौन है सो सुन सब आत्माओं का अधिकारीइससे मेरानाम अध्यात्म विद्या है सबका अधिकारी ठाकुर मैं हूं। यह अध्यात्म विद्या तूं मुझको जान जितने गोष्टकरने हारे; झगड़ा करने हारे जहां मेरी गोष्टचर्चा

करें तहां तू मुझको जान। व्याकरण में जो समास है तिन
में द्वन्द्व समास मैं हूं। अक्षर अविनाशी मैं हूं कालका
भी काल हूं। और संसार की अनेक प्रकार की रचना
रचने हारा हूं। जो सबके हरने वाले हैं तिनमें मृत्यु मैं हूं।
जो सबके देखतेही जीवको हरले जाती है। और स्त्रियों
में जो कीर्ति, श्री वाणी, स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा
और शांति यह सब स्त्रियां मैं हूं। सामगान में बृह-
त्साम मैं हूं। छन्दों में गायत्री छन्द मैं हूं। बारह
मासों में मगधर मास मैं हूं। छः ऋतु में वसंत ऋतु
मैं हूं। कपट में जुवा मैं हूं। तेजास्वियों में जो तेज है

 सो मैं हूं। जहां दो दल इकट्ठे होते हैं युद्ध करने को जहां
 जीत होवे तहां मैं हूं। जो उद्यमियों में उद्यम है सो मैं
 हूं। बलवानों में बल है सो मैं हूं। और चन्द्रवंशी जो
 यादव हैं तिनमें वासुदेव मैं हूं। पांडवों में जो हे अर्जुन! तू
है सो मैं हूं। मुनियों में व्यासदेव मैं हूं। कवि जो हैं चतुर
तिन में शुक्रदेव मैं हूं। जितने निवाबनहारे हैं तिन में
दण्ड मैं हूं जो जीतने की इच्छा वाले हैं तिनमें धर्म युद्ध
मैं हूं। अधर्म हारे की कभी जीत नहींहोती। जो पाने की
वस्तु है तिनमें मौन मैं हूं, और जो सर्व ज्ञान रूप है
सो मैं हुं, सब अन्नों में जो मैं हुं। त्रिण की जो सब

जाति हैं तिनमें दर्भ मैं हूं। हे अर्जुन ! जो सब भूत प्राणी
है तिनका बीज मैं हूं सब कुछ तूं मुझको जान मुझ विना
कुछ नहीं मैं सर्व व्यापी हूं। हे अर्जुन मै तुझको प्रधान
और दिव्य विभूति कहता हूं। तिसका अन्त कोई नहीं
यह विभूति तुझको किस भांति कही जैसे सब धागे जोड़
पहिरने वाली में से एक तत्व काट दिखाइये तिसी भांति
यह विभूति कही। अब अर्जुन और सुन जो कोई विभूति
वन्त है शोभावन्त प्रतापवान जीव है तिनको मेरे तेज
से उपजा जान। हे अर्जुन यह थोड़ा सा ज्ञान है। और
जानना क्या वस्तु है यह तो एक ब्रह्माण्ड की विभूति कही

सो सबकी सामग्री कही नहीं गई ऐसे ही असंख्य ब्रह्मांड है। नानाप्रकार की विभूतियों से भरे हुए मेरे से निकसकर निकसे जान। सो मेरे से किस प्रकार निकसे जैसे जलकर सम्पूर्ण समुद्र से एक विन्दू निकले वह बून्द रेत के, दाने पर पड़े सो तिसी दाने को भिगोवे। पीछे समुद्र पूर्ण भरा है। इसी भांति अनेक ब्रह्माण्ड मेरे से निकले हैं। मैं पीछे पूर्ण हूं यह तो विभूति कही अब अर्जुन मैं तेरे रथ पर विराजता हूं इस मेरे स्वरूप की महिमा बड़ाई सुन मेरा आदि अन्तमध्य नहीं। पूर्णब्रह्म परमधाम पुरुषरूप तेरे रथ पर विराजता हूं। इति श्री भगवद्गीता सूपनिषद

सुब्रह्मविद्ययां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संम्वादे विभूति योगोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

❀ अथ दशवें अध्याय का माहात्म्य ❀

श्रीनारायणोवाच–हे लक्ष्मी ! अब दशवें अध्याय का महात्म्य कहता हूं तू श्रवण कर। जिसके सुनने से महा पापियों की गति हो। बनारस नगर में एक धीरजीनाम ब्राह्मण रहता था। धर्मात्मा हरिभक्त एक दिन विश्वेश्वर महादेवजी के दर्शन को जाता था। गर्मी की ऋतु थी उसको धूप लगी। घबराया, उसका दिल घटने लगा अधाली खाकर मंदिर के निकट गिरपड़ा। इतनेमें भृगो

नाम गन आया। देखे तो ब्राह्मण अचेत मूर्छित पड़ा है। उसने जाकर शिवजीसे कहा, हे महादेवजी एक ब्राह्मण आपकेदर्शन को आयाथा, वह मूर्छामेंपड़ा है। महादेवजी सुनकर चुप कर रहे। उस गणने ब्राह्मण को देखा वहमरा पड़ा है। फिर जाकर कहा,हे स्वामिन् यह चरित्र मैंनेदेखा है इसने कौन पुण्य किया जिस से भली जगह मृत्यु पाई है चारों बाते इसकी भली आ बनी हैं। एक बनारस क्षेत्र श्रीकाशीजी,गंगाजी का स्नान,संतों का और विश्वेश्वर जी का दर्शन,अन्न का छोड़ना एकादशी का दिन, यह बात कह सुनाओ इसने कौन पुण्य किया था तब महादेव

जी ने कहा, हे भृंगी ! इस के पिछले जन्मकी खबर मैं कहता २:७
हूं सो सुन । एक समय कैलाश पर्वत पर [गौरी] पार्वती भाषा
और हम बैठे थे । गण भी हमारे पास थे फुलवाड़ी की भ० गी०
शोभा देख रहे थे । एक हंस मेरे दर्शन को आया, वह हंस अध्या१०
ब्रह्मा का वाहन था । ब्रह्मलोक से मानसरोवर को जाता
था, उस सरोवर में सुन्दर कमल फूले थे । एक कमल को
लांघने लगा, उसका परछावां पड़ा वह हंस अचेत काला
होगया आकाश से गिरा तब उसी समय उसी मार्गमें एक
गण और आया । हंस को गिरा देखकर गण ने कहा, हे
स्वामिन् ! यह हंस आपके दर्शन को आया था सो श्याम

वर्ण होकर गिर पड़ा है। गण मेरी आज्ञा से हंस को ले आए हम ने पूछा, हे हंस! तू श्याम वर्ण क्यों हुआ! हंस ने कहा, हे प्रभू जी! मैं आपके दर्शन को आया था मानसरोवर में कमल फूल थे मैं उनको लांघकर आया इससे मेरी देह श्यामहोगई। आकाशसे गिर पड़ा। कारण जानता नहीं कौन हुआ है। यह सुन कर शिव जी हंसे आकाशवाणी हुई, कि हे शम्भूजी! आप क्या सोचकरते हैं इस हंस का प्रसंग मैं कह सुनाता हूं। तब मैंने ने कहा आकाशवाणी तुम मेरे पास आओ मैं तुझको देखूं। तू कौन है। तब चतुर्भुज स्वरूप धारे श्याम सुन्दर

एक पारषद आया। कहा, हे स्वामिन्! तुम इस कमलनी
सेपूछो। सोयहकमलनीकहेगी। कमलनीने कहाहेशिवजी
महाराज! मैं अपनेपिछलेजन्मकीकथा कहती हूं। सुनोजी
पिछलेजन्ममेंअप्सराथी नामपदमावतीथा। पिछले समय
श्रीगंगाजी के किनारे एक ब्राह्मणस्नान करकेगीताकेदशवें
अध्यायका पाठ किया करता था। एक दिन राजा इन्द्रका
आसन चला। इन्द्र ने देखा यह ब्राह्मण गीता पाठी है। तब
इन्द्र ने मुझे आज्ञा करी तू जाके उस ब्राह्मण की तपस्या
भंग कर। आज्ञा पाकर उस ब्राह्मण के पास गई। जाकर
देखा वह ब्राह्मण एकांत बैठा है अचानक ही मेरी उस

ब्राह्मण से भेंट हुई। मेरे अंग से अंग लगा, उस ब्राह्मण ने मुझे शाप दिया। कहा,हे पापनी! तू कमलनी हो। उसी समय में कमलनी हुई। तब ब्राह्मण ने कहा, जैसे सर्पके अंग हैं वैसे तेरे भी पांच अंग हैं दो कमल चरणों के दो कमलहाथों के, एक कमल मुखकी जगह। इस मानसरोवर में साठ हजार भौंरा रहता है सो मेरी सुगन्धि कर तृप्त हुए रहते हैं। यह बात कही नहीं जाती मेरा प्रकाश क्यों होरहा है। जो पंछी मेरे ऊपर से लांघता है भस्म हो जाता है। कमलनी ने कहा, हे हंस! तू कौन है! यहां क्यों आया है? हंसने कहा, हम चार हंस हैं। ब्रह्मा के वाहन तिन में

एक मैं हूं, मानसरोवर के मोती चुननेकी आज्ञा हुई थी वहां को जाता था, मार्ग में मैंने कहा शिवजी का दर्शन करता चलूं। तेरे पर से लांघा तो श्वेत से काला होगया आकाश से गिर पड़ा। कमलनी ने कहा, मैं पहिले एक ब्राह्मण के घर कन्या थी। मैंने एक करबई का बच्चा पाला था। वह बहुत अच्छी बोली बोलता था। मैं तिसको पढ़ाया करती थी, एक दिन मेरा भर्त्ता आया। मैंने उठ कर उसका आदर न किया उसने कहा, तू उठकर रसोई कर मैं उसके लालचसे न उठी। बहुत समय लगा तो भर्ता ने शाप दिया, तू कमलनी हो उसकी सुध बुध मुझको अब

तक है : पर वह गीताके दशमें अध्यायका पाठ करता था, मैंने भी कंठ किया था। अब मैं तिसका पाठ करती हूं, उसी कर मेरा तेज है। यह पाठ का फल है। हंस ने कहा, मेरा श्यामवर्णसे श्वेत होवे, तू इस कमलनी की देह से छूट देव-देही पावें तब कमलनी ने कहा, कोई गीताजी के दसवें अध्याय का पाठ सुनावे तब उद्धार होगा। तब एक ब्राह्मण ने उस सरोवर में स्नान कर, शालिग्रामका पूजन कर, दसवें अध्याय गीता का पाठ किया। उस हंस और कमलनीने सुना तब उनका उद्धार तत्काल भया। हंस श्वेत हुआ कमलनी देवकन्या हुई, दोनों

ने हाथ जोड़कर नम्र होकर नमस्कार करी। और कहा तुम धन्य हो जो हमको कृतार्थ किया। तब ब्राह्मण ने पूछा यह क्या हुआ। हंस और कमलनी ने पिछलीवार्त्ता कह सुनाई। और कहा आपके पाठ सुनने से हमारी कल्याण हुई है, हमको आशीर्वाददो कृतार्थरूपहोकरदोनों देवलोककोप्राप्त हुए। श्रीनारायणजी कहते हैं हे लक्ष्मी यह दशवें अध्याय का महात्म्य है जो तू ने सुना है इति श्रीपद्मपुराणे सती-ईश्वर संवादे गीता महात्म्य नामदशमोऽध्यायः ॥१०॥

❀ अथ ग्यारवां अध्याय ❀

अर्जुनोवाच—अर्जुन श्रीकृष्ण भगवानजी से प्रश्न

करता है : प्रभुजी ! तुमने अपना गुह्य प्रताप श्रवण कराया है सो आपकी कृपा से सुनने से मेरा मोह दूर हो गया है। संसार उपजाना और प्रलय होना मैंने विस्तार पूर्वक सुना है। सो हे कमललोचनजी आपके अविनाशी आत्मा की महिमा मैंने श्रवण करी है। हे पुरुषोत्तमजी। आपके अविनाशी आत्मा के साथ मेरी प्रीति है सो आप मेरी विनयमानों। हेप्रभुजी ! आपने अविनाशी आत्मा का दर्शनकरावोजी। अर्जुनकी विनय मानकर श्रीकृष्ण भगवानजी बोले श्रीभगवानोवाच—हे अर्जुन तू मेरा रूप भी देख और और वर्णों के रूप भी देख नाना प्रकार

की प्रकृतियां देख। कई सूर्य्य, कईवसू, कई अश्विनी कुमार, कई पवनदेव जो तैने आगे नहीं देखे। हे भारतवं-शियों में श्रेष्ठ अर्जुन! बहुत भांत के आश्चर्य देख। हे गुड़ा केश! अर्जुन सब संसार एकट्ठा देख, मेरी देह में स्थावर जंगम और जो कुछ देखने की इच्छा है सो देख, पर हे अर्जुन! इन नेत्रों से देख न सकेगा, इस से तुमको दिव्य नेत्र देता हूं। तिससे मेरा दिव्य ईश्वर योग देख। संजय उवाच-संजय धृतराष्ट्र को कहता है। हे राजन्! महा योगीश्वर के ईश्वर श्रीकृष्ण भगवानजी: तिन्होंने यह वचन कहकर तत्कालही अर्जुन को परमरूप ईश्वर

दिखादिया है। जिस स्वरूपमें अनेकही मुख हैं और अनेक
ही दिव्य नेत्र हैं। अनेक दिव्य अद्भुत दर्शन हैं; अने-
कही भूषण पहिरे हैं। अनेक प्रकार के वस्त्र; अनेक गले
में माला; दिव्य सुगंधिता के साथ लेपन किये हुए रूप
सभी आश्चर्य और अनन्त सर्वठौर में मुख जो आकाश
में एकही वार सहस्र सूर्य्य प्रकाश कर दिखाते है सो
तिनके प्रकाश से अधिक भगवान के विश्वरूप का
प्रकाश हुआ। तहां सारा जगत इकट्ठा ही अनेक प्रकार
का देवों के देव श्रीविष्णु भगवानजी हैं। यह देख पांडव
अर्जुन के रोम खड़े होगये आश्चर्य हुआ नमस्कार

किया; दोनों हाथ जोड़कर कहता है। अर्जुनोवाच-हे देवन के देव श्रीकृष्ण भगवानजी। मैं तुम्हारी देह में अनन्तही रूप देखता हूं। और जो तुम्हारी देह के अंगहैं अनंतही देखता हूं। और जो तुम्हारा अंत नहीं देखता हे विश्वेश्वर ईश्वरऐसा तुम्हाराविश्वरूपहै अनंत जो तुम्हारे शिर हैं, तिनके मैं अति सुन्दर मुकुट देखता हूं हाथ जो हैं तिनमें गदाशंख चक्र देखता हूं, और मैं तुम्हारे तेजके प्रकाशको देखता हूं इस तुम्हारे विश्वरूप को देख नहीं सक्का, कैसा है रूप जैसे प्रबल अग्नि जलती हैजैसे असंख्य ही सूर्य्य चढ़े हैं, तैसे अमृत वे मर्यादा आपका तेज

है और जो तुम अक्षर अविनाशी हो सब से परे हो तुम जानने योग्य हो। अनेक २ प्रकार की रचना तिससे पूर्ण पहिले से पहिले हो धर्म की रक्षा करते हो सनातन पुरुष पुरातन हो। मेरे मत में तो तुम ऐसे ईश्वर हो अनादिहो तुम्हारे बलका कुछ अन्त नहीं इससे तुम्हारा नाम पराक्रम है। अनंतही तुम्हारी भुजा हैं, अनंतही नेत्र, अनन्तही मुख हैं, जिनमुखों में अग्नि जलती देखता हूं, जिस अपने तेज के प्रकाशकर सारे विश्व को प्रकाशित करतेहो और तुम्हारे अद्भुत भयानकरूपको देखकर तीनों लोक डरते है कई कोटि देवता तुम्हारेमें प्रवेश करते देखता

हूं।कई कोटि देवता तुम्हारेसामनेहाथ जोड़ कांपते देखता हूं,तुम्हारी स्तुति करते हैं। कई कोटि ऋषीश्वर और सिद्ध तुम्हारे से डरते हुए आशीर्वाद करते हैं सो हे ईश्वर तुम्हारी जय हो! तुम चिरंजीव होवो,कई ऋषीश्वर सिद्ध तुम्हारी स्तुति करते हैं, कई पुष्प चढ़ाते हैं, कई पुष्पों की वर्षा करते हैं । और तुम्हारे इस रूप को देखकर जो कई लोग डरते हैं तिनको कई मुनीश्वर कहते हैं हे लोगो ? तुम मत डरो ईश्वर परमदयालु है और कई रुद्र देखता हूं; और कई साध देखता हूं; कई ब्रह्मा, कई प्रजापति, कई पवन कई कोटि दैत्य, कई प्रकार का विश्वदेखता हूं, और कई

इस तुम्हारे रूपको देखकर विस्मय हुए देखता हूं, कई नेत्र और बड़ीयां भुजां बहुत ही तुम्हारे उरूस्थल देखता हूं, बहुतही तुम्हारे चरण, बहुत ही उदर और मुख तिन में भयानक दाड़ां देखता हूं। इसरूपको देखके बहुत डरगये हैं। मैं भी डरता हूं, फिर कैसे हो ? आकाश को छुह रहे हो ठौर २ कई सूर्य्य प्रकाश रहे हैं। अनेक ही तुम्हारे रंगहैं अनेक ही नेत्र हैं। जिस में से महाप्रलय की अग्नि के पर्वत जलते हैं। हे प्रभुजी ? यह भयानक रूप देखकर मेरा आत्मा डरगया है, धैर्य्य भी नहीं धर सकता है। हे भगवन् ! अब बस करो जी। अब प्रसन्न होवो

जी प्रभुजी महाप्रलय की अग्नि तुम्हारे मुखमें दाड़ांदेखता
हूं, अब मुझे दिशा भी भूल गई है। जानता नहीं पूर्व
पश्चिम कहां है, शान्ति भी नहीं पाता हूं; हे जगनिवास; हे
जगत के आश्रय अब बस जी बसतुम्हारा विश्वरूप देखा
अब प्रसन्न होवोजी यह धृतराष्ट्र के पुत्रकी सैना के जो
योद्धा हैं राजे; इन में मुख्य हैं भीष्म द्रोणाचार्य और
कर्ण इनसे आदि जो सभी अग्नि के पर्वतों जैसे तुम्हारे
मुख में पड़ते देखता हूं। महाभयानक जो तुम्हारे मुख
में दाड़ां हैं सो कितने योद्धों के शिर उन दाढ़ों में लट-
कते देखता हूं। फिर कैसे हैं ज्यों नदी के प्रवाह बहुत

वेगके साथ समुद्र में आए पड़ते हैं। उसी भांत यह योद्धा तुम्हारे मुखमें पड़ते देखता हूं। जैसे प्रलय अग्नि जलती है तिस में बड़े उतावले उतावले पतंग आपड़ते हैं वैसे ही बड़े बेग के साथ योद्धा पड़ते हैं। तिनको श्वासों से निगलते जाते हो। महा अग्नि साथ भरे हुए तुम्हारे जो मुख हैं तिन मुखों से संसार को उपजाते हो और तुम्हारे तेज कर सारा विश्व भर रहा है। हे कृष्णजी। मैंतेरामुख देखता हूं;तुम एकही भयानक रूप धारकर सारे विश्वको भर रहे हो। हे देवोंके देव! तुझ को मेरा नमस्कार है बस जी बस अब प्रसन्न होवो

जी जो तुम्हारा आदि अंत मैं पाया चाहता था, सो नहीं पासक्ता। तुम्हारा आदि अंत होवे तो पायें, आप अनन्त हो। अर्जुन के वचन सुनकर श्रीभगवान जी बोले—श्रीभगवानोवाच–हे अर्जुन! इस समय इन लोकों का काल रूप मैं ही हूं। यह मैंने बड़ा रूप धारा है। इन लोकों के नाशके निमित्त। यह जो दुर्योधन की सेना के योद्धा हैं जो सन्मुख देखते हो सो तुझ एक के विना यह सभी नहीं होंगे इनको ग्रास करलूंगा, इस कारण से हे अर्जुन उठ खड़ा हो। यश ले, इन सब शत्रुओं को जीत कर बड़े धर्म के साथ पृथिवी का राज्य कर। दाएं बाएं हाथ से एक जैसा

शत्रुओं को मार। यह सभी योद्धा मैंने मार रखे हैं तू तो निमित्त मात्र कथनी मात्र है। जो लोक कहें यह सभी योद्धा अर्जुन ने मारे हैं। यह योद्धा कैसे हैं? सो पहिले द्रोणाचार्य कैसे हैं? जिनसे तूने शस्त्र विद्या सीखी है, जो बा ण की चोट से चूकता नहीं, देखो बाणों से भी मारे हैं, शाप कर भी मारे हैं। ऐसा द्रोण है और भीष्म कैसा है। जिसका पिता शन्तनु का वर है कि हे पुत्र जब तेरी इच्छा होगी तभी मरेगा। जयद्रथ कैसा है। जिसका पिता तप करता है कुरुक्षेत्र के मड में, जहां परशुराम के कुंड हैं, सो कैसे कुंड हैं। जब इकीस बार परशुराम ने पृथिवी

निक्षत्रायण करी है। तिन क्षत्रियों के रुधिर साथ कुंड भरे हैं। तिन कुंडों पर जयद्रथ का पिता तप करताहै। यह वांछ करता है कि जो कोई मेरे पुत्र का सिर काटे उसका भी शिर भूमिपर गिर पड़े। और करण जो है सूर्य का अवतार इन से आदि और योद्धा हैं यह तेरे से मरने नहीं यह मैंने पहिलेही मार रखे हैं। मेरे मारे हुए को तू मार और डर मत। संजय उवाच-संजय राजा धृतराष्ट्र को कहे है। हे राजा जी ! कीटी जो अर्जुन मुकट साथ जन्मा है जिससे अर्जुन का नाम कीटी है। सो भगवान के वचन सुनकर दोनों हाथ जोड़ भयभीत होकर श्रीकृष्णभगवान

के चरणों पर गिरपड़ा और प्रसन्न होकर बोला अर्जुनोवाच–हे भगवानजी ! जो कुछ तुम्हारी देह में चरित्र देखा है सो कहता हूं । तुम्हारे शरीर के जो अंग हैं तिन्हों में बहुत जगह पर साधू सन्तों महन्तों की मंडालियां देखी हैं सो परस्पर तुम्हारी महिमां कहते सुनते हैं। तेरे प्रसाद कर, तेरे नाम के प्रताप कर, तेरा जो परमपद मुक्तिपद, उस पद को साधू संत महंत प्राप्त होते देखता हूं । बैकुंठ भी तुम्हारी देह में देखता हूं, और संसार भी तुम्हारी देह विषे देखता हूं । तुम्हारी महिमा करने हारे भी देखता हूं, और जो कहीं कहीं

राक्षसों की सेना इस तुम्हारे रूपको देखकर डरती है। सो
राक्षस डरकर दशोंदिशाको भागते हैं। कई क्रोड़साधू
तुमको नमस्कार करते हैं। हे बड़ों से बड़े! तुमको क्यों
न नमस्कार करिये तुमको अवश्य नमस्कार करना चा-
हिये। तुम कैसे हो? इस संसार के करनेहारा जो ब्रह्मा है
तिसके भी कर्त्ता हो। और अनंत हो सर्व देवतों के
पहिले हो; प्रभु हो, इसीसे सब देवता तुम्हारे किए हुए हैं
सारा संसार जो है जगत सो तुम्हारे विषे बसे है, इस
कारण से तुम जग निवास हो। अविनाशी हो। देह से
परे हो तुम देवतों के आदि हो अनेक प्रकार के विश्व

साथ पूर्ण हो इसी से विश्व निधान हो। वेदों में जानने योग्य हो, तुम्हारा धाम जो ग्रह और तेज सब से परे है इस कारणसे परमधाम हो अनंत प्रकार के संसारके कर्त्ता हो। हे प्रभु जी! विभूतिरूप भी तुम हो, चन्द्रमा भी तुमहो प्रजा के पतिभी तुमहो, पिता माता तुम और दादा पर दादा भी तुमहो, हे प्रभुजी! यह तुम्हारे एक २ रूप को मेरा सहस्र २ वार नमस्कार है फिर भी नमस्कार नमस्कार है हेमहाप्रभुजी तुमको नमस्कार! तुम्हारे मुखको नमस्कार! तुम्हारी पीठको नमस्कार! तुम्हारे तले ऊपर को नमस्कार! तुम्हारे सर्व ओर को नमस्कार! तुम्हारे बलवीर्य

का भी और पराक्रम का भी अन्त नहीं। सबके भीतर हो, बाहर भी तुमहो। हेप्रभुजी। जो मैंने अपना सखा जानकर कहने और न कहने योग्य वचन कहे हैं, सो क्या वचन। हे कृष्ण ! मेरा रथ ले आओ हे देव ! मेरा अमुक कार्य कर। हे सखे ! मेरी अमुक टहलकर इत्यादि जो मैंने आपकी अवज्ञा करी है। हे प्रभुजी। आपको पहचाना न था। जो तुम ऐसे हो। मैं तुम्हारी महिमाके जानने को सावधान न था, जो अचेत था। हे प्रभु जी ! जो कुछ मैंने आपकी अवज्ञा की हंसते हंसते और आप के साथ मार्ग चला हूं, और आपके साथ बराबर शय्या

पर शयन किया आपके समान एक आसन पर बैठा हूं हे अच्युत अविनाशी पुरुष जी मेरी अवज्ञा क्षमा करो। प्रभुजी! तुम्हारी महिमा अप्रमेय अप्रमाण है, लेखे से परे है, इस कारण से अप्रमेय है। हे प्रभुजी! स्थावर जो अपनी ठौर से न चले वृक्ष पर्वत आदि तृण घास जैसे और जंगम जो चर्णों से चलते हैं, इन सबके पिता हो, अवश्यकर तुम सब के पूज्य हो, और सबकेगुरुहो तुम्हारे समान कोई नहीं, तुम सबसे अधिक हो त्रिलोकी में तुम्हारे समान कोई नहीं इसीसे तुम ईश्वर हो, हे ईश्वर तुम सर्व प्रकार स्तुति करने योग्य हो। मुझ पर कृप

करो जैसे पुत्रका अपराध पिता क्षमा करता है। जैसे पति- ८८१
व्रता स्त्री का अपराध पति क्षमा करता है इसी प्रकार मेरा भाषा
सब अवज्ञा क्षमा करो। हे प्रभुजी! ऐसा रूप तुम्हारा मैंने भ०गी०
आगे कभी नहीं देखा सो इस स्वरूप को देख कर मुझे अध्या११
डर आता है हे जगन्निवास! हे देव। अब बसजा वस करो
प्रसन्न होकर वही दिव्य स्वरूप दिखाओ मुझे वह स्वरूप
देखने की इच्छा है। सो कैसा स्वरूप परम सुन्दर चिकने
घुंघुर वाले केश शोभा पा रहे हैं। और अपने ऊपर पीतां
बर पहरे हो, कण्ठ में बनमाला विराजे है, एक हाथ में
कमोद की गदा, एक हाथ में शंख चक्र सुदर्शन, एक

हाथ में मेरे रथ के घोड़ों की बाग एक हाथ में चाबक। हे विश्वरूप! हे सहस्रबाहो। अब मुझे वही चतुर्भुजरूप दिखाओ। अर्जुन की विनय मानकर श्रीभगवानजी बोले श्रीभगवानोवाच-हे अर्जुन! यह विश्वरूप तुझको मैंने प्रसन्न होकर दिखाया है। यह कैसा है, अपने आत्मा का दर्शन तुझे दिखाया है फिर कैसा सबसे परे है, अनन्त है, जिसका अन्त नहीं। सो ऐसा परम ईश्वर रूप तुझको दिखाया है, जो कोई चारों वेद पढ़े तो भी यह रूप देखने से दूर हो। कई यज्ञ करे, अनेक पाठ करने से भी यह रूप नहीं देख सका, तीर्थ के दर्शन

करने से अनेक तपस्या करने से भी यह दर्शन दूर हैं।
हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! त्रिलोकी में कोई नहीं
जो यह दर्शन देख सके। तुझे ही दर्शन दिखाया है
और किसी ने नहीं देखा। इसी से हे अर्जुन। भय को
त्याग। डरकर जो मूढ़ सा हो रहा है सो डर को त्याग
अभय हो। मेरा प्रीतिपान हो, मनसे मेरे साथ प्रीतिवान
हो, फिर वही मेरा रूप देख। संजय उवाच-संजय धृत-
राष्ट्र को कहे है। हे राजा जी! श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुन
को यह बचन यह के फिर वह अर्जुन को सखारूप
दिखाते हैं। जो सत स्वरूप था, सो अर्जुन का

दिखाया, भय तिसका दूर किया। फिर अर्जुन बोला।
अर्जुनोवाच–हे जनार्दनजी ! यह आपका स्वरूप देखा
है। सो अति दुर्गम है। श्रीभगवानुवाच–हे अर्जुन ! यह
मेरा रूप देवतों को भी दुर्लभ है। इस मेरे रूप देखने
की देवते भी वांछा करते हैं जो रूप तुझे दिखाया है सो
वेद पाठियों को भी दुर्गम है। हे अर्जुन! वेद के पढ़ने से
भी मैं नहीं पाता और न तपस्या से पाता हूं, न यह
किये से पाता हूं, हे अर्जुन! अनेक प्रकार के जो धर्म हैं,
तिन्हों कर भी मुझे पाना कठिन है। जैसे तुमने पाया
है तैसे किसी ने नहीं पाया सो तूने क्यों पाया है तू

मेरा अनंत भक्त है। मुझ बिना तू किसी का भजन नहीं करता, इसी से मुझको देखा है। इन नेत्रों से भी और ज्ञान नेत्रों कर भी देखा है। प्रेमकर तुमने मुझे पाया है मैं तेरे अधीन हूं और तू मेरे विषे प्राप्त हुआ है, तू मुझ विषे मैं तेरे विषे। हे पांडव नन्दन अब जो तुझ को करने आई है सो सुन परम प्रीति साथ मेरी पूजाकर श्वास २ मेरा नाम स्मरण कर। इस प्रकार मेरा भक्त हो संसार के लोगों साथ प्रीति न कर सब भूत प्राणियों से निर्वैर हो जब ऐसा होवेगा तब मेरे विषे प्राप्त होवेगा यह निश्चय जान॥ इति श्रीभगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योग

शास्त्रे श्रीकृष्णार्जु . संवादेविश्वरूप दर्शननामएकादश अध्याय ।११॥❀अथ ग्यारवें अध्याय का महात्म्य ❀

श्रीनारा णोवाच–हे लक्ष्मी अबग्यारवें अध्यायका महात्म्य सुन तुंग भद्र नाम नगर था, जिसके राजाका नाम सुखानन्द था वहां श्रीलक्ष्मी नारायणकी सेवा बहुत करते थे, वहां एक ब्राह्मण बड़ा धनपात्र विद्वान् पंडित रहता था। उसब्राह्मणका नियम था नित्यगीताजी के ग्यारवें अध्याय का पाठकरता था और राजाभीवहां नित्य लक्ष्मीनारायण की सेवा करता था।और पाठभीनित्य श्रवणकरता था ऐसे ही सेवा करते बहुतकाल व्यतीत हुआ। एक दिन राजा घर

को गया, उस दिन बहुत अतीत देशान्तर फिरतेफिरतेउस
नगर में आए अतीतों ने राजा से कोई जगह मांगी। कहा
हे राजन्! हमकोई दिन रहेंगे, हमें जगह दीजेराजाने बड़ी
हवेली खुलवाए दी, वहां अतीत उतरे, राजा ने सीधा
दिया, रसोई कर अतीत बड़े प्रसन्न हुए, अमृत वेले राजा
उनकेदर्शन को गया। राजा का बेटा भी साथ था, कईभृत्य
साथ थे, राजा उस हवेली में आया जो महंत था, उसके
साथ राजा बात चीत करने लगा, और राजा का पुत्र
खेलने लगा, वहां एक प्रेत रहता था। उस प्रेतने राजाके
पुत्र को मारा चाकरों ने राजाको खबर करी। हे राजाजी!

कुंवर को प्रेत ने मारा मारा है। तुम बैठे हो, राजा यद्यपि सेवा करता, कथा श्रवण करता था। परन्तु पुत्र के मोह कर राजा के मन में दुर्बुद्धि आगई। राजा बोला हे सन्त जी आप का दर्शन हम को वहुत फला है। एक पुत्र था सो भी प्रेत ने मार लिया। तब ब्राह्मण ने कहा, हे राजा जी चलो देखें कहां है तेरा पुत्र। राजा ब्राह्मण महंत सभी वहां आये जहां राजकुमार मरा पड़ा था। तब ब्राह्मण ने कहा, अरे प्रेत। तू इस लड़के पर कृपा दृष्टिकर जो यह लड़का जी उठे और मैं तुझेगीताके ग्यारवें अध्याय का पाठ सुनाता हूं। तू श्रवण कर इस से तेरा कल्याण

होगा, जितने जीव पक्षि मारे हैं, तिनका भी उद्धार होगा। अब तू अपने जन्म की बात कहो, क्योंकर प्रेत हुआ है तिसके पीछे तेरा उद्धार करूंगा। तब प्रेत बोला मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मण था, इस ग्राम के बाहर हल जोतता था। वहां एक दुर्बल ब्राह्मण आया था, सो इस खेत में गिर पड़ा उसके अङ्गों से रुधिर निकला, एक इल्ल ने उसका मांस नोच खाया, मैं बैठे देखता था, मेरे मन में दया ना आई जो इस ब्राह्मण को छुड़ा दूं। इतने में एक और ब्राह्मण आया उसने देखा एक दुर्बल रोगी ब्राह्मण गिरा पड़ा है, चीलें नोच नोच मांस खाती हैं उसने देख

कर मुझे कहा, अरे हल जोतने वाले ब्राह्मण तू यज्ञोपवति धारण किये बैठा है कर्म्म तो तेरे चंडाल के हैं, निर्दयि तेरे खेत पास ब्राह्मण का मांस चीलें तोड़ खाती हैं, और आखों से अंधा है तू छुड़ाता नहीं। इस कारण तू बड़ा पापी है यह तीनों अवकर्म्मी नरक को जाते हैं. एक तो किसी को चोर लूटता मारता होवे और साक्षी होकर भागजावे। दूसरा रोगी होवे तिसकी खबर लेवे नहीं। तीसरे किसी को भूत लगा हो, यह छुड़ाना जानता होवे छूड़ावे नहीं। यह तीनों पापी नरक को जाते हैं। जो सर्व जीवों पर सहायता और दया करते हैं तिनको अश्वमेधयज्ञ का

फल प्राप्त होता है। सो मेरे शाप से तू प्रेत योनि पावेगा। तब मैंने उसके चरण पकड़कर कहा, मेरा उद्धार कैसेहोवे। तब ब्राह्मण ने कहा, जब तुझको कोई गीता के ग्यारहवें अध्याय का पाठ सुनावे- तब तेरा उद्धार होगा। प्रेत ने अपनी कथा सुनाई। तब ब्राह्मण ने राजा से पूछा राजाने कहा,इसका उद्धार करिये और मेरे बेटे को जीवित करें। तब ब्राह्मण ने गीताके ग्यारहवें अध्याय का पाठ किया और प्रेत पर जल छिड़का तत्काल प्रेत की देह से छूटकर देव देही पाई। उसने पिछले जो कोई जीव खाये हुए थे तिनका भी उद्धार हुआ राजा का पुत्र सावधान हुआ।

श्याम सुन्दर चतुर्भुजरूप होके खड़े होगये। स्वर्ग से विमान आए, तब वह प्रेत बोला—हे राजा! अपने पुत्र को मिल, जब मिलने लगा। तब वह बोला हे राजा! जिसकी कुलमें एक वैष्णव होवे उसकी कई कुलों का उद्धारहोता है तू आप बड़ा वैष्णव है तब राजा ने मोहकर कहा हे पुत्र! तू मुझको मिल पुत्र बोला पुत्र तू किसको कहता है मैं कई वार तेरा पुत्र भया कईवार तेरा पिता भया यह प्रेत धन्य है जिसने मुझे मारा और श्रीगीता जी के ग्यारहवें अध्याय का पाठ मैं श्रवण कर कृतार्थ हुआ हूं। फिर राजाने कहा हे पुत्र! तू मेरे घरमें एक ही पुत्र था मेरी

अब कौन गती करेगा। और कोई संतान नहीं। तब पुत्र ने कहा हे राजा जिस कुल में एक वैष्णव होवे उसका उद्धार होता है। पिता! तू चिन्ता न कर अब मैं नारायण जी परायण हुआ हूं। जब मैं श्रीनारायणजी परायण हुआ हूं तब मैं श्रीनारायणजी का दर्शन करूंगा। तब तेरी कुल का उद्धार होगा। इक्कीस कुलें तेरी उद्धारेंगी तो राजाने कहा सिधारो विमानोंपर बैठकर बैकुंठ में गये। तब उस ब्राह्मण से राजाने ग्यारहवें अध्याय का पाठ श्रवण किया। मन में कहा, अब पुत्र पुत्री कोई नहीं। विरक्त होकर गीता का पाठ करे तुलसी में जल डाला करे ब्राह्मण साधू

चलते रहे। राजा भी परमगति का अधिकारी हुआ। श्रीनारायण जी कहते हैं। हे लक्ष्मी ! यह ग्यारहवें अध्याय का महात्म्य है जो तैंने श्रवण किया है॥ इति श्रीपद्मपुराणे सतीईश्वर सम्वादे उत्तरखण्डे गीता महात्म्य नाम एकादशो अध्यायः॥ ११॥

* अथ बारहवां अध्याय *

अर्जुनोवाच–अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान से प्रश्नकरता है। हे प्रभुजी। तुम्हारे भक्त तुम्हारे इस कमल नयन के उपासक हैं एक तुम्हारे आश्चर्यरूप के उपासक हैं और एक जो तुम्हारा अक्षर अविनाशी रूप है तिसके उपासक हैं,

और एक तुम्हारा रूप आनन्द देश है, जो मन वाणी से परे है तिसकी उपासना करते हैं, इन सबमें चतुर उपासक कौन है? हे प्रभुजी? यह कहो अर्जुन की विनय मान कर श्रीकृष्ण भगवान जी बोले । श्रीभगवानोवाच-हे अर्जुन यह जो मेरा कमल नयन प्रकटरूप है सो मनका निश्चल चेता मेरे में राख। मन को एकाग्र करके परम श्रद्धा साथ जो इस कमल नयन के उपासक हैं, मेरे मत में यह भक्त श्रेष्ठ हैं और चतुर हैं, अब दूसरों का वृत्तांत सुन। प्रथम अक्षर अविनाशी है, तिसकी महिमा मन बाणी पर आती नहीं । जिह्वा कह नहीं सकती,

इससे अनिरदेश कहते हैं, जो नेत्रों से देखा न जाए तिसे अव्यक्त कहते हैं। सर्व व्यापी जो है मन कर तिसका प्रताप चिंतविया नहीं जाता। इसकारण से अचिंत कहिये तिसमें कोई विकार नहीं। कभी घटता बढ़ता नहीं इसी से अचल कहिये, कभी स्थान से चलता फिरता नहीं, इससि अचल कहिये। फिर किसीका हलाया हिले नहीं, इसी से ध्रुव कहिये यह आठ प्रताप मेरे अव्यक्त स्वरूप के है। जो कोई इसकी उपासना करे तिसके लक्षण सुन जिन साधनों कर अव्यक्त रूप पाये है। तीन साधन करने योग्य हैं। मुख्य तो सब इन्द्रियों का संयम

करना इन्द्रियां जीतनी सब भूत प्राणियों साथ समता और सब के कल्याण साथ प्रीति जो है अविनाशी पुरुष सब जीव सुखी रहें, इन साधनों कर अविगत स्वरूप का उपासक अव्यक्त जो मैं ईश्वर हूं, सो मुझको पावे है। अब और सुन। हे अर्जुन अवगति स्वरूप के उपासक जो हैं तिनको अधिक कष्ट है, क्या क्लेश है? और समता दृष्टि भी कठिन है, सो सुन। जो कोई पूजा करे तिसका भला वांछना। जो पूजा न करे तिसकाभी भला वांछना यह जो जितने जीवधारी हैं तिनको यह कठिन साधन है तिसके पाने के निमित्त यह कठिन साधन क्या है सो तो

देखने का नहीं देख कर क्या सुख पावे बचनों कर तिस की माहिमा कही नहीं जाती, सो जिह्वा किस गुण को पाकर सुख पावे, मनकर चितवने का नहीं। मन किस स्वरूप को चितवे इससे जितने देहधारी हैं तिन को अव्यक्त की उपासना में कष्ट है। हे अर्जुन मेरे कमल नयन के जो उपासक हैं तिनकीसुन।मैंजो देवकीनन्दन यशोदानन्दन, नन्द को नन्दन, परम सुन्दर, आनन्द का समुद्र हूं। जो मेरे इस रूप के उपासक हैं और मेरी शरण आए हैं, जिन्होंने सब कर्म मुझ में समरपे है। कैसे, जो यह घर जो है हे भगवान! तेरा है। मैं दास हूं, दास भाव होकर मेरा भजन

करे हैं और रसोई आदि जो है सब मुझको समर्पण करे मेरा शीत प्रसाद जानकर खाते हैं। हर समय मेरा ही ध्यान, मेरा ही स्मरण, हे गोबिन्दजी विष्णुपद गाना मेरा कीर्तिनी करना, इसप्रकार आनन्द होकर मेरा भजन मेरी उपासना करते हैं। तिन्हों के साथ मैं कैसा हूं, सो सुन यह संसार जो दुःखरूप जन्ममरण का घर तिससे उद्धार करता हूं, तत्तकाल ही मुक्त करता हूं। जिन पुरुषों ने मेरे में मन का निश्चल चेता रखा है। हे अर्जुन! मेरे उपासक जो सेवक हैं तिनको यह साधन करने योग्य हैं कौन पांहिले तो मनका निश्चल चेता मेरे में रखना और

बुद्धि भी मेरे में रखना, यह दोनों साधन मेरे भक्तों को करने योग्य हैं। इस से और कोई मेरे रिझाने का साधन नहीं, इससे मेरे भक्तों को भक्ती करनी रही नहीं। हे अर्जुन। मनका निश्चल चेता मुझ में लगा है। तुझे बाकी करना कुछ नहीं रहा। तू कृतार्थ हुआ है मेरे को त्याग के मन किसी और बात को जावे तब बुद्धि साथ मन को रोक मेरे में निश्चल कर इसका नाम अभ्यास है। हे अर्जुन! जो तेरे से अभ्यास योग किया न जाए और मन में मेरा ध्यान न लगे प्रातः काल से लेकर रात्रिशयन प्रयंत मेरी सेवा पूजा कर। जब मेरे अर्थ मेरी पूजा करेगा

तब तू संसार से मुक्त होवेगा। जो पूजा भी न कर सके तो दोनों हाथ जोड़कर मेरे चरण कमलों को नमस्कार कर। मुख से यह कहो श्रीकृष्ण भगवानजी मैं तेरीशरण हूं,जब इस प्रकार मेरी शरण आवेगा तब मन मेरे चरणों साथ निश्चल कर रखेगा। हे अर्जुन! मनकानिश्चल चेता मेरे में राख, यह मार्ग बहुत कल्याण का है। इसे अभ्यास योग कहते हैं इस अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है। कौन ज्ञान? मेरी महिमा का जो कहना सुनना और इस ज्ञानसे मेरे ध्यान साथ जुड़ना श्रेष्ठ है। जब मेरे ध्यान साथ जुड़ता है तब सभी कर्मों के फल त्यागे जाते हैं

क्यों जो मेरा भक्त होता है सत्य स्वरूप और
जो कोई मेराभक्त सत्यपद को पावे है तिसके लक्षण
सुन। किसी भूत प्राणी का बुरा न मनावे। सबका मित्र
होए रहे, सबसे कृपालुता। अहंकार ममता से रहित होकर
कहे कि न कुछ मेरा है न कुछ मैं हूं। सब कुछ परमेश्वर का
है सुख दुःख में एकसा रहे, क्षिमावन्त सदा संतुष्ट प्रसन्न
निरंतर मेरे साथ जुड़ा हुआ संसार के विषयों से आत्मा
जीत रक्खे। मेरे दृढ़ साथ दृढ़ निश्चलचेता रखना बुद्धि
को भी मेरे में दृढ़ करना, जो इस प्रकार मेरे भक्त मेरा
भजन करते हैं सो मुझे पा रहे हैं। फिर किसी से डरते

नहीं! भली बुरी वस्तु पाने से हर्ष शोक नहीं करते। ऐसा जो मुक्ति रूप है सो मुझे प्यारा है फिर कैसा है जिसको किसी वस्तु की वांछा नहीं और देह को जल मृतिका से पवित्र रखे। अन्तःकरण मेरे भजन कर पवित्र रखे। उज्वल मतिकर मुझे अविनाशी पहचाने संसार के लोकों से उदास रहे। सदा सुखी जिसने सर्व कार्य संसार के जो हैं तिनका आरम्भ त्याग दिया है! सो मुझे प्यारा है। फिर कैसा है गई वस्तु की चिन्ता नहीं और मिली वस्तु की वांछा नहीं करता और संसार के भले बुरे को त्याग दिया है मेरे चरणों के साथ प्रीति है ऐसा भक्त मुझे

प्यारा है। फिर कैसा है शत्रु मित्र तिस एक समान है आदर अनादर में एकसा, शीत उष्ण दुःख सुख में एकरस है दूसरे का संग न करे एकएका निरबन्धन रहे। फिर स्तुति निन्दा किये से एकसा है, मेरे नाम विना जिह्वासे कुछ बोले, नहीं जिस किस प्रकार संतुष्ट रहे। घर बनाने को भी आरम्भ न करे, बनी हुई जगह पर बैठकर भजन करे। संसार की तरफ से ऐसा रहे। मेरे चरणों साथ दृढ़ निश्चय मेरे साथ ही प्रीति करे ऐसा जो प्राणी है सो मुझे प्यारा है। हे अर्जुन! यह साधन मैंने अपने भक्तों को उपदेश किये है इन साधनों का नाम अमृत धर्म है। जैसे

अमृत पान करने से कोई रोग नहीं रहता, जीव अमर होजाता है। तैसे ही यह अखंड ब्रह्मरूप मेरा है। जैसे कैसे तैसे अपने भक्तों को यह यथार्थ धर्म कहे हैं, सो परमश्रद्धा से जो इन धर्मों की उपासना करे है सो भक्त मेरे को अति प्यारा है। इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषद् सुब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन सम्वादे भक्तयोगो नाम द्वादशो अध्यायः ॥ १२ ॥

❋ अथ बारहवें अध्याय का महात्म्य ❋

श्री भगवानुवाच--हे लक्ष्मी ! अब बारहवें अध्याय का महात्म्य सुन। दक्षिण देश में एक सुखानंदनाम काराजा

रहता था। तिसके नगर में एक अबन्त नाम लंपट रहे
था। एक गणिका से उसकी प्रीति थी वह दोनों एक
देवीके मंदिरमें जा के मदिरापान किया करें, मांसखावें, भोग
भोगें। जो कोई पूछे तुम यहां क्या करते होतो कहैं हम यहां
रहतेहैं, देवीकीसेवा करतेहैं, झूठकह देवें। उसी मंदिरमेंएक
ब्राह्मण देवी की सेवा करता था, एक दिन उस ब्राह्मण ने
देवी स्तुति करी देवी प्रसन्न हुई। कहा वर मांग जो
मांगेगा सो देऊंगी। फिर उसने धन संतानसुखमांगा। देवी
ने कहा, हे ब्राह्मण! अवश्य कर तुझे संतान सुख देऊंगी
पर एक बातकर। पहिले इन दोनों का उद्धार करले ऐसा

उपाय कर जिससे इन दोनों का उद्धार होवे। तो ब्राह्मण ने नमस्कार करी और अपने गुरु पास आकर कहा, हे गुरूजी ! मैंने देवी की स्तुति करी थी सो प्रसन्न हुई धन संतान दी है; पर पहिले इन दोनों का उद्धार होवे। तब गुरु ने कहा, हे ब्राह्मण ! चल श्रीनारायणजी से पूछें। तब श्री नारायणजी का तप किया। तीर्थ व्रत किये भगवान जी प्रसन्न हुए। आकाशबाणी हुई स्मरण करो तब वह स्मरण करने लगा तब श्रीनारायणजी गरुड़ पर सवार होके आये और कहा, तेरी क्या कामना है ? पिछली बात कही देवीजी की भक्ति करी थी, भगवती प्रसन्न हुई कहा धन सन्तान

देती हूं पर दोनों का उद्धार कर जिस किस तरह करके सो मैंजानता नहीं हूं आप कृपा करके कहो उनका उद्धार किस प्रकार होसकता है तब श्रीनारायणजी ने कहा हे ब्राह्मण ! गीता के बारहवें अध्याय का पाठ सुनावो तो उन दोनों का उद्धार होगा। तब उस ब्राह्मण ने भगवान की स्तुति कर धन्यवाद किया आशीर्वाद कही तुम्हारी जय हो ! तब ब्राह्मण ने देवी के मन्दिर में भगवती की स्तुति करी तुम्हारी जय हो। तब देवी प्रसन्न भई कहा हे देवीजी ! श्रीनारायण जी ने आज्ञा करी है। तव देवी ने कहा;हे ब्राह्मण ! तू उनको पाठसुना

जिससे उनका उद्धार होवे। तब दोनों गणिका और लंपट को बैठाकर गीता के बारहवें अध्याय का पाठ सुनाया सुनते ही उन दोनों की देह छूटी। देवदेही पाई और बैकुंठ को गये, देखकर देवी प्रसन्न हुई। ब्राह्मणको कहा हे पण्डित! आजसे मेरा नाम वैष्णवदेवी हुआ इस पाठ को सुन कर ऐसे अपकर्मी तर गये हैं इस नगरी का राज्य तुझको दिया। इतनी कह कर अन्तर ध्यान हुई, ब्राह्मण घर गया। उस राजा के संतान न थी, राजा ने उस ब्राह्मण को बुलाय राज्य देके आप तप करने को गया, बन में विरक्त होकर। और ब्राह्मण राज्य करने लगा

श्रीनारायणजी कहें, हे लक्ष्मी ! यह गीताजी के बारहवें अध्याय का महात्म्य है जो मैंने कहा और तूने सुना है। इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर सम्बादे उत्त्राखण्डे श्रीगीता महात्म्यों नाम द्वादशो अध्यायः ॥ १२ ॥

* अथ तेरहवां अध्यायः *

अर्जुनोवाच-अर्जुन श्रीकृष्ण भगवानजी से प्रश्न करे है। हे प्रभुजी ! भगवान प्रकृति किसको कहते हैं, और पुरुष किसको कहते हैं। और क्षेत्र किसको कहते हैं, ज्ञान और ज्ञेय किसको कहते हैं। और क्षेत्रज्ञ किसको कहते हैं इनका उत्तर कहोजी। श्रीभगवानुवाच। हे कुंतीनंदन

अर्जुन ! यह जो मनुष्य की देह है इसको क्षेत्र कहिये है सो क्यों कहते हैं । जब यह जीव फिरता २ चुरासी से मनुष्य देह में आवे है तब चैतन्य होता है । कैसा चैतन्य परमेश्वर को भी पहचाने है पाप पुण्य को भी समझे है। क्यों जो इस देह को पाकर भला बुरा करता है, पाप पुण्य का फल भोगता है । दूसरे देहधारियों को न पापहै न पुण्य है । मनुष्य देह को पाकर पाप पुण्य उपजते हैं और जितनी बातों का इस शरीर में ठाट है उनको जो समझे सो तत्ववेता पुरुष है । क्षेत्रज्ञ भी उसी को कहते हैं जो शरीर रूपी क्षेत्र का जानने वाला हो । सो हे अर्जुन ! क्षेत्रज्ञ

मुझ को जान। जिसके ज्ञान से क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ दोनों को जानिये सो यह मेरे मत का ज्ञान है। अब क्षेत्र जो देह तिसका वृत्तांत सुन। देह का ठाट कितनी वस्तुओं से बना है। जो कुछ इस क्षेत्रज्ञ वर्तमान वर्ते है सो सुन। इसका वृत्तांत ऋषियों ने बहुत भांतों कर कहा है वेदों ने भी कहा है भिन्न भिन्न सुन। हे अर्जुन मैं भली प्रकार कहता हूं सो तू निश्चय जान, जो मेरे मुख कमल से निकसे हैं। शरीर क्षेत्र में पांचतत्व हैं। पृथिवी, जल, अग्नि पवन, आकाश। पृथिवी का अंश इस देह में मांस है, जल का अंश रुधिर। अग्निका अंस इस देह में अग्नि है जो

भोजन आदि वस्तु को पचावे है। पवन का अंश श्वास है। आकाश का अंश पुलाड़ है यह पांचों महाभूत देह में ह और मन बुद्धि चित्त अहंकार दसों इन्द्रियां, पांच. कर्म्म इन्द्रियां और पांचज्ञानइन्द्रियांकौनहैं।नेत्र,नासिका,श्रवण, त्वचा,जिह्वा यह ज्ञान इन्द्रियां हैं इन पांचों मेंज्ञानहै कर्म्म करना नहीं जानतीं॥ कर्म्म इन्द्रियां कौन है हस्त पांव गुदा लिंग बाक यह पांचों कर्म्म इन्द्रियां है यहकर्म्म कोही करना जानती हैं त्वचास्पर्श इन्द्रीजो है सो सब इन्द्रियों में व्यापी हुई है जिह्वा में भी दो गुण हैं जब स्वाद लेती है तब तिसमें ज्ञान गुण है जब बचन बोले तब कर्म्मगुण

हैं लिंग से भी दोनों गुण हैं; मैथुन (भोग) करता तब ज्ञान गुण लघु [मूत्र] करता है तब कर्म गुण यह तो दसों इन्द्रियां कहीं। पांच इन्द्रियों के पांच ही आहार हैं सो कौन नेत्रों का आहार देखना। नासिका का वासना लेना, जिह्वा का स्वाद लेना आहार है श्रवणों का शब्द सुनना और स्पर्श इन्द्री जो त्वचा है, तिसका आहार वस्त्र पहिरने सुगंध लेपन करना शीत उष्ण समझना। यह पांचों के आहार पांच हैं इनसे ही सब वस्तु का शरीर बनता है। जो इस शरीर नगर में वस्ते हैं सो सुन। अच्छी वस्तु खाने की वांछा, बुरी वस्तु की वांछा। कभी सुख कभी दुःख यह

चारों बातें इसमें तीन प्रकार वरते हैं। इन चारों बातों की विश्व में भीड़ी वस्ती है। और चारों की इसमें चेतन्यता है, यह चारों बातें इस में दृढ़ हैं, हे अर्जुन! इस शरीर क्षेत्र का वृत्तांत मैंने तुमको भली प्रकार कहा है, और जिस साधन से मेरे जानने का ज्ञान उपजे सो साधन सुन मुख्य का तो यह साधन है, जो अपमानी होवे निर्मान रहे अपनी पूजा मानता न करावे। गुरु गुसाईं होके न बैठे मन, बच, कर्म कर सबका सेवक होय रहे पाखंडी भी न होवे, क्या चौकड़ी मार नेत्र मूंदके बैठ रहे लोक जाने कोई बड़ा तपी है और विषय भोगों की वासना से कुछ खाइये

कुछ पहरिये इस पखंड से रहित हो मनकर किसी का
बुरा न चितवे मन, वच कर्म्मकर किसी को दुखावे नहीं
वचनों कर दुर्वचन न कहे। हाथकर मारे नहीं। पैरोंसे चल
कर किसीका बुरा न करे। किसी स्थावर जंगम को दुःख
न देवे इत्यादि कोई और इसको दुःख देवे तो बुरा न
माने। क्षमाकरे,सब किसी के साथ नम्र भाव रहे, और
जो अच्छे मार्ग के उपदेश करने हारे गुरु तिनकी सेवा
करे। जल मृतिका कर अपनी देह पवित्र रखे, धैर्य
कर मनको निश्चल रखे। इन्द्रियोंके भोगों से उदास रहे
अहङ्कार से रहित हो। जो प्राणी यह साधन करे सो जन्म

मरण के दुःखोंसे रहित मुक्त होगा। और साधन सुन।
पुत्र, स्त्री और घरके और संबंधियों से मोह लगावे नहीं।
और शत्रु मित्रता से रहित रहे। सदा एकसा रहे। मुझ साथ
आनन्द रहे। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने भर्त्ता की सेवा
करती है। पराया पुरुष देखती नहीं। तैसे मेरा भक्त मुझे
सिमरे किसी दूसरे का नाम न लेवे। ऐसा मुझ साथ होवे
और एकांत बैठ संसारी मनुष्यों का संग न करे। और
मैं सब आत्माओं का ठाकुर अधिकारी हूं। जो मुझ
ईश्वर अध्यात्मक जानने को एकांत बैठे जो देख अध्यात्मक
ईश्वर ठाकुर कैसा है। हे अर्जुन! यह सब साधन मैने

तुझे कहे, ज्ञान पाने के निमित्त इन साधनों बिना और जो कुछ करे सो अज्ञानी जानना । यह तो ज्ञान के साधन हैं । जैसे दीपक की सामग्री तेल, रुई अग्नि सब इकट्ठे कर दीपक जला कर घर में धरिये तिस उजाले कर सब वस्तु घर में जो कुछ पड़ी हैं देखी जाती हैं सो ज्ञान तो दीपक भया, और वस्तु देखनी सुन । हे अर्जुन ! तैंने यज्ञका प्रश्न जो किया था, सो भी मैं हूं इस कारण से मेरा नाम यज्ञ है । पहिले तिसका महात्म्य सुन तिसके सुनने से जन्म मरण से मुक्त होगा । जैसे अमृत पान करने से देह आरोग्य होती है मृत्यु भी नहीं होती तैसे

ही मेरे यज्ञ रूप सुन। अमृत पान करने से अजर, अमर होगा। सो सुन! ज्ञेय अनादि है। जिसका आदि नहीं सबसे परे है। इसीसे पारब्रह्म कहतेहैं। देह जीव इनसे परे है और सब ठौरमें नेत्र हाथ शिर श्रवण इत्यादिक अङ्गों में व्यापक है सब जगह में बस रहा है सब इन्द्रियों से गुणों का प्रकाश है सब इन्द्रियों से रहित है। सब साथ मिला हुआ है। सबके करने हारा है। फिर आप निर्गुणहै और सब गुणों को भोक्ता है। स्थावर जङ्गम जो भूत प्राणी हैं तिनके बाहर भीतर व्यापक है। और सूक्ष्म है, जाना नहीं जाता। इससे परमेश्वर को दूर कहते हैं सब

में व्यापक भी है। सब से न्यारा भी है, तिसको हे अर्जुन तू ज्ञेय जान। सब संसारको ग्रास लेता है। तब तिसका नाम ग्रासन होता है। जब संसार को अपने से प्रकट करता है तब उसका नाम उत्पत्ति कर्त्ता है। जब संसार के अन्दर बाहर व्याप रहा है तब तिसको विष्णु कहते हैं। सूर्य्य से लेकर जितने ज्योति वाले हैं तिन सबकी ज्योति मुझको जान। और तम जो अन्धकार है अज्ञान इससे परे है। हे अर्जुन यह ज्ञेयके जानने का ज्ञान है। इस ज्ञान से ही जाना जाता हूं। हाथ से पकड़ा नहीं जाता, इस देह को नेत्रों कर नहीं देखता, सर्व के हृदय में बसे

है। हे अर्जुन ! क्षेत्र क्षेत्रज्ञ और ज्ञान ज्ञेय का वृत्तांन्त भिन्न २ कर कहा है। हे अर्जुन ! मेरे भक्त इस प्रकार मुझे समझकर मेरे चरण कमलों से श्रद्धा प्रीति लगावे हैं। अब अर्जुन प्रकृति पुरुष का वृत्तान्त सुन। प्रकृति जो माया और पुरुष जो जीव, इनको तू अनादि जान। जैसे मेरा आदि अन्त नहीं, जबका मैं हूं तब के यह भी हैं, अब इनका वृत्तांत सुन, यह देह इन्द्रियां तत्व जो हैं, इन सब के उपजावनहारी माया है। कार्य, कारण, कर्त्ता; कार्य कहिये जो वस्तु उपजी और जिस वस्तु से कार्य उपजा सो कारण कहिये जिसने बनाई सो कर्त्ता कहिये दृष्टांत सुन, कार्य

जो है माटी का बासन, तिस बासन का कारण माटी है। जिससे बासन बना सो तिस बासन का कर्त्ता कुंभकार है। सो हे अर्जुन! यह संसार जो कार्य है सो कार्य भी माया है यह संसार माया का स्वरूप है, संसार का कारण भी माया है। माया से संसार प्रकट हुआ है, संसार के करने हारी भी माया है सो यह तीनों बातें माया से जान। हे अर्जुन! यह सारा वृत्तान्त माया का कहा। अब पुरुष जो जीव है तिसका अर्थ सुन। इस प्रकृति का जो उपजाया हुआ शरीर नामा नगर है सो इस शरीर में दुःख सुख मांगता जीव है। प्रकृति से उपजे हुए जो देह इन्द्रियां

तीनों गुण सब भोगे हैं। तीनों गुणों के संयोग का रंग इस जीव को लगता है। तिन रंगो कर रंग जाता है। गुणों की संगत कर यह जीव भ्रमता फिरता है। अब अर्जुन मेरी बात सुन। मैं कैसा हूं, इस माया और जीव ने परस्पर मिलकर मेरे आगे एक कौतुक रचा है। सो इनके कौतुक को देखने हारा मैं हूं, जीव के और माया के निबारणहारा भी मैं हूं। हे अर्जुन! यह दोनों मुझको नमस्कार करते हैं। इन दोनों के न्याय करनेहारा भी मैं हूं, इस जीव और देह से मैं परे हूं। हे अर्जुन! इसी कारण से मैं परमात्मा कहाता हूं, जो कोई इस प्रकार दुःख

सुख का भोक्ता जीव को जाने और इन्द्रियों के गुण से माया को जाने । इनका कौतुक देखनेहारा मुझे इन से न्यारा जाने सो इस जानने का फल क्या पावे । सो सुन श्वास २ संसार के जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति होवे । हे अर्जुन ! कई एक योगी ध्यान कर आप विषे अपने आत्मा का दर्शन पाते हैं इस मार्ग से कृतार्थ होते हैं । इससांख्य शास्त्र के मार्ग से मुझ को देखते हैंसोकहते हैं,जो कुछ है परमेश्वर हीहै-दूसरा कुछ नहीं, एक मेरे स्वरूप की पूजा करते हैं । तिस स्वरूप का दर्शन करते हैं, एकमेरे भक्तों से मेरी महिमा सुनके अपनी प्रीति मेरे में लगाते

हैं, मेरे नाम का स्मरण करते हैं, सो प्राणी मेरी परमगति को प्राप्त होवेंगे हे भारतवासियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! और सुन जो कुछ स्थावर जंगम भूत प्राणी प्रकट हुए हैं सो इस देह और जीव के एकत्र होने से प्रकटे हैं तिन सब भूत प्राणियों में एक मैं परमेश्वर व्यापक हूं देह के नाश हुए तिसका नाश नहीं होता जिन ऐसा अविनाशी परमेश्वर जाना है और जिन सब भूत प्राणियों में एक ही मुझे समीप देखा है सो सब का सुखदायक सेवक होय रहे । दुखावे किसी को नहीं सो भी मेरी परम गति को प्राप्त होगा हे अर्जुन ! जो कर्म्म होते हैं सब

देह इन्द्रिया मन से होते हैं यह सब प्रकृति माया की है । जो कोई आत्मा को देखे सो अकर्ता देखे । आत्मा कुछ नहीं करता यह सब प्राणियों का विस्तार सो भिन्न २ देखता है यह दृष्टि दूर होवे । एक आत्म ब्रह्म सब में दृष्टि आवे, जब ऐसा होवे तब तुरंत ही तिन आत्म ब्रह्म को पावे है ब्रह्म जब मिलासो आत्म ब्रह्म अनादि हुआ जिसका आदि अन्त नहीं सो अनादि है निर्गुण गुणातीत परमात्मा अविनाशी है । हे कुन्तीनन्दन ! इस शरीर में ही आत्म बसे है । कुछ कर्म्म नहीं करता निरलेप सब देहों में बसे है । देहके गुण तिस आत्मा को नहीं व्यापते ज्यों

आकाश सर्वव्यापी है, सबसे न्यारा है। हे अर्जुन! एक मेरा महाप्रताप और सुन, जिसके आगे और प्रताप कोई नहीं। जैसे सूर्य प्रातःकाल को पूर्व से उदय होता है। एक बार ही सब लोक में प्रकाश करता है। ऐसा नहीं जो किसी देश में सूर्य का प्रकाश पहिले हो और किसी देश में पीछे सर्व लोकों में प्रकट एक बार ही हो जाता है। तैसे ही ब्रह्मा से लेकर चींटी पर्यन्त स्थावर जंगम में संसार है तिन सब जीवों के शरीर में एक बार ही प्रकाश करता हूं। हे अर्जुन! यह क्षेत्र जो शरीर और क्षेत्री जो यह जीव है और क्षेत्रज्ञ जो मैं सो कैसा हूं एक नेत्र

के उघाड़ने से सर्व संसार प्रकट करता हूं। जो कोई जीव ज्ञान नेत्रों से मेरा प्रताप विचारे, मेरी स्तुति करे जो धन्य है श्रीकृष्ण भगवान जिसको यह सामर्थ है, एक क्षण मात्र में सब संसार को प्रकट करता है। ऐसा जो परमपुरुषहै, तिसको मेरा नमस्कार नमस्कार नमस्कार है। फिर भी मेरा नमस्कार है जो प्राणी इस प्रकार मुझ को जाने, मेरी स्तुति करे, तिसका फल सुन सो ऐसे प्राणी जन्म मरण रूप संसार के दुःखों को काटकर मेरे परम अविनाशी पद को निःसंदेह जा पाते हैं॥ इति श्री भगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योग शास्त्रे श्रीकृष्ण

अर्जुन संवादे क्षेत्र क्षेत्रज्ञ ज्ञान ज्ञेय प्रकृति जीव विभाग योगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

❁ अथ तेरहवें अध्याय का महात्म्य ❁

श्रीनारायणोवाच-हे लक्ष्मी ! अब तेरहवें अध्याय का महात्म्य सुन दक्षिण देश में हरिनाम नगर था वहां एक व्यभिचारणी स्त्री रहती थी व्यभिचार करे मांस मदिरा खावे एक दिन एक पुरुष से उसने वचन किया कि अमुक स्थान मैं तेरे पास आउंगी तुम वहां चलो वह पुरुष किसी और बन में चला गया और वह स्त्री उसे ढूंढती २ हैरान होगई पर मनुष्य न मिला वह भी भालती फिरे

वह गणिका थककर उसका रास्ता देखने लगी देखते २ ही सारा दिन व्यतीत हुआ प्रीतम न आया। सांझ पड़गई वह गणिका प्रीतम का नाम लेलेकर पुकारने लगी वृक्षोंसे पूछा। इतने में वह पुरुष मिला, दोनों बड़े प्रसन्न होकर बैठे। इतने में एक शेर आया, गणिका डरी, देखकर सिंह बोला। अरी गणिका! मैं तुझे खाऊंगा। वह बोली तू पहिले अपने जन्म की बात कहो तू कौन है? तब सिंह बोला, मैं पूर्व जन्म में ब्राह्मण था। झूठ बोला करता था बड़ा लोभी था। जूआ खेलता था, यथा, तथा दूसरे का धन हर लेताथा एक दिन प्रभात के समय घर से उठकर

चला। मार्गमें गिरते देह छूट गई। यमों ने पकड़ लिया। धर्मराज के पास लेगये देखते ही धर्मराज ने हुक्म दिया इसी घड़ी ब्राह्मण को सिंह का जन्म देश्रो। यह देह मुझे मिली और हुक्म दिया जो प्राणी पापी दुराचार करने वाले हों तिनको तू खाया कर जो साधु वैष्णव हरिभक्त हों उनके पास न जाना। हे गणिका! मुझे धर्मराज की यह आज्ञा है तिनकी आज्ञाकर सिंह की योनी में आया हूं तू व्यभिचारिणी गणिका पापिन है इसीसे तुझको खाऊंगा इतना कह गणिका को खालिया। तब यम धर्मराज के पास गणिका कोलेगये। धर्मराजनेहुक्म दिया इसको चंडालनी

का जन्म देवो । श्रीनारायणजी कहते हैं हे लक्ष्मी उसने गणिका की देहत्याग चंडालनी की देह पाई । कई दिन के पीछे एक दिन नर्वदा नदी के तटपर चलती थी । वहां क्या देखाकि एक साधू गीताके तरहवें अध्यायकापाठ करताहै उसने सुनलिया।जब अध्यायपढ़के भोगपायातब चंडाल-नी के प्राण छूट गये देवदेही पाई आकाशसे विमान आए तिनपर बैठके बैकुंठको चली साधूने पूछा, अरी तैने कौन पुण्य किया, जिसके करनेसे बैकुंठ को चलीहै । चंडालनीने कहा, हे संत जी ! इस तेरे पाठको श्रवण कर मैं देवलोक को चली हूं । तब पारषदों को कहा, कोई ऐसा यत्न करो कि जिस

सिंह ने मुझे पूर्व गणिका के जन्म में खाया था उसको भी साथ लेचलो। तब उस साधू से प्रार्थना की, हे सन्त जी गीताजी के एक श्लोक के पाठका फल उसके निमित्त देवो जी सिंह का उद्धार होवे, तब उस सन्तने पाठका फल दिया। तत्काल उस सिंह की देह छूटी देवदेही पाई दोनों विमानों पर चढ़कर वैकुंठवासी हुए परमधाम को प्राप्त हुए तब श्रीनारायणजी ने कहा, हे लक्ष्मी! यह तेरहवें अध्याय का महात्म्य है। प्रीति साथ पढ़ने की बात का कुछ फल कहा नहीं जाता। अनजानपने से पढ़े तो भी मेरे परमधाम को प्राप्त होता है निस्संदेह। इति श्री

पद्मपुराणे सती ईश्वर सम्वादे उत्तराखण्डे श्रीगीता महात्म्य नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

* अथ चौदवां अध्याय *

श्रीकृष्ण भगवानजी अर्जुन प्रति कहते हैं-अर्जुन! फिर मैं तुझको परमज्ञान जो सर्वज्ञान से उत्तम है सो कहता हूं। जिस ज्ञान के जानने से मेरे भक्त मुनीश्वर परमासिद्ध जो हैं सो मेरे परमानन्द अविनाशी पद में जा प्राप्त होते हैं। जिन्हों ने मेरे इस ज्ञान का आश्रय लिया है और जिन्हों ने मेरा यह ज्ञान सुना है जो श्री कृष्णजी ऐसे बड़े हैं ऐसा पहचान के जिन्हों ने मेरा

आश्रय लियाहै, मेरे शरण आए हैं तिन्हों का मेरे जैसा ही धर्म होता है। सो क्या धर्म सो मेरा भक्त संसार की प्रलय साथ प्रलय नहीं होता। जैसे मैं संसार की उत्पत्ति साथ उत्पन्न नहीं होता। जैसे मैं संसार की प्रलयसाथ प्रलय नहीं होता संसार की उत्पत्तिसाथ उपजाता नहीं। यह मेरा धर्म है तैसे ही तू मेरे भक्तों को जान। हे अर्जुन! यह मेरे ज्ञान की बड़ाई और फल कहा। अर्जुन! वह ज्ञान भी सुन। मेरा नाम महद्ब्रह्म है सो क्या कारण तिसका अर्थ सुन। जब संसार की प्रलय होतीहै तब सारे संसार को अपने उदर में रख लेता हूं। जब संसार के उपजाने

का समय आता है तब अपने उदर से प्रकट कर लेता हूं, इसी कारण से मेरा नाम महद्ब्रह्म है महद्ब्रह्म अर्थात् बड़ा ब्रह्म। हे कुंतीनंदन! एक मेरा नाम महद्ब्रह्म जो है तिसका अर्थ सुन। सब एक ही ईश्वर से अनेक भांत का संसार प्रकट हुआ। जितने देहधारी पीछे वरते हैं और जितने अब वरते हैं और जितने आगे होवेंगे सो देख। किसी जैसा कोई नहीं औरही और भांतके हैं। तिनकी कीर्ति प्रकृति भिन्न २ है तिनके शब्द पृथक २ हैं। हे अर्जुन वीर्य के देनेहारा पिता भी आपहूं सात्विक राजस तामस वह तीनों गुण जो देहों में व्यापते हैं और यह अविनाशी

जीव जो सब देहो में व्यापता है सो माया साथ तीनो गुणों साथ मिला हुआ बांधा है। जिस प्रकार यह जीव तीनों गुणों साथ बांधा है सो सुन, प्रथम सात्विक का वृत्तांत सुन। निर्मल पवित्र इन्द्रियों में प्रकाश मन में निर्मल प्रकाश अज्ञान रोग से रहित अरोगी और हे अनघ निष्पाप अर्जुन इस प्रकार यह जीव सात्विक गुण से बांधा है अब राजस गुण का वृत्तांत सुन, कुटुम्बके लोगों के साथ मोह ममता यह मेरा है, यह उन के हैं, द्रव्य कमाने की तृष्णा से इस प्रकार जीव जो गुणों कर बांधा है। हे अर्जुन ! यह तृष्णा सम्बन्धी सब कुटुम्ब के लोग हैं, इस

प्रकार जैसे बेड़ी का पूर नाव पर सब लोग इकट्ठे होते हैं, तैसे ही कुटुम्ब के लोग, इन साथ दृढ़ ममता मोह जीव ने लगा रखा है यह राजस गुण है ! अब तामस गुणका वृत्तान्त सुन। तामस गुण जो है तिनको तू सार अज्ञान जान। असावधानता गोविंद का विस्मरण आलस्य होना, अति निद्रा, इस प्रकार जीव तामसी गुण में बांधां हुआ है। निद्रा, आलस्य असावधानता यह तीनों देह धारियों को मोहने हारे हैं, और तामस से उपजे हैं। गुण सुखों को उपजावे है, और हे भारतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! राजस गुण कर्म को प्रकट करता है, निष्काम

नहीं रहने देता और अज्ञान असावधानता यह तामस
के गुण से प्रगटे हैं, यह तीनों गुण सदैव देह में वर्तते
हैं। कभी सात्विक, कभी राजस, कभी तामस वरते है ।
बढ़ते घटते भी हैं, जब वर्तते हैं तब जानने में आजाते हैं
सात्विक बढ़े से सभी देह के द्वारों में प्रकाश होवे निर्मल
नेत्रों में निर्मल प्रकाश नासिका से निर्मल श्वास चलें श्रोत्रों
में सुरति भली होय, देह भी निर्मल होए आरोग्य होए, दोनों
तले के द्वार स्वच्छ मन में परमेश्वर का स्मरण होवे, इन
लक्षणों से जाने मेरी देह में सात्विक गुण है हे अर्जुन! जब
रजोगुण बढ़ता है तब द्रव्य बढ़ानेका लोभ होताहै लोभ से

कार्य में लगे सदा, निष्काम कभी न बैठे तब जानो राजस गुण बढ़ा है। जब तामस गुण बढ़े, तब सब देह के द्वार में प्रकाश थोड़ा, आलस्य निद्रा हो, तब जानो तामस गुण बढ़ा है। अब और सुन तामस गुण के बढ़े में देह का त्याग होवे वह तब मूढ़ योनि जो पशु हैं; चोपाए अज्ञानी तिसको प्राप्त होता है। अब अर्जुन तीनों गुणों के फल कहे। सात्विक गुण का फल निर्मल, राजस गुण का फल दुःख,तामस गुण का फल अज्ञान। सत्व गुण से ज्ञान उपजे है। रजोगुण से भय उपजे है। तमो गुण से असावधानता मोह अज्ञान उपजे है। जिन मनुष्यों की

शांति की प्रकृति है सो देह त्याग के ऊपर के लोक को पाते हैं जिनकी राजसी प्रकृति है सो देह को त्याग के पृथ्वी पर जन्म पाते हैं जिनकी तामसी प्रकृति है, सो देह को त्याग के पृथ्वी के तले पाताल लोक में प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन! मेरे पद विषे जब जावें, मैं इन तीनों गुणों का कौतुक देखने हारा हूं, इन गुणों से अतीत हूं, ऐसा मुझ को पहचानें सो मेरे परमानन्द अविनाशी पद में जा प्राप्त होते हैं फिर मैं कैसा हूं, इन तीनों गुणों का निर्णय करने हारा हूं, जीव देहों की उत्पत्ति करता हूं, तीनों गुणों से अतीत हूं, ऐसा जो प्राणी मुझको पहचाने

सो जन्म मरण और बुढ़ापे तिन के दुःखों को काटकर मुक्त होता है। इस ब्रह्मज्ञान के अमृतपान करने से संसार में जन्म मरण नहीं पाता है, न मरता है। अर्जुन यह वचन सुनकर दीनदयालु श्रीकृष्णदेवजी से पूछता है। अर्जुनो वाच–हे भगवान कृपानिधानजी। यह जीव जो तीनों गुणों से बांधा है इस के छूटने की विधि कहो और जो देह साथ होते ही तीनों गुणों से अतीत है तिसके लक्षण कहो जिसकर समझूं जो यह तीन गुणों से रहित है अर्जुन की बिनती मानकर श्रीकृष्ण भगवानजी बोले–हे अर्जुन जो देह साथ होते भी तीन गुणोंसे अतीतहैं, तिनके लक्षण सुन

जो गुण देह विषे उपजते वर्तते हैं, तिन कर्मों को कहा नहीं जाता। कल्पना न करे जो यह गुण बुरा है और तिस गुण के दूर होने की वांछा ना करे, जो यह दूर हो जावे ऐसा गुणों से उदास रहे। इस साथ मेरा क्या प्रयोजन है जैसे विष्णु की माया गुणों को उपजावे है, तैसे ही देहों में स्वभावों साथ मिले हुए गुण वर्ते हैं। मैं आत्मरूप इस से न्यारा हूं, इस प्रकार गुणों को हलायां चलायां चले नहीं फिर कैसा हूं, दुःख सुख में एक समान स्तुति निन्दा में एक जैसा कंचन माटी पाषाण एक समान जाने आदर अनादर करने से सुखी दु खी न होवे

शत्रु मित्र एक जैसे जान, किसी कार्य का आरम्भ न करे। हे अर्जुन! तीनों गुणों से अतीत का प्रश्न किया था, तिसके लक्षण कहे हैं, अबजिस प्रकार यह तीन गुणों से अतीत होवे सो सुन। हे अर्जुन! विश्वम्बर प्रभु पहचान के केवल मेरे में श्रुति लगावे और सब अवतारों में मन उठा शीतल स्वभाव मेरी भक्ति में मन होवे। फिर क्या कहे, हे प्रभु जी! मैं तुम्हारा दास हूं, और तुम कर्तार सब के कर्त्ता हो मैं दीन अनाथ हूं, कृतघ्न तेरे गुण किये को मैं नहीं जानता, तेरे बिना और प्रभु नहीं, मैं तेरे अधीन हूं हम कर्म यन्त्र में पड़े भ्रमते हैं, तूं तिस यन्त्र का

सूत्रधार है। हे देव मैं तेरी शरण हूं, तू सबका आश्रय है।
हे अर्जुन ! जो इस प्रकार मेरा दास होवे केवल अवांछी
होके मेरी ही शरण आवे सो इन तीनों गुणों से अतीत
होता है। सो देह के साथ होते ही मुक्ति पावे है, और
जीवन मुक्त होवे है। यह मार्ग तीन गुणों से अतीत सो
मैं हूं, कैसा हूं. सो तिस आत्मा का प्रताप सुन इतनी
बातों का नाम ब्रह्म है। एक तो यह सारा विश्व जो है ब्रह्म-
रूप है. एक वेद शास्त्र यह सब शब्द ब्रह्म है, और मुक्ति
का नाम भी ब्रह्म है। मुक्ति धाम वैकुंठ का नाम भी
ब्रह्म है। इन सब ब्रह्म का मैं ही ठाकुर हूं. इन सब की

शोभा मैं ही हूं, सो ब्रह्म कैसा हूं? अविनाशी न मरताहूं पुरातन सबसे पहला धर्म्मरूप इन तीनों लोकों में बसने हारा और इनसे अतीत भी हूं, गुण-ग्राहीसुख का समुद्र परमानन्द भगवान सबका प्यारा हूं। इति श्रीभगवद्गीता-सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योग शास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे गुणत्रयविभागयोगोनाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

* अथ चौदवें अध्याय का महात्म्य *

श्रीनारायणोवाच-हे लक्ष्मी! उत्तर देश काशमीर के सरस्वतीक्षेत्र में एक पण्डित विद्यावान रहता था। वहां के राजा का नाम सूर्यवर्मा था। संगलदीप के राजे साथ

तिसकी प्रीति थी। एक समय राजा ने संगलदीप से बड़े जवाहिर मोती, घोड़े बहुत कीमत के भेजे थे तब काशमीर के राजा ने मन में विचारा कि मैं क्या भेजूं। एक दिन अपने मन्त्री से पूछा हम क्या भेजें? मन्त्री ने कहा, जो वस्तु वहां न होवे सो भेजना अच्छा है। राजा ने कहा, और तो सब वस्तु वहां हैं एक शिकारी कुत्ते नहीं हैं वह भेजो। सोने के जंजीरों साथ बंधे हुए मखमलों के गदेले डोलियों में बैठा के संगलदीप में पहुंचाये। देखकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। कहा, यह शिकारी कुत्ते यहां नहीं थे। यह मेरे मित्र ने बहुत भला किया हम शिकार खेला करेंगे, कई दिन

गुजरे एक दिन राजा शिकार खेलने चला और भी शिकार खेलने वाले साथ चले। संगलदीप के राजाने और राजा के साथ शरत बांधी, जिसका कुत्ता शिकार मारे सो लेवे सब राजोंने अपने२कुत्ते छोड़े एक सुस्या निकला उसके पीछे कुत्ते दौड़े सुस्या दूर निकल गया। और कुत्ते पीछे रहे, संगलदीप के राजा के कुत्ते ने सुस्या को पकड़ा लोगों ने शोर किया कुत्ता दुचिता होगया। सुस्या फिर भागा कुत्ते के दांत सुस्या को लगे थे, रुधिर टपकताजाए सुस्या भागा जाए, और सब पीछे रह गए जाते जाते बनमें एक कच्चा तालाव पानी से भरा था। उसके तट पर

कुटिया थी वहां साधु रहता था। उस तालाब में सुस्या जा गिरा, कुत्ता भी पीछे ही जापड़ा। इतने में राजा भी घोड़ा दौड़ाकर पहुंचा क्या देखे दोनों मरे पड़े हैं. और देवदेही पाकर वैकुण्ठको चलेहैं। राजा को देखकर धन्यवाद किया कहा। हे राजन् ! तू धन्य है तेरे प्रसाद से हमने देवदेही पाई है। राजा ने पूछा, यह कैसे उन दोनों ने कहा? हम नहीं जानते इस जलके छूने से हमें देवदेही मिली है राजा ने कहा, धन्य मेरे भाग्य जो तुम्हारा उद्धार हुआ है। इतना कह वैकुण्ठ को गये। राजाने उस संत को नमस्कार करके पूछा, हे संत जी! यह वार्ता कहो यह कौतुक आश्चर्य देखा

सूस्या श्वान दोनों का इस जल के स्पर्श करने से उद्धार हो गया यह जल कैसा है। उस संत ने कहा, हे राजन् ! मेरा गुरू यहां रहता था। नित्यस्नानकर गीताके चौदवें अध्याय का पाठ किया करता था। मैं भी यहां स्नान करके गीता का पाठ करता हूं।राजाने कहा धन्यहो संतजी। आपके प्रताप से ऐसी जूनों का उद्धार हुआ है मेरे भी धन्य भाग्य हैं जो आप का दर्शन हुआहै। संतने कहा,तुम कहांके राजा हो?उसने कहा,मैं संगलदीपका राजा हूं।हे संतजी!मुझको इनकी पिछली कथा सुनावो,जो यह कौन थे।संत ने कहा राजन्!यह सुस्यापिछलेजन्मब्राह्मणथा,यह अपनेजन्मसे

भ्रष्ट हुआ था, यह कुत्तिया इसकी स्त्री थी इसने स्त्री को बहुत खिझाया, स्त्री ने विष देकर मारा। जब दोनों मर कर यम लोक में गये तब धर्मराज ने हुक्म दिया कि इसको सुस्या का जन्म देवो इसको कुत्ती का जन्म देवो। तब इन दोनों ने पुकार की महाराज हमारा उद्धार कब होवेगा। तब धर्मराज ने कहा, जब श्रीगीता जीके चौदवें अध्याय के पाठ करने वाले संतों के स्थान का जल स्पर्श होगा तब तुम्हारा उद्धार होगा, यह दोनों धर्मराज के वर कर उद्धारे हैं, तब राजा नमस्कार करके अपने घर आया अपने पंडित जी से नित्य प्रति गीताजी के चौदवें अध्याय का पाठ सुनने

लगा नित्य प्रति सुनेने से राजा का उद्धार हुआ। देह त्याग कर वैकुण्ठको गया। श्रीनारायणजी ने कहा, हेलक्ष्मी! यह चौदवें अध्यायका महात्म्य है जो मैंने कहा है तैने श्रवण किया है। इति श्रीपद्मपुराणे सतीईश्वर संवादे उत्तराखण्डे गीता महात्म्य नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

* अथ पन्द्रवां अध्याय *

श्रीभगवानोवाच–श्रीकृष्ण भगवान जी अर्जुन प्रति कहे हैं। हे अर्जुन ! यह संसार वृक्षरूप है इस वृक्ष की मूल आदि जड़ ऊपरहैशाखा तलेहै, यह उलटा वृक्षरूपहै, जब यह मनुष्य माताके गर्भ में होता है तब शिरतले होताहै।

यह शिर इस मनुष्यरूपी वृक्षकी जड़ है, चरणहाथ इसकी शाखा हैं। जब गर्भ से बाहर निकलता है, तब उलटाहो चलता है इससे उलटा वृक्ष है। हे अर्जुन! इस को विनाश हुआ भी कहते, और अविनाशी भी कहते हैं, इसका अर्थ सुन। आत्मा अविनाशी है और देह विनाशी है इसी से विनाशी कहते हैं और वेद इस वृक्ष के पत्र हैं इस वृक्ष को पहचाने सो वेद का पंडित पूर्ण कहावे है और यह वृक्ष ऊपर ब्रह्मा के लोक और तले शेषनाग के लोक तक पधार रहा है। और सत्व, रजस तम यह तीनों गुण इस वृक्ष के डाल हैं। देखना, सुनना, सूंघना, खाना

पहिरना इस वृत्त को गुच्छे लगे हैं, और इस वृत्त की भूमि कौन है। जिस पर वृत्त लगा है? सो;सुन हे अर्जुन मैं और मेरी चैतन्यता इस पृथ्वी पर यह वृत्त लगा है, जो यह मैं यह मेरा है, यह मेरी जाति है, यह मेरा नाम है, तिस पर यह वृत्त लगा है। पवन साथ गिरने के भय से इसको जेवड़े कौन बंधे हैं पवन झखड कौन है, जेवड़े तो ऋण सम्बन्धि कुटुम्ब के लोग हैं सो इन साथ वृत्त बांधा हुआ है और इस वृत्त को जान नहीं सकते। क्यों जोइसका आदि अन्त किसीके कहे कहाए पाया नहीं जाता मैं मेरी की चैतन्यता पर वृत्त लगा है अगाड़ यह है जहां मेरे

सत तेरी महिमा को गाते, सुनते पढ़ते, गीता भागवत इत्यादि इस झगड़ करके संसार वृत्त देह के जीव का कुछ नहीं रहता। हे अर्जुन! इस मायारूप वृत्त पर यह जीव फंसा हुआ है, इस वृत्त के काटने का उपाय सुन। प्रथम कुटुम्ब के लोकों का संग त्यागे यह असंग एक शस्त्र हुआ? इसका पकड़ना इन हाथों से जो परम पुरुषार्थ कर दृढ़ निश्चय करना यह हाथ हुए, असंगता रूपी खंड पुरुषार्थ रूपी हाथों में पकड़ा जब असंग हुए तिससे पीछे तिस परम पुरुष के मार्ग पर सावधान होकर चले सो कौन जिसको पाकर फिर संसार के जन्म

मरण को न पावे। सावधान क्या होना, दोनों हाथ जोड़ के शिर निवाय नमस्कार करे। मुख से कहे, हे आदि पुरुष विश्वम्भर जगदीश जी मैं तेरी शरण हूं हे अर्जुन! आदि पुरुष का अर्थ सुन और प्रताप सुन कई कोट वैकुंठ के ऊपर तिसका स्थान है और निराधार आसन है, अपने आधार पर विराजमान है यह आदि पुरुष के स्थान से कई कोटि ब्रह्माण्ड कई कोटि चौरासी लाख जीव योनि और ही और रचना साथ भरे हुए निरंतर निकसते ही रहते हैं। आप फिर पूर्ण का पूर्ण है सदा अटल है यह आदि पुरुष का प्रताप है: विश्व को करता

रहना है, सर्व जगत का ईश्वर है ऐसे आदि पुरुष की सर्व कुटुम्बादि को त्यागकर शरण आया। फिर कैसी युक्ति है अपना मान दूर करके कहे कि मैं किसी जैसा नहीं निष्कपटि एकांतवासी निरबन्ध निर्मोही एक पारब्रह्म की सेवा करे। हे अर्जुन! श्वास के अन्दर बारह आते जाते मेरा ही नाम जपे है आदि पुरुष भगवान मैं तेरी शरण हूं। यह जाप जपे मेरे चरणों की सेवा मेरे स्मरण बिना किसीकी कामना न करे इस प्रकार भक्तजो मेरी शरण आवे तिसको मैं क्या करूं? यह संसार दुःख सुख हर्ष शोक शीत उष्ण इन विकारों से पूर्ण है सो ऐसे संसार समुद्र

दुःखरूप से तिस अपने ज्ञानी भक्त को मुक्त करता हूं और अपने अविनाशी पद में प्राप्त करता हूं। कैसा हूं! अविनाशीपद जहां सूर्य्यचन्द्रका भी गम्यता नहीं। जहांसे जाकर फिर नहीं आवे है;सोऐसा परमानन्दअविनाशीघर मेरा है यह आदि पुरुष और अविनाशी पद में जो प्राप्तहुए हैं तिनका वृत्तांत मैंने कहाहै। अब अर्जुन और सुनयह जो सर्व लोकों में जीवभूत हैं सो मेरा अंश है और यह सना-तन पुरातन हैं पांच इन्द्रियां छटा मन यह छः ही इस जीवको अपने २ गुणोंकी ओर खैंचते हैं। अब शरीर का त्यागना और शरीर को लेना कैसा है सो सुन। इस देह

का ईश्वर जो जीव है सो जीव देहको जब त्यागता है तब जीव को उलंघे है जैसे एक चरण टिकाया दूसारा उठाए आगे रखा फिर पिछला चरण उठाए आगे रखा जब आगे ठौर पाई जाती है; तब पिछला चरण उठाए आगे रखता है तैसे ही हे अर्जुन ! देहका त्यागना और देह को लेना इस जीव को उलांघ मात्र है जैसी वासना को लिये देह को त्यागे सोई वासना साथ लिये जाती है। कैसे जिस तरह पवन किसी वस्तु को छुहकर चलती है तैसी वासना आती है तैसे जिस वासना को लिये शरीरकात्याग हो तिसीवासना को लिये जाती है। नेत्र;श्रोत्र;स्पर्श;त्वचा

टी० जिह्वा नासिका यह पांचों इन्द्रियां इनका अधिकारी छटा
भाषा मन इनके साथ मिलकर यह जीव विषयों को भोगता है।
भ० गी० खाता पीता चलता बैठता और जो कार्य करता है सो
अध्या१५ सब जीव करे है। इन्द्रियां और मन के साथ रला मिला
करे है। पर यह कौतुक जो मूढ़ प्राणी हैं तिनको नहीं
दीखता। जो प्राणी ज्ञान नेत्रों से संयुक्त हैं सो इस कौतुक
को देखते हैं सो ज्ञान नेत्र किस प्रकार होते हैं। हे अर्जुन!
जब मेरे स्मरण ध्यान योग साथ जुड़े हैं तब स्मरण कर
ज्ञान उपजे है तिन योनियों में भी कोई एक जो मेरे स्मरण
साथपवित्र हुआहैतिसकोज्ञान उपजेहै तिसज्ञानकेउपजने

से मेरी रचनका कौतुक देखता है। क्या कौतुकदेखता है? यह सूर्य जो अपने प्रकाशसे सबलोकोंका अन्धकार दूर करेहै, तिस सूर्य में तेज प्रभुका जानों, ऐसे ही चन्द्रमा में जो तेज है, सो भी प्रभुका जानों। पृथ्वी जो सर्व जड़ है चैतन्य स्थावरजंगमकोधारकर भूतप्राणियों कोअपनेऊपरलेकरखड़ीहो रही है सो तिस पृथ्वी के तले बल प्रभुका जानो तिस प्रभुके आश्रय है और जितने मनुष्यों के अंश हैं। अन्न, घास, तृण वृक्ष इन सबको चन्द्रमा की किरणों साथ इस में रस जो हैं स्वाद, सो स्वाद मैं ही मिलाता हूं और आपही सर्वभूत प्राणियों के हृदयमें अग्नि होकर व्यापता हूं प्राण वायु ऊपर

की, अपान वायु तलेकी यह उदर मैं और अग्नि और प्राण वायु साथ जो प्राणी चार प्रकार के भोजन करते हैं, तिस अन्नको मैं ही पचाता हूं चार प्रकार का अन्न सुन। लेहज, पेहज, भक्ष, भोज्य यह चार प्रकार के अन्न हैं। जो अग्नि कर रध्या पकाया जाय भूना जाय सो भक्ष्य कहिये और जो कच्चा अन्न है चावल चने मोठ इत्यादि जो कच्चा अन्न खाईये सो अन्न भोज्य कहावे है। और ककड़ी खरबूजा हदवाना, गन्ना, आम इत्यादिक लेहज कहिये है। दूध, दही, छाछ शर्बत, पानी यह पेहज कहिये है। यह चार प्रकार के अन्न हैं और सब के हृदय में मैं

ही विराजता हूं। सब के हृदय में बैठके ज्ञान देके मनुष्य से भले कर्म मैं ही करता हूं अज्ञान देकर अपकर्म पाप मैं ही करता हूं। सब वेदों में पहिचानने योग्य मैं ही हूं, वेदों के जानने हारा भी मैं हूं, वेदों का अंत क्या जितनी वेदोंकी मति है सो अपनी मति से स्तुति करते हैं। सब महिमा करते हैं वेद की मति रह जाती है तब वेद नेती २ कहते हैं जो तुम्हारी महिमा के जानने को मैं समर्थ नहीं इस कारण से वेदों का अन्त करने हारा मैं हूं, अब अर्जुन और सुन। यह जो देह धारियों का पसारा है सो सभी पसारा दोनों पुरुषों का है। एक पुरुष बिनस जाता

३६४ है, दूसरा अविनाशी रहता है। तिन दोनों का वृत्तान्त सुन
भाषा यह जो बहुत तत्वोंका शरीर पुरुष है सो विनस जाता है
भ०गी० दूसरा जीव पुरुष है सो अविनाशी है, यह इन दोनों का
अध्यः१५ विस्तार है फिर इन दोनों से तीसरा पुरुष उत्तम है। जिसे
परमात्मा कहतेहैं। तिसका महात्म्य प्रताप सुन जिस आत्मा के नेत्र उघड़ने से ब्रह्मा आदि चींटीपर्यंत भूत प्राणियों की पालना होती है, फिर उसी के यह स्तम्भ धारे हुए हैं और जब तिस परमात्माकी पलक लगे चौदह भवन प्रलय हो जाते हैं। ऐसा महा प्रतापी है, इसी से तिनको आत्मा कहते हैं तिसको पुरुषोत्तम भी कहते हैं। उसका

अर्थसुन विनासिया हुआ जो शरीर सो पुरुषोत्तमसे अतीत है दूसरा जो अविनाशी पुरुष तिससे उत्तम है इसी से लोक वेदों में परमात्मा कहते हैं। हे अर्जुन! सो पुरुषोत्तम पुरुष मैं ही हूं और जिन भक्तों ने मुझ को पुरुषोत्तम पहिचानना है, फिर तिन्होंने क्या करना है, सर्व सिद्धों में सर्व कालों में मेरा ही भजन करे हैं। हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार शास्त्र वेद द्वारा मुझको पहिचाने मेरे चरणों साथ दृढ़ निश्चय करे तो निश्चय कृतार्थ होगा, मेरे पद को प्राप्त होगा। इति श्रीभगवद्गीता सूपनिषद् सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे संसार वृक्ष

३६६ योगो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

❀ अथ पन्द्रवें अध्याय का महात्म्य ❀

श्रीनारायणोवाच-हे लक्ष्मी! अब पंद्रवें अध्याय का महात्म्य सुन। उत्तरदेश में एक नृसिंह नामराजाथा और सुभग नाम मंत्रीथा। राजा को मंत्री पर बड़ा भरोसा था मनमें यही जो मंत्री मेरा बहुत भला है और मंत्री के मन में कपट था, मंत्री यही चाहता था जो राजा को मारकर यह राज्य मैं ही करूं। इसी भांत कुछकाल व्यतीत हुआ एक दिन राजा सोया पड़ा था और नौकर चाकरभी सोये पड़े थे तब मन्त्री राजा को सारे नौकरों समेत मार

कर आपराज्य करने लगा। राज्य करते बहुतकालव्यतीत हुआ। एकदिन वहभी मर गया यमराज के पास बांधकर दूत लेगये। धर्मराज ने कहा, हे यमदूतो यह बड़ा पापी है इसको घोर नरक में डालो। हे लक्ष्मी! इसी प्रकार वह पापी कई नरक भोगता२धर्मराज की आज्ञा से घोड़े की योनि में आया। संगलदीप में जाय घोड़ा भया। बड़े घोड़ों का सौदागर उसे मोल ले तथा और भी घोड़े खरीद कर अपने देश को चला। चलते २ अपने देश में आया तब तहां के राजा ने सुना कि अमुक सौदागर बहुत घोड़े ले आया है। तब राजा नेउसे बुलाया देख

कर घोड़े खरीदे उस घोड़े को भी खरीदा जब उस घोड़े को फेरा तब राजा की ओर देख कर शिर फेरा राजा ने देखकर कहा, यह क्या कारण है घोड़े ने शिर फेरा है। तब राजा ने पंडित बुलाकर पूछा, जो घोड़ा मोल लेकर फेरा था इस घोड़े ने हमको देखकर शिरफेरा है। इसका क्या कारण तब पंडित ने कहा, हेराजन् इस घोड़े ने तुमको शिर निवाया है राजाने कहा ये नहीं कई दिनके पीछे राजा शिकार खेलने को गया उसी घोड़े पर सवारी करके। वह घोड़ा जल्दी चले राजा शिकार खेलता २ बहुत दूर चला गया आगे राजा शिकार बन्दूक तीर से मारे उस दिन हाथों साथ

शिकार पकड़ के मारे राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। दुपहिर ३६६
होगई राजा को तृषा लगी, बनमें एक अतीत देखा कुटिया भाषा
में बैठा है तालाव जल से भरा है। वहां राजा जा उतरा भ० गी०
घोड़ा वृक्ष से बांधकर कुटियामें गया देखे तो साधू अपने अध्या१५
पुत्र को गीता के पन्द्रहवें अध्याय का पाठ सिखा रहा है।
वृक्षके पत्ते पर श्लोक लिखा दियाहै बालक को कहा खेलते
फिरो और इसको कंठ भी करो, जिस वृक्ष से राजा ने
घोड़ा बांधा था उसी वृक्ष के पत्ते पर श्रीगीताजी का
श्लोक लिखा था वह बालक पत्ता लेकर खेले भी, पढ़े
भी! उस पत्ते को घोड़े ने देखा तत्काल उसकी देह छूटी 24

देवदेही पाई स्वर्ग से विमान आए तिस पर बैठ बैकुण्ठ को चला, आकाश में खड़ा हुआ। इतने में राजा पानी पीकर बाहर आया देखे तो घोड़ा मरा पड़ा है। राजा चिंतावान हुआ कहे, यह घोड़ा किसने मारा? इसे क्या हुआ इतने में वह बोला हे राजन् तेरे घोड़े का चैतन्य मैं हूं, मैंने अब देवदेही पाई है, बैकुंठ को चला हूं। राजा ने पूछा, तुमने कौन पुण्य किया है? उसने कहा, हे राजन! यह बात ऋषिश्वर से पूछो। राजाने उस ऋषिश्वर को बुला कर पूछा, हे ऋषिश्वरजी! क्या कारण हुआ है। ऋषिश्वर ने कहा, राजन! गीता का श्लोक लिखा हुआ पत्ता

इसके आगे पड़ा है, घोड़े ने अक्षर देखेहैं,इस कारण घोड़े की गति भई। राजाने पूछा पीछे घोड़ा कौन था ? और घोड़ेके शिर फेरने की बातभी राजाने कही।हे ऋषिश्वरजी यह बात मुझे सुनाओ जो मेरा और घोड़े का क्या सम्बन्ध हुआ। ऋषिश्वर ने कहा, राजन् पिछले जन्म तू राजा था यह तेरा मन्त्री था, यह तुझको मार कर राज्य करता रहा। तू फिर भी राजा हुआ यह मर कर धर्मराज के पास गया धर्मराज ने धिक्कार कर कहा, इस पापी कृतघ्न को खूब नरक भुगाओ। बड़े नरक, भोगता २ घोड़े के जन्म में आया, संगलद्वीप से आकर

तेरे पास बिका। जब इस ने शिर हिलाया तब कहता था, हे राजन्! तू मुझे पहचानता नहीं परन्तु मैं पहचानता हूं यह कहकर ऋषिजी चुप हुए; राजाने विस्मित होकर दण्डवत की पीछे से और सेना के लोग आए मिले राजा सवार हो अपने घर आया, अपने पुत्र को राज्य देकर आप बनको गया। तप करने लगा, श्रीगीताजी के पन्द्रहवें अध्याय का पाठ किया करे जिसके प्रसाद से राजा भी परमगति का अधिकारी हुआ श्रीनारायणजी कहे हैं। हे लक्ष्मी! यह पन्द्रहवें अध्याय का महात्म्य है जो मैंने कहा है तैने सुना है। इति श्रीपद्मपुराणे सती

ईश्वर सम्वादे उत्तराखण्डे गीता महात्म्य नाम पञ्च-दशो अध्यायः ॥१५॥

* अथ सोलहवां अध्याय *

श्री भगवानुवाच—हे अर्जुन! अब और सुन, कई मनुष्यों के स्वभाव देवतों जैसे होते हैं कइयों के दैत्यों के स्वभाव होते हैं। प्रथम जिनमें देवतों के स्वभाव हैं; तिनकी बात सुन। पहले निर्भय किसी का डर न होना अन्तःकरण जो हृदय सो निर्मल अति शुद्ध और मेरे जाननेका ज्ञान तिनके मनमें, मेरे स्मरण योग साथ जुड़े हुए यथा-शक्ति दान करना, इन्द्रियां जीतना, यज्ञ करने और

मेरी महिमा जो वेदों में गाई है तिसको सुनना पढ़ना सहस्रशीर्षा पढ़ना पुराणों के स्तोत्र पढ़ना, कीर्तन करना, तपस्या करना। हे अर्जुन! तपस्या का महात्म्य सतारहवें अध्याय में कहूंगा। अहिंसा करना अहिंसा क्या जो दया करना किसी जीव को न दुखाना हृदय कोमल सत्यबाणी बोलना, असत्य न कहना, किसी से क्रोध न करना, शरीर की रक्षा मात्र भोजन छादन करना। इससे अधिक संचय न करना, इसका नाम त्यागी है। सदा संतोष में रहना, किसी की निंदा न करना, यथाशक्ति सब को सुख देना, निर्लोभी लोभ से रहित पाप करने से लज्जा

करनी चंचल स्वभाव से रहित होना, निश्चल आसन इन्द्रियों को निश्चल रखना, मन को भी निश्चल रखना और तेजस्वी क्या जोतिसकी अवज्ञा कोई न करसके। सब कोई तिसको नमस्कार करे, जब कोई दुःख दे तो सब क्षमा करे कोई दुर्वचन कह जाए, कोई दुःख देजाए, सब सहारे तिसको क्षमावान् कहते हैं। और धैर्य्य एक गोविन्द की शरण जो कुछ भगवत् इच्छा में हो सो भला मानना यह बात समझ कर जो मेरी शरण में सदा सन्तुष्ट प्रसन्न रहे, इसका नाम धैर्य्य है, देह को साधकर पवित्र रखे, स्नान करे अन्तःकरण जो हृदय सो श्वास २

नाम स्मरण कर पवित्र रखे। किसी को कष्ट न देवे अपनी पूजा मानता चित्त से न करावे किसी का गुरू गुसांई न बन बैठे। हे अर्जुन! यह लक्षण मनुष्यों में देवतों के कहे हैं॥ दूसरे असुरों के लक्षण सुन। प्रथम पाखंडी सो क्या लोकों में आपको धर्मात्मा दिखाना मनमें पाप चितवने यह पाखंड है। अब अतीत पाखंडियों के लक्षण जो संसार को त्यागकर मेरी शरण आए हैं, सो मेरी शरण आके फिर मेरे चरणों को छोड़ कर और बातों की मनमें चितवना करे हैं। क्या यह वांछा? जो मुझ जैसा और कोई नहीं क्रोधी, कठोर बोलना। हे पार्थ! यह अतीत

पाखंडी होते हैं। हे अर्जुन! दो प्रकार की प्रकृति दैत्योंकी होतीहै। इनकी उत्पत्ति अज्ञान सेहै, इन दोनों प्रकृतियों का फल सुन। जिन ममुष्यों में देवतों की प्रकृति है, सो प्राणी संसार से मुक्त होते हैं जिन में दैत्यों की प्रकृति है सो प्राणी संसार के जन्ममरण के बन्धन में पड़े रहते हैं। जब यह वचन श्रीभगवानजी के मुख से श्रवण किये तब अर्जुन अपने मन में विचारने लगा हे मन! दैत्यों का स्वभाव तेरे में कोई है। इसको देखकर श्रीकृष्णजी सह न सके कमलनयन केशवजी तत्काल बोले, हे अर्जुन! तू यह मत सोच तू देवतों की प्रकृति साथ ही ले जन्मा है। जन्म

के साथही देवतोंकी प्रकृति तेरे में आई है। हे अर्जुन यह स्वभाव इन मनुष्यों में वर्ते हैं देवताओं के स्वभाव विस्तार से कहे हैं दैत्यों के स्वभाव थोड़े कहे हैं सो कुछ थोड़े और भी सुन। हे अर्जुन ! दैत्यों के स्वभाव वाले मनुष्य न तो गृहस्थ में सुखी रहते हैं, न अतीत होकर सुखी होते हैं, अतीत होकर मार्ग नहीं जानते कि कैसे अतीत होते हैं, न पवित्रता को जानते हैं जो कैसे स्नान से पवित्रता होती है और मैं जो तत् स्वरूप हूं, तिसको भी नहीं देख सके परस्पर मिलते हैं तो यह कहते हैं कि परमेश्वर कहां है ? किसी ने देखा है ? परमेश्वर

नहीं है। संसार का कर्त्ता कोई नहीं। और न संसार का कोई ईश्वर है, हम आपही आप उत्पन्न हुए हैं, हम ही परमेश्वर हैं, सो प्राणी मूर्ख अंधमति आपही को परमेश्वर कहते हैं, और सब बातों में से यह भली बात समझ रखी है जो उत्तम स्वादिष्ट भोजन भोग भोगिये और अच्छे २ सुगंध वाले रंगीन वस्त्र पहरिये, सुन्दर स्त्रियों साथ सुख भोगिये इन बातों को परम सुखरूप समझ रखा है। इनको लाभ समझने से दुष्ट बुद्धि तिनको हुई, शुद्ध आत्मा तिनका नष्ट हुआ और थोड़ी मत जिनकी है सो ऐसे कार्य आरम्भ करते हैं जिस करके आप

भी कष्ट पाते हैं और औरों को भी कष्ट देते हैं। ऐसे कर्मों का तो आरम्भ करते हैं और दूसरे को कभी तारा न जाये ऐसा जो कर्म तिसका आश्रय पकड़ रखा है। पांखण्ड, गर्व मद अन्धता कर अंधे हुए हैं सो तिस अंधेरे साथ उन्मत्त मतिवारे होरहे हैं। माया के मोहे हुए मिथ्या वस्तु को पकड़ रहे हैं अति अपवित्र स्वभाव को वर्तते हैं। जबतक संसार की प्रलय नहीं तब तक नित्य ही चिन्ता में मग्न रहते हैं। काम, स्वार्थ का परमलाभ काम की दृढ़ता में दृढ़ आशा अंदेशा कर बन्धे हुए काम क्रोध में दृढ़ हैं जिनका चित्त। निष्फल कर्म कर द्रव्य

एकत्र करते हैं छल वंच झूठ इन करके अपने आपको ३८१
नाश करते हैं। जब कपट करके द्रव्य इकट्ठा करतेहैं इसको भाषा
बड़ा लाभ जानते हैं यह मेरा मनोरथ पूरा हुआ है, यह भ० गी०
प्रातः मैं पाऊंगा यह अगले दिन पाऊंगा। शत्रुओं के मारने अध्या१६
को सामर्थ हूं, बैरी की जीत जानता हूं, सिद्ध बलबान
हूं, सुखी हूं, तत्पुरुष हूं, भोगी हूं सात पीढ़ियों से धन
पात्र हूं, पुरातन साहूकार हूं मेरे तुल्य दूसरा कोई नहीं
मैं ही सब से सार हूं, कर्म करतूत का कर्त्ता हूं और सब मेरे
दास हैं। अज्ञान मोह कर बहुत चितवना, विषयों में
निमग्न हैं। हे अर्जुन अनेक प्रकार के विषयों में तिनका मन

पड़ा भ्रमता है, मोह के जाल में फंसे हुए काम भोगों कर पकड़े हुए धनकी दशा कैसीहै यहां भी नरक आगे भी नरक में पड़ेंगे! और यज्ञ महोत्सव श्राद्ध त्रय कार्य तिनके कैसे हैं सो सुन। प्रथम तो अहंकार करते हैं। यह यज्ञ मैंने किया है, अहंकारी हैं, किसी को शिर नहीं निवाते धनके गर्व कर मतवारे हुए रहते हैं, लोगों से भला कहाने के निमित्त यह श्राद्ध यज्ञ करते हैं। उस प्रकार नहीं करते फिर अहंकार बल गर्व काम क्रोध इन सब से भरे हुए हैं और मैं जो आत्माराम सब देहों में व्यापक हूं तिसको नहीं जानते सो दैत्यबुद्धि मनुष्य हैं किसी देहधारी को

दुःख देते हैं किसी की निन्दा करते हैं इत्यादि जो कठोर मनुष्य हैं अधम नीच पापी तिनके लक्षण कहे हैं। अब अर्जुन मेरी बात सुन। तिनके साथ कैसा हूं, तिनको दुःख दायक जो योनि गधे की जिस कर दुःखी हो, कलह क्लेश अज्ञान साथ भरी हुई आसुरी योनि कुत्ते की इत्यादिक और योनि आसुरी तिन में उनको डालता हूं, बारम्बार ऐसी कुचील योनी में तिनको भरमाता हूं, हे कुन्तीनन्दन ! जिन्होंने मुझे नहीं पाया सो प्राणी बार-म्बार इन कुचील योनी में भरमते फिरते हैं हे अर्जुन ! जो नरक कहते हैं तिसके तीन द्वार हैं इस आत्माका नाश

करनें हारे हैं। काम, क्रोध लोभ तीन द्वार नरक के हैं। हे सखे ! प्रीतम इनको त्यागकर जो तीनो से मुक्त हैं तिन प्राणियों ने अपने आत्माकी कल्याणकी और सो मनुष्य परम गति को प्राप्त होंगे। हे अर्जुन ! जो शास्त्र की मति त्यागकर अपने मनकी मति पर चलते हैं, और यज्ञ आदि महोत्सव कार्य को करते हैं और यज्ञ आदि करते हैं, शास्त्र विधि को त्यागके दान करते हैं,सो मनुष्य किसी कर्म किये का फल नहीं पावेंगे और न किसी प्रकार का तिनको सुख होगा ओर किसी समय भी परमगति को नहीं पावेंगे इसी से हे अर्जुन ! जो भले पुरुषों के निर्मल आत्मा हैं जो कुछ

यज्ञ, तप, दान करते हैं। शास्त्रविधि से करते हैं, सो प्राणी मेरी कृपा से मेरी परमगति को पावेंगे। इति श्रीभगवद् गीता सूपानिशद्सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे देव-आसुरी संपदा विभाग योगो नाम षोडशो अध्याय ॥१६॥

* अथ सोलवें अध्याय का महात्म्य *

श्रीनारायणोवाच–हे लक्ष्मी ! सोलवें अध्याय का महात्म्य सुन। सोरठ देश है, तिसके राजे का नाम खडगबाहू था। बडा धर्मात्मा था तिसके राज में घर २ ठाकुर मंदिर थे। वहां बड़े २ यज्ञ हुआ करते थे, तिन घरों

में स्वर्ण के थंभे जड़ाऊ जड़े हुए थे। राजा बड़ा हरिभक्त संतसेवी था तिसकी प्रजा भी अति सुखी, राजा भी दयावान सर्व जीवों पर दया करता था। तिसके घर में बहुत हाथी, घोड़े, धन भी था। उन हाथियों में एक हाथी बड़ा मस्त था, तिसकी धूममची रहे महावतों को नेड़े ना आने देवे, जो महावत तिस पर चढ़े तिसको मार-डाले हाथी के पांव में जंजीर डारे रहें, तिसके खेद से राजा ने और देशों से महावत बुलायकर कहा, कोई ऐसा होए जो इस हाथीको पकड़े, मैं उसे बहुत धनदूंगा। हेलक्ष्मी। उस हाथी को किसीने नहीं पकड़ा नज़दीक कोई नहींजाय

सके और राजा के मंदिर आगे हाथी वह खड़ा रहे। जिधर जावे लोकों को बड़ा दुःख देवे, जो कोई उसके आगे आवे तुरंत मारडाले बनमें जाए तो बनके पशु पक्षियों को मारे नगर में लोको को मारे, जहां रहे बड़ा दुःख ही करे, बड़ा उपद्रव करे, राजा सुनकर बड़ा चिन्तावान रहे, कई उपाय करके राजा थक गया। हाथी बस आवे नहीं, राजा को बड़ी चिन्ता लग रही, एक दिन हाथी नगर में चला गया। सामने से एक साधू चला आवे, लोकों ने उस साधू को कहा, हे संतजी। यह हाथी आपको मार डालेगा। संतने कहा, देखो तुम श्रीनारायणजी की कैसी शक्ति है। हाथी

की क्या शक्ति है, जो मुझे मारे, मेरे नजदीक नहीं आए सकता। नगरवासियों ने कहा, वह पशु है, तेरे भजनबल को क्या जाने नारायण कौन वस्तु है, यह तुम्हें मारेगा। ब्राह्मण ने कहा हाथी क्यों मारेगा ? मैं परमेश्वरको प्यारा हूं हरिभक्त हूं. जो परमेश्वर से बेमुख हैं तिनको मारता है, और यह भी मेरा एक ज्ञान है कि जो मेरी मृत्यु इसी से है तो अवश्य मरूंगा। बिना आई से कोई नहीं मरता इतने में हाथी आय पहुंचा। साधू ने नेत्र पसार के देखा, हाथी ने सूंड के साथ साधू को चरण वंदना की ? और खड़ा रहा। तब साधू ने कहा, हे गजेन्द्र ! मैं तुझे जानना हूं, तू

पिछले जन्म पापी था, मैं तेरा उद्धार करूंगा, चिंता मतकर हाथी बारंबार चरण छूहे, माथा निवावे, लोगों ने देखकर राजा को खबर की, राजा भी वहां आया, देखे तो हाथी साधू आगे खड़ा है। तब साधू ने कहा अरे गजेन्द्र तू आगे आ हाथी ने आगेहो चरणबंदना की। उस संत गीता पाठी ने करमंडल से जल लेकर मुख से कहा, गीता के सोलहवें अध्याय का फल इस हाथी को दिया। इतना कह जल छिड़का जलके छिड़कने से हाथी की देह छोड़ देवदेही पाई विमान पर चढ़ राजा के सन्मुख होकर कहा, हे राजा! मैं तुझको धर्मज्ञजान तेरे नगर में रहिता था, जो कभी कोई

संत यहां आवेगा तब मेरी गति करेगा, इस संत के प्रताप से मेरी सद्गती हुई। यह कह वैकुंठको गया। राजाने संत को दंडवत(प्रणाम)की और कहा, संतजी आपने कौन मंत्र कहा, जिसकर यह अधम दुःखदायक को सद्गती प्राप्त हुई। संतने कहा, मैंने गीता के सोलहवें अध्याय के पाठका फल दिया है नित्य ही मैं पाठ करता हूं। राजा ने पूछा, हाथी पिछले जन्म कौन था साधू ने कहा, हे राजा! यह पिछले जन्म एक अतीत बालक था, गुरू ने बहुत विद्या पढ़ाई, बड़ा पंडित हुआ, वह अतीत तीर्थ यात्रा को गया पीछे उसकी शोभा बहुत हुई अच्छे२सत्संगी उसके दर्शन

को आते बारां वर्ष पीछे गुरूजी आए वह अतीत नम्र थे। यह बड़ी समाज में बैठा था, मनमें सोचा अब इनके आदर को उठता हूं, तो मेरी शोभा घटेगी यह सोचकर नेत्र बंदकर चुप हो रहा; गुरूजी ने देखा मुझे देखकर इसने नेत्र बंद किये हैं। ऐसा देखकर श्रापदिया कहा, रे मन्दमत ? तूं अन्धा हुआ है! मुझे देख कर शिर भी नहीं नवाया और ना उठकर दंडवत की है तैंने अपनी प्रभुता का अभिमान कियाहै, सो हाथी जून होवेगा। यह सुन कर बोला, हे संतजी! आपका वचन सत्य होगा कहो मेरा उद्धार कैसे होगा। गुरु को दया आई कहा जो गीता के सोलहवें अध्याय के पाठ

का फल संकल्प तुझे देगा तब तेरा उद्धार होवेगा, यह सुन कर राजा ने भी पाठ सीखा और अपने पुत्र को राज देकर आप तप करने लगा, बन में जायकर सोलहवें अध्याय का पाठ नित्य करे, समय पाय कर राजा भी सद्‌गती को प्राप्त हुआ, श्रीनारायणजी कहे हैं। हे लक्ष्मी यह सोलहवें अध्याय का फल है। इति श्रीपद्मपुराणे सति ईश्वर सम्बादे उत्राखण्डे गीता महात्म्य नाम षोडसो अध्यायः ॥ १६ ॥

* अथ सतारवां अध्याय *

अर्जुनोवाच-अर्जुन श्रीकृष्ण भगवानजी से प्रश्न

करे है कि हे भगवान् कृपानिधान जी जो पुरुष अपनी बुद्धिमत्ता कर शास्त्र विधि को समझ नहीं सके और जिन्होंने तुम अविनाशी परमानंदको समुद्र ऐसा पछान कर जो तुम्हारी शरण आये हैं ! तुम्हारे भक्त हुये हैं तुम्हारा स्मरण भजन किया सो तिन पुरुषों ने शास्त्र की विधि पछानी और हे भगवान ! जिन प्राणीयों ने तुम परमानंद अविनाशी समुद्र को नहीं पछाना तिन पुरुषों ने शास्त्र की विधि नहीं पछानी ! हे परम पवित्र पुरुषोत्म जी जिन मनुष्यों मन्द भागियोंने शास्त्र की विधि जो तुम्हारा भजन है तिसको त्यागकर श्रद्धा से किसी

की सेवा पूजा नहीं की सो हे कवलनयन कृपा निधान जी ! सो प्राणी राजसी कहे कि तामसी कहिये। यह मेरे प्रति कहो अर्जुन की बिनती मानकर कवलनयन कृपा निधान श्रीकृष्ण भगवानजी कहते हैं। श्रीभगवानोवाच- हे अर्जुन ! पूजा करने की विधि भी तीन प्रकार की है जो सोतेहुवे मनुष्यों को जगा देती है सो श्रद्धा तीन प्रकार की है राजसी,सात्वकी और तामसी सो इनको भिन्न २ मैं कहता हूं। सो हे अर्जुन जिन की सात्वकी प्रकृति है तिनका निश्चय तो यह है ! एक ही भगवान सर्वव्यापी जान कर सब के साथ श्रद्धा रखते सब के सुहृद मित्र होए

वरते हैं यह तो सात्वकी पुरुष । आगे तिन की प्रकृति
सुन देवता की पूजा में तिनकी श्रद्धा लगी रहती है और
राजसी प्रकृति सुन यक्षों में राक्षसों की पूजा में तिनका
मन लगे है और तामसी प्रकृति सुन । प्रेत भूतगण इत्या-
दिक जो तामसी जून है तिन में लगे हैं जो इस प्रकार
तपस्या करते हैं सो असुर दैत्यों की तपस्या है जो शास्त्र
में कही नहीं जिसके देखने से डर आता है ऐसे जो
तपस्वी तप करते हैं । लोगों को दिखाने के निमित्त जो
देख कर कहें कि यह बड़ा तपस्वी है । मन में फल की
कामना करते हैं जिस तप को करते, शरीर को भी कष्ट

होवे तिस तप के फल की कामना करते हैं। हे अर्जुन तिनकी देह में भी मैं आत्माराम व्यापी हूं; सो मुझ को दुःख देते हैं ऐसे जो अंधमत अज्ञानी तप करते हैं तिन को तूं दैत्य तपस्वी जान यह तप दैत्यों का है हे अर्जुन! अब आहार के भेद सुन। आहार भी तीन प्रकार के हैं यज्ञ भी तीन प्रकार के हैं तपस्या भी तीन प्रकार की है और दान भी तीन प्रकार के हैं इन के भेदाभिन्न २ सुन। पहिले शांतकी आहार सुन जिसके खाने से आयु बहुत होती है आयु बढ़ाने हारा भोजन अमृत देवताओं को मिलता है जिसको पान करने से देवता अमर

होजाते हैं, मनुष्यों का आहार सुन। जिसके खाने से देह में बल पुरुषार्थ हो, आरोग्यता हो, जिसके खाने से मन में प्रीति उपजे कि भला भोजन खाईये और जो रस स्वाद तिस से भरा हुआ घृत साथ स्निग्ध दाल चावल; कोमल फुलके घृत से चोपड़े नर्म यह आहार शांतकी कहावे है। मनुष्यों का प्यारा है; अब राजसी आहार सुन। मिट्ठा; खट्टा; सलूना अति तत्ता जिसके खाने से मुख जले और रोग उपजे, दुःख देवे ऐसे बुरे फल जिसके खाने से होते हैं यह आहार राजसी मनुष्यों को प्यारा है। अब तामसी सुन जिस आहार के बनाने में

२१८ रात्री व्यतीत हो गई हो। रात्री का वासी और स्वाद भी
भा०षा जिससे मिट गया हो; दुर्गन्ध आती होय और किसी का
भ०गी० जूठा यह भोजन तामसी कहाता है। तामसी मनुष्यों
अध्य०१७ का प्यारा है। अब तीन प्रकार के यज्ञ सुन! पहिले
सात्वकी यज्ञ सुन तिस यज्ञ में फल पावने की कामना नहीं
है। जैसे शास्त्र में विधि लिखी है सो करना चाहिये और
यज्ञ कर्त्ता कहे कि मुझको यज्ञ करना योग्य है, सो इस
प्रकार सावधान होकर यज्ञ करे सो यज्ञ सात्वकी कहाता
है। अब राजसी यज्ञ सुन। जिस यज्ञ के करने में फल
की वांछा नहीं है। केवल लोगों के भला २ कहने के नि-

मित्त यज्ञ करता है हे अर्जुन! ऐसे यज्ञ को तू राजसी जान। अब तामसी यज्ञ सुन जिस यज्ञ में शास्त्र की विधिं नहीं; मन भी पवित्र ना हो; वेद के मंत्र भी न पढ़े साधू ब्राह्मणों को यज्ञ के पीछे दक्षिणा ना दे; ऐसे यज्ञ करने में यज्ञ कर्त्ता को श्रद्धा भी ना होय हे अर्जुन! ऐसे यज्ञ को तामसी जान। और तीन प्रकार का तप सुन। एक देह करके, दूसरा मन करके तीसरा वचन करके, यह तीन प्रकार का तप है। प्रथम देह का तप सुन। जहां कोई छोटा जीव हो तिसको देख कर पैर धरना किसी जीव को खेद ना पहुंचे यह चरणों का तप हाथों कर स्था-

वर जंगम जीव को दुखावे नहीं; यह हाथों का तप है। देह को जल मृतिका साथ स्वच्छ रखे; दातन करे स्नान करे आचमन करे; तिलक करे; शालिग्राम का पूजन करे और जो बुद्धिमान आप से अधिक हो परमेश्वर का रास्ता बतावे उसकी पूजा करनी ब्रह्मचर्य रखना ब्रह्मचर्य क्या सो सुन। हे अर्जुन ! जो गृहस्थी हो तो पराई स्त्री को छूहे नहीं। जो विरक्त होए बैरागी तो स्त्री का नाम भी ना लेवे, मन कर चितवै भी नहीं; यह ब्रह्मचर्य कहावे है माता पिता की सेवा करे। इस प्रकार शरीर का तप करना उचित है अब वचनों कर तप सुन प्रथम तो सत्य

बोलना कैसा सत्य जिस सत्य बोलने से सुनने वाले को दुःख न होवे मीठी बाणी बोले मधुर स्वर से जिस किसी को बुलावे भाई जी संतजी भक्तजी प्रभुजी मित्रजी जिस वचन को सुनने वाला प्रसन्न हो। ऐसा वचन बोले और जो कोई पुरुष बुलाए उसे यूं कहे हां जी भाई जी इस प्रकार वचन तपस्या है, और वचन तप सुन, वेदमाता जो गायत्री पढ़े वेद पाठ करे। सहस्रशीर्षा, पुराणों के स्तोत्र पढ़े और कथा में जो मेरी लीला अवतारों के चरित्र पढ़े कीर्तन विष्णुपदे गावने इस प्रकार वचन तप करे। हे अर्जुन! मनका तप सुन प्रथम मुख्य तप मनको

प्रसन्न रखे। मेरी जो प्रीति अमृत रूप है। मन की प्रीति मेरे में लगावे और चितवना से मनको वरज, मन का निश्चल चेता मेरे में लगावे, और मन को शुद्ध कर मेरे में भाव जो श्रद्धा सो लगावे, प्रीति करे मेरे साथ, यह मनकी तपस्या कहिये है। अब श्वासों की तपस्या सुन श्वास २ मेरा स्मरण करना। हरि, राम, कृष्ण इत्यादिक मेरे नामों का जाप करना सहस्रनाम, शतनाम पढ़ने यह श्वासों का तप है। अब इस तपस्या के तीन प्रकार के भेद सुन। यह जो देह मन वचन श्वासों कर तप करना मैंने कहा है सो करे जो प्राणी परम श्रद्धा से, सो मुझको आ मिलता

है और प्रीति से तपस्या करे और फल कुछ वांछे नहीं, मुझईश्वर अविनाशीमें समर्पणकरे सो सात्विक तप कहावे है। और जो लोगों में भला कहाने के निमित्त तप करे। और अपनी पूजा प्रतिष्ठा करावे, अपनी मानता करावे सो पाखंडी, तपस्वी, राजसी तपस्वी कहावे है यह तपस्या निश्चल नहीं चलायमान है, स्थिर नहीं, अब तामसीतपस्या सुन। जो अज्ञान को लिए हुए तप करे और जिस तप करे शरीर को कष्ट प्राप्त होए, और किसी के बुरा करने के निमित्त तप करे सो तामसी तपस्या कहावे है अब तीन प्रकार का दान सुन। प्रथम सात्विक दान सुन जो इस

प्रकारदान करे यह दान अवश्य करना मुझको योग्य है। सो कैसे करे उत्तम ब्राह्मण गृहस्थी को दान देना। जिस से कुछ संसार कामना का उपकार हो, किसी सम्बन्धी सके का ब्राह्मण न हो, और अति पवित्र पृथ्वी हो गौ के गोबर साथ लिपी हो, और समान एकसा हो, प्रातःकाल का समय हो, आप भी स्नान करके पवित्र हो ब्राह्मण भी पवित्र सुकर्मी हो, तिसको दान देवे इस विधि से सात्विक दान कहाता है! अब राजसी दान सुन तिस ब्राह्मण को दान देना जिससे अपना कुछ उपकार न हो तिसको दान दे, दान के करने से फल की वांछा करनी यह

दान राजसी कहाता है। तामसी दान यह स्थान भी पवित्र नहीं, समय भी ऐसा हो, आप भोजन पाकर दान करे ब्राह्मण भी ऐसा हो या किसी और जाति म्लेछ आदिक को दानदेवे क्रोध साथ यागाली देकर दुर्वचन कर दानदेना यह तामसी दान कहाता है। हे अर्जुन ! जिसको पारब्रह्म कहते हैं सो कौन पारब्रह्म जिसके रजोगुण से ब्रह्मा प्रकट हुआ संसार के उत्पत्ति करने को, जिसके सात्त्विक गुणसे संसार की पालना कर्त्ता विष्णु प्रगट हुआ, और जिसके तमोगुणसे संसार के संहारनेकोमहादेव प्रकट हुआ है।ऐसा जो पारब्रह्म, तिसने यह ब्राह्मण भी प्रकट किये हैं। उसीने

वेद प्रकट किये हैं उसीने यह यज्ञ बनाए हैं,हे अर्जुन! उस पारब्रह्म की जो आज्ञा है इस करके वेदोंके वक्ता ब्राह्मण ही हैं वेदोंकी विधि को समझ कर। यज्ञ दान तपस्यास्नान और भी पवित्र कर्मइत्यादि जो हैं। सब वेदों को समझ कर करते हैं। अब इन यज्ञ. दान तपस्या का फल सुन जो प्राणी इसका फल नहीं मांगते केवल मुक्ति की वांछा है सो प्राणी मुक्ति को पावेंगे, अब जो प्राणी किसी कामना के लिये शुभकर्म करते हैं सो प्राणी कामना को पावेंगे। हे अर्जुन! जो मेरा भक्त प्रीति साथ पत्रफल पुष्प जो कुछ मुझ को समर्पण करे सो मैं अंगीकार करता हूं।

प्रकृति प्रकार सो भी सुन ! प्रथम तो मुझको सत्य जाने कि यह जो कुछ मैं परमेश्वर को समर्पण करता हूं सो गोविंदजी अंगीकार करें और आपको यह जाने जो मैं परमेश्वर का भक्त हूं, अपने में और मेरे में भेद न जाने और आपको यह कहे कि मैं मन,वच,कर्म कर परमेश्वर का दास हूं। मेरा दास होकर मन, वच,कर्म कर जो मुझे समर्पे सो मैं अंगीकार करता हूं। ऐसे भक्त का दिया मुझको प्राप्त होता है और हे अर्जुन ! जो कोई श्रद्धा से रहित होकर जो कुछ पदार्थ अग्नि में होम करे, दान करे तप करे और जो सत्य कर्म करे श्रद्धाके विना. मेरे निमित्त

तिनको मैं अंगीकार नहीं करता। और जो कोई अपने पितरों के निमित दान करता है उसको वह भी अंगीकार नहीं करते। श्रद्धा प्रीति से रहित होकर दिया हुआ दान किनको प्राप्त होता है सो सुन फल भूतों की देहधार कर भोगना पड़ता है भूत प्रेत वह फल को भोगते हैं मुझको नहीं प्राप्त होता। और मैं भी उनको नहीं ग्रहण करता हूं॥ इति श्रीभगवद्गीता सूपानिषद सूब्रह्म विद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे त्रिविध श्रद्धा योग विभागो नाम सप्त दशमों अध्याय ॥१७॥

* अथ सतारवें अध्याय का महात्म्य *

श्री भगवानुवाच—हे लक्ष्मी! अब सतारवें अध्याय का महात्म्य सुन। मंडलीकनाम देश में दुशासन नाम राजा था। एक राजा किसी और देशका था तिन्हों ने आपस में शर्तबांधी हाथी लड़ाये और कहाजिसका हाथी जीते सो यह अमुक धन लेवे। तब दूसरे राजा का हाथी जीता दुशासन का हाथिहारा। कोई दिन पीछे हाथी मर गया राजा को बड़ी चिन्ता हुई। एक द्रव्य गया दूसरा हाथी मरा तीसरे लोगों की हंसी हुई। इस से निन्दा चली इसी चिन्ता में राजा भी मर गया; यमदूत पकड़ कर धर्मराज के पास लेगये धर्मराजने हुकम दिया। यह हाथी

४१० के मोह से मर गया है, इसको हाथी की योनी देवो। हे
भाषा लक्ष्मी ! राजा दुशासन संगलदीप में जाकर हाथी हुआ
म० नी० वहां उस राजे के बहुत हाथी थे। तिन में आया और
पत्रा१७ पिछले जन्म की खबर थी। मन में बारम्बार यही पछतावे
के मैं पिछले जन्म राजा था, अब हाथी हुआ हूं। बहुत
रुदन करे खावे पीवे कुछ नहीं इतने में एक साधू आया
तिसने राजा को एक श्लोक सुनाया। राजा बड़ा प्रसन्न
हुआ कहा, हे पंडितजी ! कुछ मांगो उसने कहा और मेरे
पास सब कुछ है, एक हाथी नहीं राजा ने सुनकर वही
हाथी दिया, ब्राह्मण अपने घर ले आया, दाना रात

को दिया, वह खावे नहीं। पानी भी नहीं पिया, रुदनकर मन में चितवे कोई ऐसा होवे जो मुझे इस योनि से छुड़ावे तब उस ब्राह्मण ने महावत को बुलाया पूछा कि इस हाथी को क्या दुःखहै खाता पीता कुछ नहीं। महावतने देखकर कहा इसको दुःख कुछ है नहीं तब ब्राह्मण ने राजा को कहा हाथी खाता पीता कुछ नहीं खड़ा रुदन करता है। यह सुनकर राजा आप देखने को आया राजा ने भले २ वैद्यबुलाए और महावत सदवाए सबको हाथी दिखाया उन्हों ने देखकर कहा, राजाजी इसको मानसी कोई दुःख है। देहकर कोई दुःख नहीं। मनकर दुःखहै तब राजाने

४।२ कहा हाथी तूही बोलके कहो, तुझे क्या दुःख है। परमेश्वर
भाषा की शक्तिसे मनुष्यों की भाषा में हाथी ने कहा, हेराजन्!
भ०गी० तू बड़ा धर्मज्ञ है यह ब्राह्मण भी बड़ा बुद्धिमान है, इस
अध्या।१७ के घर का अन्न सो खावे जो बड़ा धर्मात्मा हो मुझको
कब मिले; तब ब्राह्मण ने कहा। हे राजा! अपना हाथी फेर
ले। राजाने कहा, दान किया मैं नहीं फेरता। यह हाथी मरे
चाहे जीवे तब हाथी ने कहा संतजी तू मत कल्प तेरे घर
में कोई गीता की पोथी हो तो मुझे गीता के सतारवें
अध्यायकापाठ सुनाओ। तब उस ब्राह्मण ने ऐसे कियाहै
लक्ष्मी। सतारवें अध्याय के सुनते ही तत्काल हाथी की

देह छूटी आकाश से विमान आए देव देही पाकर विमानों पर चढ़के राजा के सामने आ खड़ा हुआ राजा की स्तुति करी। राजन् तू धन्य है तेरी कृपा से मैं इस अधम देह से छूटा हूं, राजा को अपनी पिछली कथा सुनाई। हे राजन्! मैं पिछले जन्म राजा था। हाथी मैंने लड़ाये थे मेरा हाथी हार गया, मैं उसी चिन्ता में मर गया धर्मराजकी आज्ञा से मैंने हाथीका जन्म पाया। मैंने प्रार्थना करी थी मेरा छुटकारा भी कहो कब होवेगा धर्मराज ने कहा गीता के सतारवें अध्याय के सुनने से तेरी मुक्ति होवेगी। सो तेरी और पंडित जी की कृपा हुई, मैं वैकुंठ

को जाता हूं! देव देही पाकर वैकुंठ को गया । राजा अपने घर आया । श्रीनारायणजी कहे हैं, हे लक्ष्मी ! यह सतारवें अध्याय का महात्म्य है जो तैने सुना है । इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे उत्राखण्डे गीता महात्म्य नाम सप्तदशो अध्यायः ॥ १७ ॥

* अथ अठारवां अध्याय *

अर्जुनोवाच-अर्जुन श्रीकृष्णदेवजी से प्रश्न करे है कि हे महाबाहो ! हृषिकेश कृष्ण भगवानजी, हे केसी दैत्य के मारने हारे जी! हे प्रभुजी ! मैं तुझ से सन्यास का तत्व जानना चाहता हूं जो सन्यास किसको कहते

हैं, और त्याग का तत्व भी जानना चाहता हूं। जो त्याग किसको कहते हैं सो प्रभुजी इन दोनों का उत्तर भिन्न २ कहो जी। अर्जुन की विनय मान कर श्रीकृष्ण भगवान् बोलते भये। श्रीभगवानुवाच—हे अर्जुन! संसार की कामना के सभी कार्य कर्म्म त्याग कर मेरी शरण में आवना ऐसा जो प्राणी ज्ञानी सो सन्यासी कहे हैं। हे अर्जुन! मेरे चरण कमल की शरण में आकर मेरी भक्ति बिना और किसी वस्तु की कामना ना करनी ऐसा जो चतुर विलक्षण मनुष्य है सो ज्ञानी कहाता है यह तो हम ने अपने मत का सन्यास और त्याग कहा

है अब अर्जुन जैसे शास्त्रों का मत है सुन एक शास्त्र तो यह कहते हैं ज्यों बुरे कर्म त्यागिये त्यो भले कर्म भी त्यागिये। क्यों भले कर्मका फल सुख और बुरे कर्म का फल दुःख भोगता है। भला कर्म कंचन जो है सोना तिसकी बेड़ी चरणों में। बुरा कर्म लोहा तिस लोहे की चरणों में बेड़ी है। इसी से भले बुरे कर्म दोनों बंधन के दाता हैं। इस लिये इनका त्याग करना योग्य है। हे अर्जुन एक शास्त्र यह कहता है जो यज्ञ दान तपस्या स्नान इन से आदि सत्य कर्म नहीं त्यागने। यह पवित्रता के दाता हैं, यह कर्म करने से देह पवित्र होती है। हे भारतवंशी

अर्जुन अब निश्चय कर मेरे मत का त्याग सुन! त्याग तीन प्रकार का है। प्रथम तो मेरा मत यह है, यज्ञ, दान, तपस्या, स्नान यह मनुष्यों को पवित्र करते हैं। विवेकी पुरुष इनका त्याग नहीं करते, जो भले विवेकी पुरुष हैं, यह सत्य कर्म करने तिनको भले हैं। भले कर्म करके तिनका फल कुछ बांछते नहीं, इसी कारण से मेरे मत में यह बात भली है। सब बातों से श्रेष्ठ है, जो सत्य कर्म कर फल की वांछा न करे, यह बात अति भलीहै और जो अज्ञान से आलस्य करे, सत्य कर्म त्यागकर जो स्नानं करे उसे क्या होता है। जो प्राणी माया का मोह्या हुआ

सत्य कर्म त्यागे सो यह तामसी त्याग कहाता है। जो प्राणी देह के दुःख से डर के सत्यकर्म त्यागे जो स्नान करने से मुझे शीत लगता है, हाथ दुःखते हैं, इस प्रकार का त्याग राजसी कहाता है इस का फल नहीं पाते। हे अर्जुन! जो इस प्रकार सत्यकर्मों को करता है, प्रथम तो कहे जो मेरा क्षत्रिय ब्राह्मण का जन्म दुर्लभ है, स्नान आदि कर्म करने मुझको भले हैं। अवश्यमेव कर्म करे और फलकी कुछ वांछा नहीं करे, ऐसा सात्विकी त्याग कहाता है। हे अर्जुन! विवेकी पुरुष स्नान आदि सत्यकर्मों की निन्दा भी नहीं करते और आप इन सत्यकर्मों का त्याग

नहीं करते परन्तु निश्चय से इन्हें करते हैं, फल की वांछा नहीं करते। हे अर्जुन ऐसे प्राणियों की बुद्धि निर्मल होती है, तिस निर्मल बुद्धि से ज्ञान उपजता है जब मेरी माहिमा का ज्ञान उपजा तब संसार केबंधन से मुक्त होता है। इस से हे अर्जुन ! सत्य कर्मोंका त्याग न करे, जैसे सीढ़ियों के मार्ग से मन्दिर के ऊपर जो चढ़ता है। यह सत्य, कर्म, करने की मुक्ति सीढ़ी है, और जितने देहधारी हैं सो किसी देहधारी की शक्ति नहीं, जो सत्य कर्म त्यागे ! हे अर्जुन जब पिता के वीर्य से माता के उदर में यह जीव आता है उसी दिन से लेकर मरने

के दिन तक कभी यह निष्कर्मी नहीं है और न यह जीव त्यागी होता है। हे अर्जुन यह जीव कब निष्कर्मी होता है सो सुन। सत्य कर्म प्राणी मुझको समर्पै कुछ फल न मांगे,तब यह जीव निष्कर्मी और त्यागी होता है। अब जो मनुष्यों को नित्य ही अपने कर्म करने का तीन प्रकार का फल होता है, सो सुन। भलेकर्म का फल सुख बुरे कर्मका फल दुःख, और जो भले बुरे कर्म को रला मिलाकर करे सो सुख दुःख मिश्रित होता है यह तीन प्रकार के फल हैं जो नित्य संसारी मनुष्यों को होते हैं, पर किनको? जोसंसारकोत्यागकरमेरीशरणनहींआए,तिनको

त्याग जो प्राणी मेरे चरण कमलों की शरण आए उनके निकटकोई दुःख नहीं आता, अब अर्जुन और सुन। जितने कर्मदेहधारी मनुष्योंसे होतेहैं, भलेवाबुरेसोसबदेहइन्द्रियों मनसे होते हैं। आत्मा कैसा है? अकर्त्ताहै। कुछनहीं करता केवल एकही है। निर्मलका निर्मलहै हे अर्जुन! तिसको, मैंने पहचाना है जिनकी निर्मल बुद्धि है सो तिस आत्मा को पहचानते हैं, और दुर्मति जो अधमति पुरुष हैं सो आत्मा को नहींदेख सकते। हे अर्जुन तिसको अहंबुद्धि नहीं कि मैं जो आत्मा हूं, अकर्त्ता हूं, कुछ नहीं करता। जो कुछ भला बुरा कर्म होता है देहइन्द्रियों मनसे होता है जिस

की ऐसी बुद्धि है सो वह सब लोगों को मारे तो उसको कोई देख नहीं सकता किसी कर्मका उनको बंधन नहीं। अब अर्जुन तीन प्रकार का ज्ञान, तीन प्रकार का कर्म और कर्त्ता भिन्न २ सुन। पहिले सात्विक ज्ञान सुन। जिस ज्ञान से सब भूत प्राणियों में उसको एक ही अविनाशी आत्मा दृष्टि आता है तिसको व्यापक जानकर सब के साथ एकसा हो वैर से दुःख किसीको नदेवे सुखदाई बने यह सात्विक ज्ञान कहाता है, और जब ज्ञान भिन्न २ दृष्टि हुआ जो यह और है, और मैं और हूं। यह तेरा, यह मेरा है। भिन्न २ दृष्टि हुआ सो राजसी ज्ञान

कहाता है, और जिस ज्ञान से सब कोई बुरा दृष्टि आवे और सब के साथ वैर बांधा रहे, सोऐसातामसी ज्ञान कहाता है। अब अर्जुन! कर्म सुन जो इस प्रकार कर्म करे जो यह कर्म करना मुझको योग्य है फल की कुछ वांछा नहीं यह सात्विककर्म कहाता है। जिस कर्म के करनेसेफल की वांछा है और अहंकार केसाथ कहे कि यह कर्म मैंकरता हूं, और जिस कर्म किये से जंजाल बहुत होवे सो ऐसा कर्म राजसी कहावे है जिस कर्म में कोई बंधन बांधना किसी जीव को दुखाना; किसीका घात करना, और ऐसा कर्म करने से अपना बल और बड़ाई दिखाना, इस प्रकार

माया का मोहिया कर्मका आरम्भ करेसो तामसी कहवे है, अब कर्म कर्त्ता सुन। जो इस प्रकार कर्म करे, यज्ञ महोत्सव,होम,श्राद्ध व्याह इत्यादि और जो सत्य कर्म हैं। किनको करे फल कुछ वांछे नहीं अहंकार से राहित कि मेरा कुछ नहीं सब कुछ परमेश्वर का है और उद्यम से रहित जो कुछ सहज हो सोहो और यह भी नहीं जो अमुक कार्यमेरा संपूर्ण हो तब मेरा संतोष है।जो कुछ कार्य बिगड़े तो कलपे नहीं जो कुछ कार्य संपूर्ण हो तो प्रसन्न न होबैठे। वह क्या समझे मेरा कुछ नहीं सब कुछ ईश्वर का है। हर्षशोकसे राहित हो जो कुछ ईश्वर इच्छा से आय

मिले सो भोजन करे। इस प्रकार सात्विक कर्ता कहावे अब राजसी कर्त्ता सुन। जीवों के दुःखाने में तिसका स्वभाव, और अपवित्रता, हर्ष शोक कर संयुक्त जो यज्ञ किये तिसके फल पाने की कामना मन में करे कि लोग मुझको धन्य कहेंगे। इस निमित्त हर्ष होना गृह से जो द्रव्य व्यय होता है इस कारण से शोक है यह राजसी कर्त्ता कहावे है। अब तामसी कर्त्ता सुन। शास्त्र की विधि को समझे नहीं, यह महोत्सव किस विधि कीजै किसी को मस्तकनिवावे नहीं, महामूढ़ मूर्खआलसी विषादी सब किसी साथ लड़ाई करे और ढ़िलर यह तामसी कर्त्ता है।

अब हे अर्जुन ! तीन प्रकारकी बुद्धि सुन । तीन प्रकारकी दृढ़ता भिन्न २ सुन जिस बुद्धि से गृहस्थमें भी सुखी रहे । भले कार्य को भला जाने, बुरे कार्य को बुरा जाने और यह भी समझे इस बात से मुझको मुक्ति तथा इससे बंधन है । जिस बुद्धि से यह बात समझे सो सात्विक बुद्धि है और जिस बुद्धि से धर्म को अधर्म जाने बुरे को भला जाने और की और समझे यह राजसी बुद्धि के लक्षण कहिये । जिस बुद्धि कर धर्मको अधर्मजाने कौन अधर्म जीव घात करने से पुण्य जानकर, यह बकरा मैं मारता हूं पुण्य होगा इत्यादिक और बातें समझे ऐसे धर्म को

अधर्म उलटे समझे सो तामसी बुद्धि कहावे है। अब दृढ़ता सुन मन किसी विकार को न चितवे और इन्द्रियां सब वश होवें। केवल एक प्रभुकी शरण जब यह वार्त्ता हो तब सात्विकी दृढ़ता जान और जब मन अपने धर्म में सर्व प्रकार दृढ़ द्रव्य के कमाने में दृढ़ खाने पहरने में दृढ़ता हो। तब राजसी दृढ़ता तू जान। और जब महा घोर निद्रा में सो रहे और परम चिन्ता में मग्न और किसी से कलह विषाद यह तीनों लक्षण तामसी दृढ़ता के हैं। अब ऐसी दुर्बुद्धि से रंगे हैं निद्रा कलह चिन्ता यह तीनों विकारों से आप को मुक्ति नहीं कर सकते तिन की

तामसी दृढ़ता जान। हे भारत वंशी अर्जुन! अब तीन प्रकार का सुख सुन जो मुख कड़वा खावे नहीं, मिष्ट सुखदायक अमृत तुल्य भोजन करे, प्रथम तप कष्ट साधकर तब राज्य, स्वर्ग फल पावे यह सात्विकी सुख कहावे है। अब राजसी सुख सुन इन्द्रियों का अधिकार प्रथम सुखको पाकर पीछे विषफल खाए यह राजसी कहावे है। तुच्छ फल यह चारों। अब तामसीसुख सुन प्रथमबेसुरतनिद्रामें आलस्य असावधानता प्रभुका विसारना एक कुशल घृतके मथनमें सबसे निपट शंका अब अर्जुन और सुन। स्वर्ग से लेकरपृथिवीतले पाताल लोक, नागलोग तक तीनों लोक

माया से उपजे हैं। इन तीनों लोकों में माया के तीन गुण वरते हैं। इन तीन ही गुणों के स्वभाव में लोग वर्ते हैं। लोकों में गुण हैं गुणों विषे लोक हैं। इसी कारण त्रिगुणमई सृष्टि कही है। अर्जुन! अब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णों के स्वभाव की प्रक्रिया सुन। स्वभावकी प्रक्रिया कहिये जो साथ ही ले जन्मीये। प्रथम ब्राह्मण के स्वभाव की प्रक्रिया कहते हैं। इन्द्रियों को जीतना, मन जीतन, तप करना, भजन करना, पवित्रता, क्षमा कोमलस्वभाव, ज्ञान अपना और विज्ञापन परमेश्वर का यह जानना और गोविंद में तत्व बुद्धि जो परमेश्वर है। यह ब्राह्मण के स्वभावक धर्म कहे।

४३. अब क्षत्रिय के स्वभावके धर्मसुन । शूर, तेजस्वी, राजा,
भाषा युद्ध से भागे नहीं बुद्धिमान, कुछ दानी आपको ईश्वर
भ० गी० ठाकुर महंत न जानना परमेश्वर ईश्वरमें श्रद्धा यह क्षत्रिय
अध्या १८ के स्वभाव लक्षण कहे । अब वैश्य के स्वभाव के धर्म
सुन । खेती करनी वनज व्यापार गौओं की सेवा यह वैश्य
स्वभाव के धर्म हैं । अब शूद्र के सुन । तीनों ही वर्णों
की सेवा करनी, जो प्राप्ति हो तिस में संतोष यह शूद्र
स्वभाव के धर्म हैं । यह चारों वर्णों के स्वभाव कहे जो
प्राणी इन अपने २ कर्मों के करने से स्वभाविकही भली
सिद्धि को पाता है । अपने २ कर्मों में दृढ़ हुए से जो फल

उपजे। सो क्या कहिये पारब्रह्म सारी सृष्टिका जो कर्त्ता सर्व में रमा हुआ, अविनाशी तिसको प्राप्त होवेंगे। हे अर्जुन यह चारों वर्ण के जो धर्म कहे हैं, इन में सब को अपने अपने धर्म्म ने कल्याण करना है। अपना धर्म तुच्छ देखे, दुसरा धर्म बड़ा देखे तब भी अपने धर्म ने इसको कल्याण देनी है पराया धर्म इसकी सहायता न करेगा अपने २ धर्म करने से पाप नहीं अपना धर्म मुक्ति भक्ति का दाता है यह चार वर्णोंके धर्म कहे हैं। अब तीनों के लक्षण सुन। हे अर्जुन। मेरा भजन करने से चारों अवगुण काटे जाते हैं सहज पदको प्राप्त

होताहै। इसको चौथा पद कहते हैं, जिसको सहज पद, तुरीयपद भी और सत्पदभी इसीको कहतेहैं जोप्राणी इस पदको प्राप्त होतेहैं उनको किसी कर्मत्यागनेका दुःख नहीं। और जो सत्यपद को पाकर किसी कर्मका आरम्भ करे तिसको बड़ा दोषहै तिस पर दृष्टांत सुन जैसे धुएंसे रहित निर्मल अग्नि जलती है, तिस निर्मल अग्नि में धुएं-वाली लकड़ी डालदें, तब वह निर्मल अग्नि को बिगाड़ देती है, तैसेही चौथे पदवालेको कर्म आरंभ भी करना दोष है। कर्म का आरम्भ करना सत्यपद को बिगाड़ देता है, इस कारण जो तुरीयपद में लीन हुआ है। तिसको

कामना को आरम्भ करना कुछ नहीं रहा। अब जो प्राणी चौथे पद में लीन हुआ है तिसके लक्षण सुन। मुख्य लक्षण तो किसी साथ मोह ममता नहीं, संसार के विषयों से अपना मन जीत रखा है। किसी वस्तु की इच्छा नहीं क्यों कामना नहीं ? सुन। वह निष्कर्मी सिद्ध जो है, संसार का माथा जो संन्यास के माथे में जा प्राप्त हुआ है तिस सुख के समान और कोई सुख नहीं, इसी कारण से तिसको कोई बांछा नहीं, सो वह किस सिद्धि को प्राप्त हुआ है। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन ! वह मेरे जानने के ज्ञान को पूर्णता प्राप्त हुआ है। तिसकी

बुद्धि निर्मल हुई और महेश्वर पारब्रह्म विषे तिसका दृढ़ निश्चय हुआ है और संसारी लोगों की बात नहीं सुनता और न आप किसी से बात करता है। न किसी साथ प्रीति है न शत्रुता है। एकान्तवासी, मेरे स्मरण के सुख को पाकर पूर्ण होरहा है। संसार में जिसने तीन ही बातें जीत रखी है। कौन तीन बातें, सो सुन देह कर संसारी मनुष्यों का संग नहीं करता। जिह्वा कर बात नहीं करता। मन कर संसारी लोगों की चितवना नहीं इस प्रकार मन, देह, मनसा जिह्वा यह जीत रखी है और नित्य निरन्तर मेरे ध्यानसाथ जुड़ा हुआहै। सारे संसार

से वैराग्यवान है। कैसा वैरागी ऊपर ब्रह्म के लोक, तले शेषनाग के लोक तिन के जो परम सुख है तिनको तृण समान जाने है। इसका नाम वैराग्य है। फिर कैसा अहंकार बल गर्व, काम क्रोध इनका त्यागी, इन में रमता नहीं और भोजन छादन से कुछ अधिक रखता नहीं, इसका नाम त्याग है। जिन छै ही विकार त्यागे और किसी वस्तु साथ ममता मोह नहीं जो अमुक वस्तु मेरी है ऐसा जो सत्य पुरुष है सो जीता हुआ देह साथ होते भी मुक्त है। फिर वह कैसा हुआ, ब्रह्मभूत क्या कहिये माया के तीन गुण सो काटे गए। जब तीन गुण काटे तब जैसा आत्मा ब्रह्म था

तैसा ब्रह्म का ब्रह्म ही हुआ। इस कारण से तिसको ब्रह्म भूत ही कहिये। जब ब्रह्मभूत हुआ तब तिसका आत्मा परम प्रसन्न हुआ तब कुछ गई वस्तु की चिंता न करे, अनहोई वस्तु के आने की वांछा न करे। सब भूत प्राणियों साथ समता दृष्टि यह लक्षण तुरीयपद के सम हैं जब तुरीयपद में मनुष्य आवे है तब मेरी भक्तिको तुरंत ही पावे है। मेरी भक्ति यह है जो मेरी महिमा का प्रताप जानना सो मेरा भक्त कैसा है तुरीयपद में लीन हुआ क्या ब्रह्मज्ञान का प्रकाश हुआ सो भक्त प्रभु को जाने प्रताप प्रभुका सकल जाने बड़ाई महत्वताकीयथाविधि विचार इसकोजाने आगे

और महात्म्य नहीं। तिस महिमा का जानना ही परम भक्ति है। सो एक क्षण २ पल २ राम नाम को सिमरे हे अर्जुन जिन मेरी महिमा के ज्ञानरूप अमृत को पान किया सो जब लग मनुष्य देह में बसे, तब लग परम शांति सुख तिस में मग्न है। जब देह त्यागे तब भी मेरे परमानिध अविनाशी पद में जा लीन होता है। यह चौथे पद तुरीय शांतिपद के लक्षण कहे, जिसको मेरे भजनरूप अमृत का स्वाद आया है और साथ ही माया की प्रकृति करे है, सो मेरी कृपासे मेरे पदको प्राप्त होता है। इसी कारण से हे अर्जुन! तू मनका निश्चल चेता मेरे में राख मुझ

साथ ही प्रीति कर, बुद्धि का निश्चल चेता मेरे में रखने से संसार के दुःखों से तर जावेगा, और जो अपने अहंकार के लिये मेरी आज्ञा न मानेगा, तब तेरा विनाश होजायगा। जो तू अहंकार के लिये कहे जो मैं युद्ध नहीं करता सो तेरा कहना झूठ है। क्यों जैसी तेरी प्रकृति है तैसा तुझ से होरहा है। हे कुन्तीनन्दन अर्जुन! जैसे २ स्वभाव के देहधारी उपजे हैं सो सब स्वभावके बन्धन मे बंधे हुए हैं। सब लोक स्वभाव केवश है, स्वभाव किसी के वश नहीं। जो तू कुटुम्ब का मोहिया कहे, जो मैं युद्ध नहीं करता तो क्षत्रिय का स्वभाव तुझे अवश्य युद्ध

करावेगा। हे अर्जुन! एक ईश्वर का स्वरूप भूत प्राणियों में वसे है। सो अवश्य कर जीवों को माया मोह के यन्त्र पर ही बैठा कर सब को भ्रमाता है। तिस कारण सब भावों कर तू ईश्वर की शरण जा। परमशान्ति जो कल्याण पुरातन स्थानता को प्राप्तहोवेगा। हे अर्जुन! यह गुह्य से गुह्य परम गुह्य ज्ञान मैंने तेरे प्रति कहा है, और जितने मार्ग मेरे पाने के है सो सब तेरे प्रति कहे हैं। हे अर्जुन सारी गीता में से मेरा यह गुह्य वचन है सो तू मेरा परम मित्र है तेरी मति बुद्धि मेरे चरणों के साथ दृढ़ है। इस कारण मे तेरे कल्याण निमित्त मैं कहता हूं। हे अर्जुन

सब भजनोंमें मुझको यह भजन रुचे है। जब, इस भजन में दृढ़ होगा तब सब भक्तों से मुझे प्यारा लगेगा, सब भजनों को त्याग कर मेरी ही शरण आ। सो मैं तुझको सब पापों से मुक्त करूंगा। तू चिन्ता मत कर। हे अर्जुन ! यह ज्ञान जो मैंने तुझको कहा है सो तूने ऐसे लोगों को नहीं सुनाना जो मेरी भक्ति से विमुख हैं। जिसको सुनने की श्रद्धा न हो और जो मेरा गुह्य ज्ञान मेरे भक्त को सुनावेगा तिस पुरुष ने मेरी भक्ति की है। ऐसा कोई दूसरा पुरुष मेरे प्रसन्न करने को नहीं है ऐसा प्राणी न पीछे कोई हुआ, न आगे होगा, वह मुझको अति प्यारा है। जिसने

मेरे भक्त को गीता का ज्ञान श्रवण करायाहै, उस को बहुत फल प्राप्त होगा और जो कोई इस गीता जी के एक श्लोक का भी पाठ करेगा तिसका फल सुन। सर्व यज्ञों में श्रेष्ठ जो ज्ञान यज्ञ है तिसका फल देता हूं, और तिस पाठ कर्त्ता के निकट जा खड़ा होता हूं। जैसे कोई किसी का नाम लेकर बुलाये तब वह तत्काल बोलता है तैसे ही गीता के पाठ करने हारे के निकट मैं जा खड़ा होता हूं। और जो अर्थकर सुनावे तिसकी महिमा बड़ाई कुछ कही नहीं जाती, जैसे मेरी महिमा और बड़ाई वचनों से अगोचर है, तैसे गीता के अर्थ करनहारे की महिमा वचनों से अगोचर है

और सुननेहारा इसको सत्य २ मानकर श्रवण करे वह भी जन्म मरण के बंधनों से मुक्त होकर परमानंद अविनाशी पदको पावेगा। इससे हे अर्जुन! यह ज्ञान तैंने एकाग्र चित्त होकर श्रवण किया है सो तेरे विषे जो अज्ञान मोह था सो नाश हुआ। श्रीकृष्णजी के वचन सुनकर अर्जुन बोला हे अच्युत अविनाशी पुरुषजी! हे भगवन्! तुम्हारी कृपा से मेरे मोह का नाश हुआ और ज्ञान भी पाया मेरी बुद्धि भी निर्मलहुईमेरे मनके जो संदेहथे तिनकाभी नाशहुआ और आपके मुख कमल से युद्ध करने की आज्ञा हुई है, सो मैं युद्ध करता हूं संजय उवाच–संजयराजाधृतराष्ट्रकोकहता

है। हे राजन् वासुदेव श्रीकृष्ण भगवानजी और पार्थक अर्जुन इन दोनों का संवाद गोष्ठ गीता का महात्म्यसुन समझ कर मेरे रोम खड़े हो गये हैं। जो व्यास जीने मुझे दिव्य दृष्टि दी है सो तिनकी कृपा से यह ज्ञान गोष्ठ मैंने सुनी है। सो यह गुह्य से भी गुह्य है। जो ईश्वर के ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान और अर्जुन तिनके मुख कमल से जो ज्ञान निकला है तिसको विचार विचार कर परम हर्ष को प्राप्त हुआ हूं, और विश्वरूप जो श्रीभगवान् जीने अर्जुन को दिखाया है, तिसको विचार विचार कर परम हर्ष और विस्मय को प्राप्त हुआ हूं हे राजन्! मेरे निश्चय की

बात सुन जिस ओर योगीश्वरोंके ईश्वर श्रीकृष्णजी और गांडीव धानुषधारी अर्जुन हैं सो तिस ओर लक्ष्मी है तिस ही की जय होगी मेरी मति यही हैं तू यही निश्चय कर जान जिनके पक्ष पर श्रीकृष्ण जी हैं सो ऐसे परम भागवान् पांडवों की जय होगी। पांडव जीतेंगे, और तेरे अधर्मी पुत्र हारेंगे, यह निश्चय जान। इति श्रीभगवद् गीता सुब्रह्मविद्या योगशास्त्रे श्रीकृष्ण अर्जुन संवादे सर्व शास्त्रे निर्णय मोक्ष योगो नाम अष्टादशो अध्यायः।

* अथ अठारवें अध्याय का महात्म्य *

श्रीनारायणोवाच–हे लक्ष्मी! अठारवें अध्याय का

महात्म्य सुन जैसे सब नदियों में गंगाजी श्रेष्ठ है देवताओं में हरि श्रेष्ठ है, सब तीर्थों में पुष्करराज श्रेष्ठ है, सब पर्वतों में कैलाश पर्वत श्रेष्ठ है, सब ऋषियों में नारद श्रेष्ठ है सब गऊओं में कपिला कामधेनु गौ श्रेष्ठ है । तैसे सब अध्यायों में गीता का अठारवां अध्याय श्रेष्ठ है। तिसका फल सुन। सुमेरु पर्वत पर देवतालोक में इन्द्र अपनी सभा लगाए बैठा था, उरवशी नृत्य करती थी बड़ी प्रसन्नता में बैठेथे, इतनेमें एक चतुरभुज रूपधारके पारषदलाये इन्द्र को सब देवता के सामने कहा तू उठ इसको बैठनेदे। यह सुन कर इन्द्र ने प्रणाम किया, उस तेजस्वी को बिठा दिया

इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पति को पूछा गुरुजी! तुम त्रिकालदर्शी हो, देखो इसने कौन पुण्य, किया है जिस से यह इन्द्रासन का अधिकारी हुआ है, मेरे जानने में इन्होंने कोई पुण्य, तालाब ब्रत, यज्ञ, दान कोई नहीं किया। विश्वेश्वर ठाकुर मन्दिर नहीं बनाया तालाब और कूप नहीं लगाया, किसी को अभयदान नहीं दिया, बृहस्पति जी ने कहा चलो नारायण जी से पूछें, तब राजा इन्द्र बृहस्पति, ब्रह्मादिक सब देवता श्रीनारायणजीके पास गये, जाकर दण्डवत कर प्रार्थना पूर्वक कहा, हे स्वामिन्! दास सहायक, भक्त रक्षक आप के चार पारषद एक चतुर्भुज

तेजस्वी स्वरूप को लाकर मुझको इन्द्रासन से उठा उस को बैठा दिया है मैं नहीं जानता उसने कौन पुण्य किया है, मैंने कई अश्वमेध यज्ञ किये हैं तब मुझे इन्द्रासन का अधिकारी आपने किया है, इसने एक यज्ञ भी नहीं किया यह मुझे बड़ा आश्चर्य्य है, तब श्रीनारायणजी ने कहा, हे राजेन्द्र ! तू मत डर, अपना राज्य कर इसने बड़ा गुह्य उत्तम पुण्य किया है इसका नियम था कि नित्य प्रति स्नान कर श्रीगीताजी के १८ वें अध्याय का पाठ किया करता था, इसके मन भोगों की तृष्णा रही थी, जब इसने देह छोड़ी तब मैंने आज्ञा करी; हे

पारषदो ! तुम इसको पहले जाकर इन्द्रलोक भोगावो जब इसका मनोर्थ पूरा होय, तो मेरीसायुज्य मुक्ति को पहुंचावो तुम जाकर भोगों की सामग्री इकट्ठी करदो तब इन्द्र और सब देवताओं ने आकर सब वस्तु भोगों की एकत्र कर दीनी और कहा इन्द्रलोक के सुखों को भोगो। कुछ काल इन्द्रपुरी के सुख भुगा कर फिर श्री भगवान की कृपा से सायुज्य मुक्ति देकर वैकुण्ठ का अधिकारी किया श्रीनारायणजी कहे हैं। हे लक्ष्मी ! शिव जी कहे, हे पार्वती यह अठारवें अध्याय का महात्म्य है गंगा, गीता, गायत्री, यह कालियुग में तीनों मुक्ति की

देती हैं ॥ इति श्रीपद्मपुराणे सती ईश्वर संवादे उत्तराखंडे गीता महात्म्यो नाम अष्टादशो अध्यायः ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच—श्री नारायणजी कहे हैं जो ब्राह्मण साधू वैष्णव योगी अठारवें अध्याय का पाठ करते हैं तिनको मैं कई अश्वमेध यज्ञ किये का फल देता हूं, कई कपला गौ दान किये का, असंख चंद्रायणव्रत किये का और भी बड़े २ दानपुण्य का फल देता हूं, जो प्राणी नित्य प्रति श्रीगीताजी का पाठ करते हैं वा प्रीति साथ सुनते हैं हे लक्ष्मी जो पवित्र ठौर में बैठ कर पढ़ते हैं सुनते हैं हरिद्वार की पौड़ियों पर गंगाजी के किनारे पर

४५० तुलसी वा पीपल के पास बैठकर हरि मन्दिर और जहां
भाषा जहां उत्तम ठौर है तहां बैठकर पढ़े तो उस प्राणी को
भ० गी० कलयुग के जितने पाप हैं नहीं लगते और दुःख क्लेश
अध्या१८ आपदा से छूट जायगा। जो प्राणी यह चार साधन करे
गंगा स्नान, गीता, गायत्री, का पाठ, सन्तों की सेवा
गोविन्द का भजन इनके प्रताप से कलयुग के पाप
नहीं व्यापेंगे, इन पर्वों में गीता पाठ करे एकादशी,
अमावस्या, पूर्णमाशी, तो हजार गौ दान किये का फल
होवे पितर पक्ष में पाठ करे तो जितने पितर अधोगत
गये हैं उन सब का उद्धार होगा, वैकुण्ठ वासी होकर

आशीर्वाद करेंगे तिनकी मुक्ति होगी, जो प्राणी सारीगीता
का पाठ करे तो क्या कहिना है एक अध्याय या श्लोक
नित्यपढ़े तो मुक्तिभुगति सब मिलेगी जो श्रोता को सुनावे
तो गौदान किये का फल होगा इस जीवके उद्धारके छै यत्न
हैं गंगास्नान, गीता पाठ, कपल गौकी सेवा, गायत्री पाठ
और तुलसी, पीपलमें जल सिंचना। ज्ञानी संतों की सेवा
करनी एकादशीब्रत। हे लक्ष्मी! सर्व शास्त्रमई गीता सर्व
धर्ममयोदया। सर्व तीर्थमई गंगा सर्व देवमयो हरि। अर्जुन
सुन कर कृतार्थ हुआ चारो वर्णों में जो कोई इसको
पढ़े सुने धारण करेगा सो कृतार्थ होवेगा इसकी अपर

 अपार महिमा है, कहने सुनने से बाहर है मुक्ति
 मुगती की दाती है ॥ १८ ॥

 इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषद्ध सुब्रह्मविद्या योग शास्त्रे सती ईश्वर सम्वादे
गीता महात्म्यो नाम अठारवां अध्याय सम्पूर्णम ॥ १८ ॥

❦ पुस्तक ❦

श्रीमद्भगवद्गीता दोहावली

गो स्वामी तुलसी दासजी कृत

• पूरे अठारह अध्याय दोहिरों में •

जो

रामचन्द्र लोकनाथ मानक टाहले पुस्तकोंवाले

लुहारी दरवाज़ा लाहौर ने शोधकर छपवाई

सम्वत् १९७८ विक्रमी

मरकन टाईल प्रेस लाहौर में ला० दिवानचन्द मालिक के प्रबन्ध से छपी

अथ दोहावली श्रीमद्भगवद्गीता प्रारभ्यते ।

प्रथम अध्यायः ॥ १ ॥

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्मक्षेत्रकुरुक्षेत्रमें, मिलेयुद्धकेसाज ।
सञ्जयमोसुतपांडवन, कन्हिकैसेकाज ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच

पांडवसेनाव्यूहलखि, दुर्योधनढिगआय ।
निजआचारजद्रोणसों, बोलेऐसेभाय ॥ २ ॥
पांडवसेनाअतिबड़ी, आचारजतूदेखि ।
धृष्टद्युम्नतवशिष्यने, व्यूहरच्यौजुविशेखि ॥ ३ ॥
शूरधनुषधारीबड़े, अर्जुनभीमसमान ।

द्रुपदमहारथऔरद्रू, हैविराटयुयुधान ॥ ४ ॥
धृष्टकेतुअरुकाशिपति, चेकितान बलवंत ।
कुन्तिभोजअरुसैन्यपाति, पुरुजितशत्रुनिकंत ॥ ५ ॥
युधामन्युअरुविक्रमी, उतमौजारणधीर ।
द्रौपदिसुतअभिमन्युये, महारथीबलवीर ॥ ६ ॥
मोसेनामेंजेबड़े, तेसुनियोद्विजराज ।
नीकेजानौंतुमतिन्हैं, खेरयुद्धकेकाज ॥ ७ ॥
तुम अरुभीषमकर्णकृप, जिनजीतेसंग्राम ।
भूरिश्रवाविकर्णअरु, अश्वत्थामानाम ॥ ८ ॥
औरौबहुतेशूरमा, मोलगि तजैजुप्रान ।
भाँतिभाँतिआयुधलिये, सबैयुद्धबलवान ॥ ९ ॥

मोसेनाअसमर्थ है, भीषमराखततहि ।
परसेनासामर्थ्ययुत शासनभीमजुवाहि ॥ १० ॥
आसपासमोव्यूहके, तुमसबठाढ़ेहु ।
भीषमकीरच्छाकरहु, करिकेमनमेंकोहु ॥ ११ ॥
दुर्योधनकेहर्षको, भीष्मजुचितमेंवाइ ।
सिंहनादउच्चैकियो, दुःसहशंखबजाइ ॥ १२ ॥
तवैशंखभेरीपणव, आनकगोमुखभूरि ।
ताहीछिन बाजतभए, बड़ोशब्दभरिपूरि ॥ १३ ॥
श्वेतवरणघोड़ालगे, दीरघरथहिबनाय ।
हरिअर्जुनतापरचढ़े, हरषेशंखबजाय ॥ १४ ॥
देवदत्तअर्जुनालियो, पांचजन्ययदुराय ।

भीमभयानकभयदिये पौंडूशंखबजवाय ॥ १५ ॥
नृपातियुधिष्ठिरनेकियो, अमितविजयकोघोष ।
लयेनकुलसहदेवजे, मणिपुष्पकसुरघोष ॥ १६ ॥
तहांधनुर्द्धरकाशिपति, रथीशिखंडीजानि ।
धृष्टद्युम्नवैराटअति, बलीसात्यकीमानि ॥ १७ ॥
द्रुपदद्रौपदीसुतसबै, औरसुभद्रापूत ।
इनसबअपनेशंखले, धुनिकीनीतासूत ॥ १८ ॥
फटोहृदयकौरवनको, शब्दसुन्योताबार ।
भूमीअरुआकाशमें, पूरिरह्योगुंजार ॥ १९ ॥
देखसुतधृतराष्ट्रके, अर्जुनधनुषसँवार ।
कपिवरताकीध्वजलसै, शस्त्रनिधरतनिहार ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच

अर्जुनकहीजुकृष्णसों, मेरेचितजयजीत।
दुहुंसेनाकेमाँहिंरथ, ठाढ़ोकरियेमीत ॥ २१ ॥
जबलागिदेखौंहौंनहीं, बड़ेयुद्धकेदाय।
कौनकौनसोंहौंलरौं, यारणमेंसमपाय ॥ २२ ॥
युद्धकरणयोधाजित, आयेहैंसजिसाज।
दुर्बुद्धी कौरवनको, भलोकरनकेकाज ॥ २३ ॥

सञ्जय उवाच

ऐसेहैं श्रीकृष्णजी, सुनिअर्जुनकीबात।
दोउसेनामांभरथ; लैराख्योताघात ॥ २४ ॥
भीषमद्रोणहिआदिदै; नृपजुहुतेताठौर।

अर्जुनसोंबोलतभये, देखिकौरवनओर ॥ २५ ॥
अर्जुनतेदेखेसबै, पितापितामहभाई ।
गुरुमामाभैयासखा सुतनातीकेदाइ ॥ २६ ॥
श्वशुरसुहृदबांधवसकल, दोऊसेनामाँह ।
तिन्हैंदेखिकरुणाभई, तबबोलेनरनाँह ॥ २७ ॥

अर्जुन उवाच

देखेमैंसबबंधुये, कृष्णयुद्धकेदाय ।
मोमुखसूखतजातहै, अंगअंगशिथिलाय ॥ २८ ॥
रोमहर्षहैदेहमें, औरकंपबहुभाय ।
धनुषगिरतमोहाथते, त्वचातपनिअधिकाइ ॥ २९ ॥
ठाढोहै हौं नहीं सकत, भ्रमतजुमोमनमीत ।

केशवअशकुनदेखियत, कैसीहै यहरीत ॥ ३० ॥
स्वजनहनत संग्राममें, देखौं नाहिं कल्याण ।
विजय न चाहौं कृष्णजू, नहिंचाहौं सुखमान ॥ ३१ ॥
वृथा भोग गोविन्दजू, जीवन अरु सुखराज ।
राज्यभोग आनन्दपुनि, करियत किनके काज । ॥ ३२ ॥
ते असुधन को त्यागिके, आये सब संग्राम ।
तात अचारज पुत्र अरु, पितामहा सुखधाम ॥ ३३ ॥
सम्बन्धी मातुल श्वशुर, सारनातिअवरेषि ।
येमारैंमोकोयदपि, हौंनहिंहनौंविशेषि ३४ ॥
राज्यतजौंतिहुँलोकको, हैकितेकयहभूमि ।
सुतनहनौंधृतराष्ट्रके, कतसुखरहिहौंभूमि ॥ ३५ ।

४६०

पापहोइइनकेहने, यद्यपिलियेहथयार ।

प्रत्यय तातेयेहनियेनहीं, बंधुसहितनिर्धार ॥ ३६ ॥

पहिला कृष्णासुजनकोमारिके, सुखलहियेकिहिनाइ ।

एजुलुभायेलोभसों, तेदेखैयहचाइ ॥ ३७ ॥

कुलक्षयकीन्हेंदोषजे, और मित्रकोद्रोह ।

जानिबूझियापापको, किहिविधिकीजकोह । ३८ ॥

कुलक्षयकीन्हेंकुलधरम; जातजुसबैनशाय ।

धर्मनशेसबकुलनशैं; होहिअधर्मसुभाय ॥ ३९ ॥

कृष्णअधर्महिकेबढ़े; दुखितहोहिंकुलनारि ।

होहिंवर्णसंकरतबहि; त्रियादोषनिरधारि ॥ ४० ॥

नरकपरेसंकरभये; कुलघातीजलोय ।

पतितहोंहिंतिनकेपितर पिंडदेइनाहिंकोय ॥ ४१ ॥
कुलहिंवर्णसंकरभए डारतदोषबड़ाय ।
जातिधर्मकुलधर्मते तेईदेतनशाय ॥ ४२ ॥
कुलधर्मनकेनाशते निःसंशययहहोइ ।
सदानरकमेंतेरहैं कहतजुयोंसबकोइ ॥ ४३ ॥
बड़ेपापकेकरनको निश्चयाकियोविचार ।
चितमें आनोराजसुख हनकुटुम्बनिरधार ॥ ४४ ॥
करमेंलैहाथियारये आवैमोसमुहाइ ।
मोहिंहनैंजोसहजही मानिलेहुंसुखभाइ ॥ ४५ ॥

सञ्जय उवाच

ऐसेकहि अर्जुनतबै, बैठिगयेरथमाहिं ।
करतेडारतशरधनुष, शोकबढ़तमनमाहिं ॥ ४६ ॥

अथ द्वितीय अध्यायः ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच

लेउसांसऑंसुवाभरे अर्जुनकरुणाभाय ।
बहुविषादसंयुक्तलखि बोलेश्रीयदुराय ॥ १ ॥

श्री भगवानुवाच

अर्जुनयासंग्राममें क्यादुखपायोमीत ।
कीरतिअरुस्वर्गहिहरैं कायरज्योंभयभीत ॥ २ ॥
कायरतातूजनिकरे यहतोकोंनहिंयोग ।
छांड़िकचाईहीयकी देशत्रुनकोरोग ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच

हरिजूयासंग्राममें हैंभीष्मअरुद्रोण ।

पूजौंकैशरसोंहनौं मोसोंकहियेसोन ॥ ४ ॥
भीखमांगिवरुखाइये गुरुहानिवोजुत्र्प्रनीति ।
गुरुहिमारिभोगीकरै भषाजिजुलोहूरीति ॥ ५ ॥
त्र्प्रहौजुहमनहिंजानहीं हारिभलीकैजीत ।
जिनाहिंमारिहिमनाजिये तेएटाढ़ेमीत ॥ ६ ॥
धर्ममांझहौं मूढ़हौं पूछतकृष्णस्वभाइ ।
शिष्यतुम्हारीशरणहैं दीजियुक्तिवताइ ॥ ७ ॥
भूमिलोकसुरलोककों लहौंत्र्प्रकंटकराज ।
इंद्रियशोखैहीयको जाइनशोकसमाज ॥ ८ ॥
ऐसेकहिश्रीकृष्णसों त्र्प्रर्जुनताहीबार ।
युद्धनहींहारिजूकरौं कीजौयहनिर्धार ॥ ६ ॥

अं० २
दोहा १०
गीता

दोऊसेनामध्यजो अर्जुनकियोविषाद।
क्रियावंतह्वैकृष्णजू कीन्होंवचनप्रसाद ॥ १० ॥

श्री भगवानुवाच

शोचअशोचीक्योंकरत, कहतज्ञानकीबात।
शोच न पंडितकरतहैं, जीवनउपजतजात ॥ ११ ॥
हमतुमअरुनरराजयह, इनकोनाशनहोय।
तिहूंकालमेंथिररहैं, ऐसेसबकोजोय ॥ १२ ॥
बालयुवाअरुवृद्धता, यादेहीमेंहोत।
तैसेदेहांतरलहै, धीरनमोहनहोत ॥ १३ ॥
अर्जुनइंद्रियवृत्तिमिलि, विषयजुसुखदुखदेत।
सबैजानिनहिंथिररहै, महितिनकोयाहेत ॥ १४ ॥

जाकेविथानहोयकछु,सुखदुखगनैसमान ।
यहैधीरमुक्तिहिलहै, बातयहहैपरमान ॥ १५ ॥
जोहैसोविनशैनहीं, जोविनशैसोनाहिं ।
जोइनतत्त्वनकोलखै, गनियेज्ञानीमाहिं ॥ १६ ॥
जासोंजगयहहैभरयो, सोअविनाशीजान ।
जाहिविनाशिनकोसकै, ताहिआतमामानि ॥ १७ ॥
अंतवंतसबदेहहैं, जीवरहतहैनित्त ।
अविनाशीवहकहतहै, युद्धकरोकिनिमित्त ॥ १८ ॥
जोयाकोहंतागिनै, हन्योकहतहैकोइ ।
यहनमरैरमारैनहीं, अज्ञानीवहदोइ ॥ १९ ॥
यउनमरैउपजैनहीं, भयोन[illegible]होय ।

अजरपुरातन नित्यहै, मारेमरैनसोइ ॥ २० ॥
जोजानतहैआत्मा, अजरअविनाशीनित्त ।
सोनरमारकौनको, ताहिहतैकोमित्त ॥ २१ ॥
जैसेपटजीरणतजै, पहिरतनरजुनवीन ।
देहपुरातनजीवताजि, नयोगहैपरवीन ॥ २२ ॥
यहनकटैहथियारसों, पावक सकैनजारि ।
भिजैसकैजलनाहिंनै, सोखिसकैनबयारि ॥ २३ ॥
कटैजरैसूखैनहीं, औरनभिजवनयोग ।
निरजनहैसबठौरथिर. अविनाशीविनरोग ॥ २४ ॥
प्रगटनहींजुअचिंतहैं, अविनाशीतूजानि ।
ऐसोयाकोजानिकै, शोकलेशजनिमानि ॥ २५ ॥

जोउपजैविनशैस्वई, मरैसुउपजैआइ। ४६७
होनहारसोहोतहै, तहांनशोचबढ़ाइ ॥ २६ ॥ दोहाव०
पाछेजाहिनजानिये, आगेपरैनजानि। गीता
मांझहियहकछुदेखिये, ताकोशोचनमानि ॥ २७ ॥
जोयाकोदेखिकहैं, सोऊअचरजभाइ।
सुनै अचंभवसोलगै, यहजान्योनहिंजाइ ॥२८॥
जीवनमारयोजातहै, बसतसबनकीदेह।
तातेशोचनकीजिये, करिकाहूसोंनेह ॥ २९ ॥
अपनोधर्मविचारितू जनिछाँड़ेसंग्राम।
धर्मयुद्धतक्षत्रियहि, औरनकछुअभिराम ॥ ३० ॥
अपनीइच्छातेलह्यो, खुल्योस्वर्ग कोद्वार।

भाग्यवंतक्षत्रियलहैं, ऐसोरणयाबार ॥ ३१ ॥
औरधर्मसंग्रामको, जोतूकरिहैनाहिं ।
तजिकीरतिअरुधर्मको, परिहैपापनिमाहिं ॥ ३२ ॥
सबैहिलोककहिहैंअबै, तेरोअयशबढ़ाइ ।
अयशप्रतिष्ठावंतको, मरनहुँतेअधिकाइ ॥ ३३ ॥
भयतेअर्जुनरणतज्यो, योंकहिहैंयेवीर ।
तोहिंबहुतकरिमानते, अबलघुह्वैहौधीर ॥ ३४ ॥
तेरेप्रतिसबकहहिंगे, जे अनिकहिनीबात ।
निजघटिआईकेसुने, बहुदुखलागततात ॥ ३५ ॥
लरत मरै लहि है स्वर्ग, जीतै भूमी भोग ।
उठि अर्जुन तूं युद्ध कर, यहै जु तोको योग ॥ ३६ ॥

लाभहानिअरुदुःखसुख, जीतहारिसमजानि ।
तातेअर्जुनयुद्धकरि, पापलेहुजनिमानि ॥ ३७ ॥
सांख्यबुद्धितोसोंकहौं, कहतयोगबुधितोहि ।
ताबुधिकेसंयोगते, रहेनकर्मनिमोहि ॥ ३८ ॥
करम करै विनकामना, ताको होय न नास ।
अलप किये हू धर्म्म यह काटत भय को भास ॥ ३९ ॥
बुद्धि निश्चयवन्त की, एकै है तू जानि ।
जिनको निश्चय नाहिं है, तिने नीच बुद्धि मानि ॥ ४० ॥
वेदहि मानति स्वर्गफल, ते अज्ञानी लोय ।
कहतजुइत कछु अवरनहिं, तिन महि ज्ञान न होय ॥ ४१ ॥
स्वर्गलाभकी कामना, रहत जो तिनके चित्त ।

लोग बड़ाई के लिये, करत क्रिया सो नित्त ॥ ४२ ॥
भोग बड़ाई कामना, तिनको मन हर लेत।
निश्चय करि ते बुद्धि को, नहि समाधि में देत ॥ ४३ ॥
त्रिगुण करम को कहत हैं, वेद जु सुन तू मित्त।
धीरज धर सुख दुःख सहत, योगक्षेम भय चित्त ॥ ४४ ॥
बापीहुं और कूपते, सरत जो एकहिकाम।
तैसे जानो वेद को, लहत ब्रह्म को साज ॥ ४५ ॥
तो अधिकारजु करम में, नाहिं फलत सों हेत।
करम फलन को छोड़दे, करो काम गहि चेत ॥ ४६ ॥
योग स्थिति होय कर्म करि; सबै संग को त्याग।
सिद्धि असिद्धि समान गिनि, यहै योग अनुराग ॥ ४७ ॥

बुद्धि योग से करम को, अर्जुन तू घटि जान।
शरन होय तू बुद्धि की, दीन कामना जान ॥ ४८ ॥
बुद्धि जुगति दोऊ तजत, कहां पुण्य कहां पाप।
योग करम ते चातुरी, सोई तू करि आप ॥ ४९ ॥
चाहत नहिं जो करम फल, ते पण्डित बड़ भाग।
करम बन्ध को छोड़ के; लहत मुकति अनुराग ॥ ५० ॥
मोह सघनता जे तजै, अर्जुन तेरी बुद्धि।
तब पावें वैराग्य को; चित्त करें जे शुद्धि ॥ ५१ ॥
तेरी बुद्धि वैराग्य में, स्थिर हूं रहे जे मित्त।
तब समाधि सों योग लहि. होकर निश्चल चित्त ॥ ५२ ॥
अर्जुन उवाच–जाकीबुद्धिनिश्चलसदा, ताके चिन्ह बताय।

कैसेबोलतक्यों रहत, चलताजिहैं किहिं भाय ॥ ५३ ॥

श्रीभगवानुवाच—जो हैं मनकी कामना, तिनको तजैजु कोय ।
आत्मसो सन्तोष गहि, निश्चलबुद्धिसु होय ॥ ५४ ॥

दुःख को ताजि भाजै नहीं, सुख चाहै नाहिं चित्त ।
तजै नेह और क्रोध भय, निश्चल बुद्धि सुमित्त ॥ ५५ ॥
नेह न काहू सों करे, बुरे भले की चाहि ।
भले बुरे सों काज नाहिं, स्थिर बुद्धि लखि ताहि ॥ ५६ ॥
ज्यों कछुआ निज अङ्गको, खैंच आप में लेत ।
तैसे खैंच इन्द्रियनको, ताजि विषियनसों हेत ॥ ५७ ॥
विषय करत हैं दूर सों; तज तज तज आहार ।
आतम देखे जात हैं; अभिलाषा निरधार ॥ ५८ ॥

ज्ञानवन्तजे पुरुष हैं; तजत कठिनता साध ।
इन्द्रि अति बलवन्त हैं; तेऊ लगावत व्याध ॥ ५९ ॥
तातें रोके इन्द्रियन; मो में चित्त को लाय ।
बसि कीनी जिन यह सभी, सो स्थिर बुद्धि कहाय ॥ ६० ॥
जब ध्यावत है विषयको; जितने उपजत संग ।
काम जो उपजत संगते; ताते क्रोध अभंग ॥ ६१ ॥
क्रोध होंत है मोह ते मोह शुद्धि होई नास ।
शुद्ध गये बुद्धि नसत है; बुद्धि गये मृत्यु पास ॥ ६२ ॥
रागद्वेष जो नहिं तजै करत विषयकी सेव
इन्द्रिय जो निज वश करे; लहै शांति को भेव ॥ ६३ ॥
शांति जबै यह गहत है; होत दुखन की हान ।

बुद्धि तब स्थिर होत है, यह तू लीजे मान ॥ ६४

योग बिना बुद्धि हुं नहीं, बुद्धि बिन होत न ध्यान ।
ध्यान बिना शांति हुं नहीं, ता बिन ज्ञान सुजान ॥ ६५ ॥

इन्द्रिय जित जित फिरत हैं, तित मन ल्यावत्त खेंचि ।
मन जो बुद्धि हरलेत है, खेच नाव जिव ऐंचि ॥ ६६ ॥

जिन इन्द्रिय रोकी सबै, ठौर ठौर ते आन ।
विषयत्याग है जिन कियो, स्थिर बुद्धि तिह मान ॥ ६७ ॥

सो जन जागत है तहां, जहां सबन की रात ।
जीव जहां जागत सबै, तहां निश पेखत तात ॥ ६८ ॥

जैसे जब सब सलिल को, मेलत सिन्धु जाय ।
त्यों समाय सब कामना, शान्ति रहे तहां आय ॥ ६९ ॥

तज के मन सब कामना; निःसप्रेही जो होय ।
अहंकार ममता तजै तामहि शांति जु होय ॥ ७० ॥

ब्रह्मज्ञान तोसों कह्यो जाते मोह नशाय ।
सो बुद्धि अन्त समय रहे मिले ब्रह्म में जाय ॥ ७१ ॥

इति श्री भ० सांख्य योगो नाम द्वितीयो अध्यायः । २ ॥

तृतीय अध्यायः ।

अर्जुनोवाच–बुद्धि भली है करम ते, कृष्ण कही तुम जोय ।
करम भयानक में कहां, केशव डारत मोहि ॥ १ ॥

वचन सुने सन्देह के, मोहि बुद्धि भ्रमांत ।
निश्चय कर एकै कहो, लहौं मुक्ति या भांत ॥ २ ॥

निष्ठा जो दोय भांत की, पहले दई बताय ।

शुद्धन को ज्ञानी भलो, करमन करम बताय ॥ ३ ॥
करम बिना कीने पुरुष, ज्ञानहि लहे न कोय ।
करम बिना संन्यास के, कोऊ मुक्ति न होय ॥ ४ ॥
करम करे बिना छिन कहूं, रहे न कोऊ जन्त ।
विवश भये करमन करे, बांधे माया तन्त ॥ ५ ॥
करम इन्द्रियन रोक है, मन विषयन को ध्यान ।
कपटी मूरख हैं बड़े, ताको दम्भी जान ॥ ६ ॥
मन सों रोके इन्द्रियन, कछु करमन परचाय ।
फल अभिलाषा को तजै, तांते यह अधिकाय ॥ ७ ॥
अनकरवे के करम हैं भले सु तू कर मित्त ।
बिन कीने ते करम के देह न निब है मित्त ॥ ८ ॥

यज्ञ करम बिन करम जे, जग बन्धन ते होत।
तेंही आज कर्मन करो, मेटि फलन को गोत ॥ ६ ॥

यज्ञ सहित रचि जगत कौ, कही बिधाता बात।
उदय तिहारो यज्ञ ते, कामधेनु यह तात ॥ १० ॥

यज्ञन करि देवन जजो, देव तुमहि फल देही।
वृद्धि परस्पर यों करौ, मन वांछत फल लेही ॥ ११ ॥

इष्ट भोग को हेत है, देव जजें तो मित्त।
बिन पूजे जे लेत हैं, ते हैं चोरनि चित्त ॥ १२ ॥

यज्ञ शेष जो खात है, पापन ढारत धोय।
यज्ञ बिना जो खात है, अघन लहत हैं सोय ॥ १३ ॥

जीव अन्न ते होत हैं, अन्न मेघ ते होय।

मेघ यज्ञ ते होत हैं, यज्ञ करम ते जोय ॥ १४ ॥
करम जु उपजहि वेद् ते, वेद् ब्रह्म ते मान ।
ब्रह्मसुभासत सबन में, ताहि यज्ञ करि जान ॥ १५ ॥
वेद् बताये करम जे, जे न करत नर कोय ।
पापी इन्द्रिय वश भये, जन्म रहत हैं खोय ॥ १६ ॥
ब्रह्म वचन हितवैं नहीं, चले पंथ विप्रीति ।
पारथ वाको धृग जन्म, करे विषियन सों प्रीति ॥ १७ ॥
आत्म सों संतुष्ट जे, आत्मासो रति होय ।
त्रिपति आत्म सों रहै, ताहि न करनो कोय ॥ १८ ॥
ताहि करे ते पुराय नहिं, बिन कीने नाहि दोष ।
ब्रह्मादिकसों काज नहीं, आत्महीसों मोच्छ ॥ १९ ॥

फलहि कामना छोड़ के, करम करो तुम नित्त ।
संग बिना करमन करै मुक्ति लहत केहि मित्त ॥ २० ॥
लही सिद्धि जनकादि जो, कीने करम समाज ।
लोग रीति जो देख के, तुम हूं करो सुकाज ॥ २१ ॥
बड़े आचार जो जो किये, सोई मानत आन ।
ताही मग सब जग चले, बड़े सु करें प्रमान ॥ २२ ॥
मोको करनो कुछ नहीं, तिहुं लोक में काज ।
ना कुछ लायो न ले बने, करम करत या काज ॥ २३ ॥
जो हौं करमन नहिं करौ, रहों आलसी मीत ।
त्योंही सब यह नर गहे, मेरे मग की रीति ॥ २४ ॥
जो हौं करमन नाहि करौ होय सबन को नाश ।

प्रगटाऊं शंकर तबै, हनों प्रजा हा आश ॥ २५ ॥
तिनकी बुद्धि भेदन तजे, रहैं करम लपटाय ।
सावधान ज्ञानी रहै, पोखे तेही दाय ॥ २६ ॥
माया के गुन करत हैं, सबै करम यह जान ।
अहङ्कार आतम विमूढ, लेत आपन को मान ॥ २७ ॥
गुण और कर्म विभाग को, जानत तत्व जो कोय ।
इन्द्रिय विषियन सो लगा, आप मगन नहीं होय ॥ २८ ॥
माया गुण कर मूढ जे, रहे विषय लिवलाय ।
ता मद्य ते ज्ञानी तिने, देत न कहूं चलाय ॥ २९ ॥
चित अध्यात्म जानके, करमन मोमें राख ।
अहङ्कार ममता तजै, जां देह को अभिलाख ॥ ३० ॥

जो या मेरे मते को, श्रद्धा सों गहिलेत ।
तिनके जीय निहकर्म हों, करम करे तजि चेत ॥ ३१ ॥
जो या मेरे मते को करतब दोष लगाय ।
ते मूरख जानत नहीं, है अचेत के भाय ॥ ३२ ॥
ज्ञानवन्त हूं करत हूं अपनो प्रकृति समान ।
सबको निज प्रकृति वश, रोकहि ते जु अजान ॥ ३३ ॥
सब इन्द्रिय के विषय में, राग द्वेष जो होयं ।
तिनके वश नर जाय के, रहे अरि सम होयं ॥ ३४ ॥
शून्य होय जो निज धरम, परते अध को मान ।
मीच भली निज धरम में, पर धरम भय जान ॥ ३५ ॥
अर्जुन उवाच–कहिये मेरे कौन के, पुरुष करत है पाप ।

जाके इच्छा नाहिने, करम देत सन्ताप ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच—यह जु काम और क्रोध है रज गुण ही ते होय ।
क्यों हूं पूरन होय नहिं, पापी को अरु जोय ॥३७॥

अग्नि ढप्यो जो धूम सों, दरपन मल के भाय ।
गरभ तुचा सों ज्यों ढका, जग इन ताही दाय ॥ ३८ ॥

ज्ञानी हूं को ज्ञान इन, बैरी राखियो झांप ।
काम दोष यह अग्नि है, सके न कोऊ ढांप ॥ ३६ ॥

इन्द्रिय मन और बुद्धि है, याही जाको खान ।
इन करके नासत जु है, ज्ञानी हूं को जान ॥ ४० ॥

अर्जुन ताते आदि हे, तू इन्द्रिय को रोक ।
तजो ज्ञान विज्ञान यह, या पापी को ठोक ॥४१ ॥

इन्द्रिय है सब ते परे, तिनते परे मन जोय।
मनते परे जो बुद्धि है, ताते आतम सोय ॥ ४२ ॥
आत्म लखि बुद्धि ते परे, मन को करि वश माहिं।
काम रूप और दुसहिं को, मार डार नर ताहिं ॥ ४३ ॥

इति श्री भ० कर्मयोग नाम तृतीयो अध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्यायः ॥ ४ ॥

श्री भगवानुवाच—यही जोग है मैं कह्यो, पहिले रविसों आय।
तिनहुं तब मनुषों कह्यो, मनु इषवाक सुनाय ॥ १ ॥
परम्परा या योग को, जानत है ऋषिराय।
बहुत दिना बीते गये, सोऊ योग नसाय ॥ २ ॥
वही पुरानो योग मैं, ताको दियो बताय।

या ते तू मो मित्र है, और भगति के भाय ॥ ३ ॥

अर्जुन उवाच—तुम तो प्रगट हो अबैं, सूर पुरातन देव ।
तुम कब ताही सों कह्यो, हौं जान्यो नहीं भेव ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच—तेरे और मेरे जनम, बीते हैं बहुबार ।
तू तिनको जानत नहीं, हौं जानौं निरधार ॥ ५ ॥

अज अविनाशी प्रगट हों, जगत ईश करतार ।
अपनी इच्छा लेत हों, शुद्ध सत्य अवतार ॥ ६ ॥
जब अर्जुन जग में घटे, परम धर्म के भाय ।
बढत अधर्म जहां तहां, तब हौं प्रगटत आय ॥ ७ ॥
साधन की रच्छा करों, पापी डारो मार ।
स्थापित रीति जो धर्म को, युग युग मांझ विचार ॥ ८ ॥

मेरे जन्म अरु कर्म की, तत्व लहै जो जान।
देह तजै मोको मिले, बहुरि न जनमै आन॥ ९॥
राग क्रोध भय को तजै, मो में राखे भाय।
बहुरि ज्ञान तप करि गहै, मोही माहिं समाय॥ १०॥
जो मोको जैसे भजत, हौं तैसो फल देत।
अर्जुन नर सब जगत में, मेरो मग गहि लेत॥ ११॥
करम सिद्ध की चाह करि, पूजत देवन लोय।
करम किये नर लोक में, सिद्धवेग द्वै होय॥ १२॥
चारोंवर्ण जो मैं रचे, करि गुण कर्म विभाग।
हों याको करता रहौं, ताहि मोहि अनुराग॥ १३॥
ऐसे मोको लगत हैं, न मोहि फल की चाहि।

ऐसे मोको जो लखे, कर्म न बांधे ताहि ॥ १४ ॥
जो चाहता है मुकति को, करैं कर्म नित चाहि ।
ताते तू भी कर्म करि, पहिलन को मति पाहि ॥ १५ ॥
कवन कर्मसों करमजे, रहत पांडितों माहि ।
मुकति काज सोई कर्म, कहे देतहों भाहि ॥ १६ ॥
जान्यो चाहिये कर्म हूं, और विकर्म सुभाय ।
सुनि अकर्म गति लीजिये, गहन कर्म को धाय ॥ १७ ॥
कर्मन मांझ अकर्म जे, लखैं अकर्मन कर्म ।
बुद्धिवन्त तिन सब किये मेटे मन के भर्म ॥ १८ ॥
जाके सब आरम्भ निज, बिना कामना होत ।
ताको पंडित कहत जन, देह कर्म के गोत ॥ १९ ॥

कर्मन फल छोड़े सदा, तृप्त रहे नहीं आश।
ताको कर्म न करत हूं, लगे न भव की फांस॥ २० ॥
जीते इन्द्रिय देहि सब, कामहि पर ग्रह जाहि।
देह काज कर्मन करै, पाप न लागत ताहि॥ २१ ॥
यथा लाभ सन्तोष जो, सुख दुःख लखै न दोय।
सिद्ध असिद्धि सो एकसे, कर्म न बन्धन होय॥ २२ ॥
तजै सबै जो कामना, ध्यान लगावै चित्त।
यज्ञ काज कर्मन करै, सो न बांधिये मित्त॥ २३ ॥
होम अग्नि हवि ब्रह्महैं अपरै ब्रह्मै जान।
जाय ब्रह्मसों मिलि रहै, कर्म समाधी ठान॥ २४ ॥
देवनको इक जजत है, करत यज्ञ बहु भाय।

एक ब्रह्म में जजत हैं, ज्ञान योगके दाय ॥ २५ ॥
एक जो होमत इन्द्रियन संयम अग्नि स्वरूप ।
विषयन होमत एकहैं, इन्द्रियन अग्नि अनूप ॥ २६ ॥
देहि इन्द्रियनके कर्म हैं, और कर्म सब प्रान ।
होमत संयम अग्नि में, प्रगट करै चित ज्ञान ॥ २७ ॥
एक यजंत हैं द्रव्य सो, एक तपस्या योग ।
एक जो पड़बोई जजै एक ज्ञानसों लोग । २८ ॥
होम अपने प्रान में प्रान आपने माहिं ।
प्रान अपने रोक के रहत जो है नरनाहिं ॥ २९ ॥
प्राणन ही में प्राण को होमत तजत आहार ।
ये सब जानत यज्ञ को मेटत पाप विकार ॥ ३० ॥

यज्ञ शेष अमृत भखत, होत ब्रह्म में लीन ।
यह लोग बिन यज्ञ ही, परिलौकिक हैं छीन ॥ ३१ ॥
बहुत भान्ति वेदन कहे, यज्ञ सबै ये जान ।
ते सब जानो करम ते, लेहु मुकति सुख खानि ॥ ३२ ॥
द्रव्य यज्ञ ते है बड़ो, ज्ञान यज्ञ सुन भाय ।
जिते कर्म वेदन कहे, ज्ञानहि रहे समाय ॥ ३३ ॥
कीजै बहुती नम्रता, सब प्रसन्न सब भांत ।
ते ज्ञानी उपदेश हैं, ज्ञान जिनहुं है शांत ॥ ३४ ॥
अर्जुन तू याके लहै, रहो नहीं फिर मोह ।
सब जीवन को देख तू, आप मांझ के मोह ॥ ३५ ॥
सब पापन में जो बड़ो, पापी नहिं तू होय ।

ज्ञान नाव चढ़ि उतरि हैं, पाप सिन्धु तुम जोय ॥ ३६ ।
जैसे ज्वाला सिन्धु को, ढारत सबही जार ।
ज्ञान ताही सब प्रबल भी, डारत करमन बार ॥ ३७ ॥
ज्ञान समान न लोक में, पावन दूसर और ।
योग साधन जो करै, लहै ज्ञान की ठौर ॥ ३८ ॥
इन्द्रिय जित श्रद्धा सहित, पावे ऐसो ज्ञान ।
सो ज्ञानी तत्काल ही, लहै शांति सो जान ॥ ३६ ॥
जो मूरख श्रद्धा बिना, ताको होय विनाश ।
वाको यही सन्देह है, सो दोउ लोक निराश ॥ ४० ॥
मोको अरपें कर्म करि, करै सन्देहसु दूरि ।
ज्ञान बन्धै न कर्म करि, रहैं सदा सुख पूरि ॥ ४१ ॥

सन्देह सकल अज्ञान ते उपजत अर्जुन आहि।
ज्ञान खड़गसों काटिये, योग करै किन ताहि ॥ ४२ ॥

इति श्री० भ० ज्ञान विभाग योगो नाम चतुर्थ अध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमः अध्यायः ।

अर्जुन उवाच–कबहुं कहत संन्यास को, कबहुं कर्म को योग।
निश्चय करि एकै कहे, मेटो मनका रोग ॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच–कर्म योग संन्यास अरु दोऊ ये शुभ दैन।
कर्म योग संन्यास में, कर्म न लहियत चैन ॥ २ ॥
द्वेष तजैं चाहहि तजैं, सो संन्यासी जान।
राग द्वेष तेजो रहत, ताही छूटियो मान। ३॥
योग सांख्य को दो कहत, मूरख पण्डित नाहिं।

दोऊ में एक भजैं, दोऊ फलत हैं ताहिं ॥ ४ ॥
स्थान जो लहिये सांख्य ते, सो योगहि ते होय।
सांख्य योग एकै गनै, ताको ज्ञानी जोय ॥ ५ ॥
लेत संन्यासहि दुःखसों, बिन करमनरे मीत।
योग युगत जो करत है, लेत ब्रह्म निहचीत ॥ ६ ॥
इन्द्रियजित होय शुद्ध हिये, योग युगत जो कोय।
जीवन जानै आत्मा, करम लिप्त न होय ॥ ७ ॥
ज्ञानी करमन करत हैं, किये लेश नहीं मान।
सूंघत देखत छुहत पुनि, सुनत डोलहू जान ॥ ८ ॥
सोवत जागत बोलते, और डारहु देत।
इन्द्रियन विषयन में पगी, जानत हौं यही हेत ॥ ९ ॥

करम करै ताजि संग को, सब को ब्रह्मै जान ।
ताको पाप न लगत है, पद्म पत्र जल मान ॥ १० ॥
देह बुद्धि मन इन्द्रियन, योगी होय निहसंग ।
करम करत अति चाह सों, चित्त शुद्धि के ढंग ॥ ११ ॥
ज्ञानी मुक्ति हुं लहे, करम करै फल छांड़ ।
मूरख फल की आश करि, बाँधि कामना आँड़ ॥ १२ ॥
मन करि कर्म जे करत है, तेही ज्ञानी जान ।
नव द्वारपुर में बसत, लेत सुखन की खानि ॥ १३ ॥
ईश्वर नहीं कर्मन करत, निहकर्मन करतार ।
कर्म फलन कूं नाहिं करत, प्रकृति करत विस्तार ॥ १४ ॥
सुकृत न काहू की गहत, अवर पाप नहीं लेय ।

ढाँपियो ज्ञान अज्ञान ते, मोह न प्रगटन देय ॥ १५ ॥
दूरि किये अज्ञान जिन, हिये ज्ञान प्रगटाय ।
देखत ही स्व स्वरूप को, ज्ञान सूर के दाय ॥ १६ ॥
जो मनको अरु बुद्धि को, राखत ईश्वर माहिं ।
जन्म मरण तिनको नहीं, मुक्ति होत नरताहिं ॥ १७ ॥
विद्या विनय लिये जो द्विज, गो गज स्वपचा स्वान ।
ज्ञानी इनको सम गनत, भेद लहे नहिं ज्ञान ॥ १८ ॥
सम्यक जिनके हिये मों, तिन जीत्यो संसार ।
समता ब्रह्महि को कहत, ब्रह्म लीन निरधार ॥ १९ ॥
सुख पायो हरषे नहीं, दुःख पाये न रिसाय ।
राखे स्थिर जिन बुद्धि को, ब्रह्मै रहे समाय ॥ २० ॥

बाहर के सुख को तजै, हिय सुख रहै सुजान।
ब्रह्म विषय चित को धरत, लेहि आनन्द हु मान ॥ २१ ॥
विषय तजै संसार के, ते हैं दुःख के मूल।
उपजत विनसत है सदा, पंडित गहित न भूल ॥ २२ ॥
काम क्रोध के वेग को, जो सहि सकै सुभाय।
ते योगी नित्यहुं रहे, स्थिर सुख में लिपटाय ॥ २३ ॥
जाके हिये प्रकाश है, अन्तरि सुख आराम।
वह योगी परब्रह्म है, लहै ब्रह्म को धाम ॥ २४ ॥
जो ज्ञानी पापन तजैं, होत ब्रह्म में लीन।
भेद न तिनके जीय में; रहत सबन सों दीन ॥ २५ ॥
काम क्रोध ते जो रहत, वश कीनों निज चित ॥

ज्ञानवन्त ते हैं सदा, ब्रह्म चहूँ दिशि मित्त ॥ २६ ॥
तजै विषय संसार में, दृष्टि भौंह मध्य राख ।
प्राण आपने सम करत, नाशा मध्य अभिलाख ॥ २७ ॥
जीते इन्द्रिय बुद्धि मन, मुकति में मन देय ।
इच्छा भय क्रोधहि तजै, मुकति पदारथ लेय ॥ २८ ॥
तपत यज्ञन को भोग कै, सब लोगन को ईश ।
शांति लहै या जान कै, मोको प्रभु जगदीश ॥ २९ ॥

इति श्री भ० सांख्य योगो नाम पंचमो अध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठो अध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच—कर्म फलन चाहे नहीं, करै कर्म निहकाम ।
योगी संन्यासी वही, पावत है निज धाम ॥ १ ॥

याको संन्यासी कहैं, वही योगी तू जान ।
बिन संन्यासहि योग नहि, यहै साँच तू मान ॥ २ ॥
योग लहि शांति गहै, विषय इन्द्रियन मारि ।
योगहि कर्मन ते लइते, ज्ञानी चित्त विचारि ॥ ३ ॥
विषयन सों अरु कर्म सों, होय प्रीति जब दूरि ।
सब संकल्पन को तजै, योग रहे जब पूरि ॥ ४ ॥
निज आतम को उद्धरत, अधो गमन जु करेय ।
आतम ही रिपु आप को, आतम ही सुख देय ॥ ५ ॥
आपहि जीतो आत्मा, सोई बन्धु जु याहि ।
निज आतम जीतो नहीं, अरि जानिये ताहि ॥ ६ ॥
जिन जीत्यो है आत्मा, शांति लहै वह ज्ञान ।

शीत ऊष्ण सुख दुःख सबै, और मान अपमान ॥ ७ ॥
जानत ज्ञान विज्ञान यों, अरु इन्द्रिय जित जोय ।
सोना पाहन एक सम, गनै सो ज्ञानी होय ॥ ८ ॥
मित्र उदासी शत्रु पुनि, अरु निज बन्धु समान ।
साधू पापी चित्त में, गनै एक उन्मान ॥ ९ ॥
बैठे एकान्त एक चित, योगी साधे योग ।
एकाएकी चाह नहीं कछु, लोरे सुख भोग ॥ १० ॥
ठौर पुनीत निहार के, करि आसन तत्काल ।
नहिं ऊंचो नीचो नहीं, पटकुश अरु मृगछाल ॥ ११ ॥
करि बैठे मन को जु स्थिर, सब इन्द्रियन को जीत ।
करके आतम शुद्ध निज, योग करै यह रीति ॥ १२ ॥

काया शिर अरु ग्रीव को, राखे एक समान ।
दृष्टि धरै निज नासका, वेष नहिं दिश आन ॥ १३ ॥
शांति गहैं मय को तजै, ब्रह्मचर्य्य व्रत लेय ।
मो में राखे रोक मन, लहे योग का भेय ॥ १४ ॥
यह विधि करैजु योग को, निज मन को स्थिर राख ।
शांति लहे मोको मिलें, लहै अमीरस चाख ॥ १५ ॥
योग लेय नहिं बहू भषे, बिन खाये हुं मित्त ।
सोवत हुं जागे नहीं, अति वरजत हुं नित्त ॥ १६ ॥
युकति अहार व्यवहार जो, कर्म युगति पुनि होय ।
जागत सोवत जो युगति, डारे पापनि धोय ॥ १७ ॥
जब निज चित को रोक के, राखत आतम माहिं ।

तजै सबै जो कामना, सो योगी नरनाहिं ॥ १८ ॥
जैसे दीप समीर बिन, रहै ज्योति ठहराय।
योगी निश्चल चित्त को, उपमा हैं यह दाय ॥ १९ ॥
योगी सेवत योग को, चित्त हिये ठहराय।
निरखत आतम को तहां, रहत सदा सुख पाय ॥ २० ॥
जो सुख इन्द्रिय ते परै, बहुत बुद्धि गहि लेत।
वा सुख को जानत तबै, ता पाछे है नेत ॥ २१ ॥
जो पायो लाभन अधिक, अबर जानेर मित्त।
स्थिरता गहि डोलै नहीं, बहु दुःख पायो चित्त ॥ २२ ॥
दुःख ही को संयोग को, मान सु लेत वियोग।
निश्चय करि योगहि करै, ताको कहत जो योग ॥ २३ ॥

संकल्प न कीजे कामना, तिनें तजें चितलाय ।
मनसों रोकै इन्द्रियन, योग करै यह भाय ॥ २४ ॥
धैर्य धर्म अरु बुद्धि करि, शनैः शनैः सब त्याग ।
कछुये करै न कामना, आतमसों अनुराग ॥ २५ ॥
मन चञ्चल जित तित चलै, ताको राखै रोक ।
करि संयम निज आत्मा, वासि करि ताको टोक ॥ २६ ॥
जाके मन में शांति है, पाप रहत जो होय ।
मगन जो ब्रह्मानन्द में, ता योगी को जोय ॥ २७ ॥
योगी यह विधि करै योग, अरु पापन को त्याग ।
सहजै ब्रह्म के सुख लहै, सदा रहत अनुराग ॥ २८ ॥
मोहि लखै सब ठौर जो, सब को मोही मोहि ।

मोको देखत सो सदा, मैं हूं देखत तोहि ॥ २६ ॥
व्यापक हों सब जीय में, मोको सेवे कोय ।
कैसे हूं कतहुं रहै, ताको मो में जोय ॥ ३० ॥
सर्व विषे स्थित मैं रहो, इक पल भजे जु मोहि ।
रहै कौन हूं भांत वह, सो यह वरतत जोहि ॥ ३१ ॥
सब को देखे आप सम, सुख दुःख एकै भाय ।
सो योगी सब ते बड़ो, मो में रहै समाय ॥ ३२ ॥
अर्जुन उवाच—योग कहो तुम कृष्ण जो, मोको एक समान ।
चञ्चल मो चित गहे न, जो तुम करो बखान ॥ ३३ ॥
मन है चञ्चल कृष्ण जी, बहुत छोभ करि जान ।
ताको रोकन पवन सम, अति हैं कठिन समान ॥ ३४ ॥

श्रीभगवानुवाच–अर्जुन तुम सांची कही, मन चञ्चल न गहाय ।
योग्य किये वैराग्य सों, नीके पकरो जाय ॥ ३५ ॥

जिन्ह न पकरयो चित्त निज, तां पै योग न होय ।
जिन अपनो मन वश कियो, लेत जतन सो सोय ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच–अजिती अरु श्रद्धा सहित, जोगे भ्रष्टता पाय ।
लहि न सिद्धि सों योग को, कौन गति को जाय ॥३७॥

किधों दुहन ते भ्रष्ट होय, बादर ज्यों बिनसाय ।
ताको कछु न आसरो, रिहा मूढ केहि भाय ॥ ३८ ॥

मेरे या संदेह को, करो दूर जगदीश ।
मेटहु या संदेह को, कौन करे तव रीश ॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच–अर्जुन दोऊ लोक में, ताको होय न नास ।

भले करम जे करत हैं, तिन को नाहिं अधवास ॥ ४० ॥
पुराण्यवन्त के लोक लहि, रहत बहुत दिन जाय ।
योग भ्रष्ट धनवन्त जो, तिन घरि जनमै आय ॥ ४१ ॥
बुद्धिवंत योगी कुलनि, आन लेत अवतार ।
जनम लहनि ऐसे घरिन, दुरलभ हे निरधार ॥ ४२ ॥
तिनहुं पहिली देहि को, लहत बुद्धि संजोग ।
जतन करत हैं सिद्धि को, बहु विधि साधे योग ॥ ४३ ॥
सो तो अपने वश नहीं, होयहि प्रथम अभ्यास ।
ताते उपजै योग हूं, ब्रह्म शब्द है वास ॥ ४४ ॥
योगी जे यतनै करै, डारे सब अघ धोय ।
बहुत जन्म सिद्धि लहे, ताहि परम गति होय ॥ ४५ ॥

तपसी हूं ते जो अधिक, ज्ञानी हूं ते जान ।
कर्मन हूं ते हैं अधिक, अर्जुन योगहि मान ॥ ४६ ॥
जो योगी राखहि मते, मो में निश्चल भाय ।
श्रद्धायुत मोको भजे, सो सब ते अधिकाय ॥ ४७ ॥
कर्म ज्ञान व्रत योग ते, भक्ति सबन सिर मौर ।
तिन अर्जुन हो बस कियो, मो बिन छिन नहीं और ॥ ४८ ॥

इति० श्री भ० आत्म संजम योगो नाम षष्ठमो अध्याय: । ६ ॥

सप्तमोऽध्याय: ।

श्रीभगवानुवाच—मेरो ही कर आसरा, मोही में चित राख ।
मोको जाने सत्य वह, यों समझावों भाख ॥ १ ॥
ज्ञान और विज्ञान हौं, तोसों कहत बखान ।

जाके जाने जानिवो, कछु न रहत है आन ॥ २ ॥
यत्न करत है सिद्धि को, एक हजारन माहिं ।
तिनहुं में कोऊ लहै, बहुत लखत मोहि नाहिं ॥ ३ ॥
भूमि नीर पावक पवन, अंबर मन बुद्धिमान ।
अहंकार है आठवों, माया भेद सुजान ॥ ४ ॥
माया मेरी एक यहि, जिनहिं गहियो संसार ।
सांची मन में मान ले, जीव रूप निरधार ॥ ५ ॥
माया ते उत्पन्न हैं, सभी जीव यह दाय ।
हौं उपजावों जगत सब, नाश करो चितचाय ॥ ६ ॥
अर्जुन मोते जो परे, और बात नहिं जान ।
ज्यों मणि प्रोयो सूत में, मो में प्रोयो मान ॥ ७ ॥

चांद सूरज की किरण हौं, जल रस मोको मान ।
वेदन में हौं ही प्रणव, पौरुष शब्द बखान ॥ ८ ॥
गन्ध जु हौं ही भूमि में, हौं पावक में तेज ।
जीवन हूं में जीव हौं, तपस्विन तप लख लेख ॥ ९ ॥
सब जीवन को बीज हौं, मोको जान जु लेह ।
बुधिवन्नों में बुद्धि हौं, सब तेजन को गेह ॥ १० ॥
बल बलवन्तन को जु हौं, काम राग जिति नाहिं ।
काम रूप हौं ही जु हौं, धर्म वश मोहि माहिं ॥ ११ ॥
राजस तामस शांति के, जे हैं सगरे माहिं ।
ए सब मो में बसत हैं, मोहि न इन से चाहिं ॥ १२ ॥
तीनों गुण के भाय जो, तिन मोहिया संसार ।

मोको जो कोऊ न लखत, इनते पहिले पार ॥ १३ ॥
मेरी माया गुण मयी, दुस्तर तरी न जाय ।
आवै जो कोऊ मो शरण, सो जु तरै सुख भाय ॥ १४ ॥
पापी मूर्ख जो जगत, सो नहीं पावत मोहि ।
ज्ञान जु माया कर रहयो, असुर गुनन में पोहि ॥ १५ ॥
पुण्यवन्त जे चार विधि, मोहिं भजैं चित ऐन ।
ज्ञानी रोगी काम युक्त, जिज्ञासी सुन बैन ॥ १६ ॥
ज्ञानी जो भगतहि करै, सो सब ते अधिकाय ।
ज्ञानी को भल भजौ हौं, ज्ञानी मोहि सुहाय ॥ १७ ॥
मेरे मत एहि सब बड़े, ज्ञानी मोको जान ।
उत्तम गति माई तिने, फलन लेत नहीं मान ॥ १८ ॥

वहु जन्मन मोको लहै, ज्ञानवान रे मित्त ।
वासुदेव सब में लखे, मो दुर्लभ है नित्त ॥ १६ ॥
ज्ञान जिन के हिए में, साधत औरै देव ।
अपने काम स्वभाव सो, बंधे जो तेहि भेव ॥ २० ॥
श्रद्धा युत हो पूजही, जो देवन चितलाय ।
तांको ताही माझ हौं, श्रद्धा देऊं बढ़ाय ॥ २१ ॥
सो वाही श्रद्धा सहित, पूजत वाहु देव ।
देत जु हौं ही कामना, वह जानत नहिं भेव ॥ २२ ॥
फल थोड़े पावत जु वै, बिना ज्ञान ही मूढ ।
देव भगत देवन लहै; मेरो मोको गूढ ॥ २३ ॥
जाके थोड़ी बुद्धि है, जातन प्रगट न मोहिं ।

अविनाशी उत्तम जु हौं सब ते न्यारा जोहिं ॥ २४ ॥

५।१० ढकिउ जो माया जोग हौं, कोहु को न प्रकास ।

६,६४।४ मूरख मोहि न जानई, अजर अमर सुखरास ॥ २५ ॥

सप्तमः जो बीतियो जानत तिन, वर्तमान हूं मित्त ।

होनहार सब को लखो, मोहि लखे नहि चित्त ॥ २६ ॥

राग द्वेष अज्ञान ते, सब जो मोहित होत ।

मान लेत हौं आपको, हम कहि मुख न उदोत ॥ २७ ॥

पुण्य करै जो जगत मैं, दूर किये निज पाप ।

तेई छूटत मोह ते, मोको पावत आप ॥ २८ ॥

जरा मरन को हानि को, जो कोउ करत उपाय ।

जानत ते अधियातमे, ब्रह्म कर्म के भाय ॥ २९ ॥

अधिदैवक अधिभूत जो, मोको जानत मित्त ।
मरन समय भूलत नहीं, योगी मेरे चित्त ॥ ३० ॥

इति श्री म० सूप० ब्रह्मविद्यायोगो० कृ० अ० स० ज्ञा० वि० यो० सप्तमोध्याय ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अर्जुन उवाच—अध्यात्म और ब्रह्म को, कर्म कहा जगदीस ।
अधिदैवक अधिभूत को, जानत विस्वे बीस ॥ १ ॥

अधि यज्ञहि कासों कहित, या देही में कौन ।
कैसे तुस को जानि हि, प्राण करत जब गौन ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच—अक्षर सो ब्रह्मै कहत, अध्यात्म जु सुभाय ।
जो उपजावत जगत सब, सोई कर्म सुदाय ॥ ३ ॥

देह जु है अधिभूति इह, अधिदैवक है जीव ।

सब देहन की देहि में, अधियज्ञ सुपीव ॥ ४ ॥
अन्त समय देही तजैं, मो सिमरण जो होय ।
सो तब ही मोकों मिले, तहां न संशय कोय ॥ ५ ॥
प्राणी जब देही तजै, सिमरे जोई काज ।
या में संशय नाहिनै, पावै सोई साज ॥ ६ ॥
मेरो सिमरण नित्य करि, युद्ध करै कि नमित्त ।
अरपै मो में बुद्धि मन, होइ है तू अचित्त ॥ ७ ॥
योग और अभ्यास में, जाको चित स्थिर होय ।
मो चिन्ता राखै सदा, पुरुष हि पावे सोय ॥ ८ ॥
सब करता सूक्ष्म जु अति, कथसु पुरातन मान ।
रवि समान सब ते परे, सिमरन ताको जान ॥ ९ ॥

मरन समय मन स्थिर करै, भगति योग फल पाय ।
त्रिकुटी मध्य प्राणहि धरे, परम पुरुष में जाय ॥ १० ॥
अक्षर जा सों कहत हैं, बात राग जहां जात ।
ब्रह्मचर्य को जो लहै, ता पद को यह बात ॥ ११ ॥
सब द्वारण को बसि करै, मन रोके हिय मांहि ।
प्राणहि राखे सीस में रहे धारना गाहि ॥ १२ ॥
प्रणव अक्षर को जपु करे, सिमरे मोको नित्त ।
इह विधि जो देही तजै, लजै परमगति मित्त ॥ १३ ॥
स्थिर चितहूं मोको जपै, सदा निरन्तर होय ।
ता योगी को सुलभ हौं, और लहे नहीं कोय ॥ १४ ॥
महा पुरुष सिधहि लहै मो में होत जु लीन ।

दुःख को घर जो जनम हैं, ना में होत न दीन ॥ १५ ॥
ब्रह्मलोक लों लोक जे, तिन ते फिरत जु लोय ।
अर्जुन मोको पाय के, जनम लेत नहीं कोय ॥ १६ ॥
सहस्र युगन के अन्त लों, ब्रह्मा का दिन जान ।
रात्रिहूं तितनी होत है, ज्ञानी करत बखान ॥ १७ ॥
ब्रह्मा के दिन होत ही, प्रगटत यह संसार ।
निस के आए जात है, माया में ता बार ॥ १८ ॥
बार बार उपजत सभी, जीवन सुन रे मित्त ।
ब्रह्मा के दिन रैन में, बहे जात है नित्त ॥ १९ ॥
ब्रह्म जु माया ते परे, इन्द्रियन गहियो न जाय ।
सब जीवनि के नसत ही, सो कतहूं न नसाय ॥ २० ॥

सोई अक्षर परमगति, ताहि न देखै कोय।
फिरे न जाको पायके, परम धरम मम जोय ॥ २१ ॥
भगति करे ते पाइये, परम पुरुष सो जान।
जा में सगले जीव हैं, जग विसतारियो आन ॥ २२ ॥
फिरि आवत जो काल में, नहि आवत जो काल।
अर्जुन तोसों कहत हों, सुनि यहि सीख रसाल ॥ २३ ॥
जगत जोत दिन शुकलषट, उत्तरायण के मास।
जात जो ज्ञानी वा समय, लहत ब्रह्म में वास ॥ २४ ॥
धूम निशा दक्षण अयन, कृष्ण पक्ष जो होय।
मम मंडल योगी लहे, फिरि आवत है सोय ॥ २५ ॥
शुक्ल कृष्ण यहि गति कही, ते संसारहि होत।

फिरि आवत है एक गति, एक लहत हैं जोत ॥ २६ ॥
जो जाने दोऊ गतिन, ता योगी मोहु न कोय ।
योगी होय अर्जुन तुही, सब कालन को जोय । २७ ॥
वेद यज्ञ तप दान का, फल कहियों है मित्त ।
योगी ता फल को लहे, सब ते रहे निचित्त ॥ २८ ॥

इति श्री भ० महापुरु। योगो नाम अष्टमो अध्यायः ॥ ८ ॥

नवमः अध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच–अर्जुन तोसों कहत हों, एक गुप्त यह बात ।
समझै ज्ञान विज्ञान को, कहैं मुकति विख्यात ॥ १ ॥
उत्तम विद्या राज है, अति पवित्र तू जान ।
फल ताके प्रत्यक्ष है, करवो हुं सुख मान ॥ २ ॥

करबे हूं या धरम के, जाके श्रद्धा नाहिं।
ते मोको पावत नहीं, डोलत हैं भव माहिं॥ ३॥
विसतारिउ सब जगत में, मोहि न देखे कोय।
सब जीअन मो में बसें, मोहि न तिन में जोय॥ ४॥
मो में कोऊ नाहिं बसत, यहि ईश्वरता देख।
उपजावत पालत युहीं, नहीं तिन में अवि रेख॥ ५॥
जैसे पवन आकाश में, फिरत रहे सब वार।
तिउं मो में सब जीव ए, फिरत जान निराधार॥ ६॥
मेरी माया में रहे, प्रलय भय सब जन्त।
काल आदि सिरजों तिनै, मो में विन को तन्त॥ ७॥
माया लय जु हों, सिरजत बारम्बार।

माया हूं के बासि परिउ, रहे सदा संसार ॥ ८ ॥
अर्जुन मोको करम वै, कबहूं बांधत नाहिं ।
सदा उदासी रहत हों, नहिं आसक्त तिन माहिं ॥ ९ ॥
हौं प्रेरत माया यही, जब उपजत संसार ।
पारथ याही हैत ते, फिरत जु बारम्बार ॥ १० ॥
मोको मानुष्य जानके, आदर करत न कोय ।
मूर्ख इउं जानत नहीं, इहै जु ईश्वर होय ॥ ११ ॥
उनकी आशा सफल नहिं, ज्ञान कर्म नहीं भाय ।
प्रकृत आसुरी राक्षसी, ता में बूड़े धाय ॥ १२ ॥
देव प्रकृति में जे मिले, काम क्रोध को त्याग ।
ते मोको जानत सबैं, रहत जु है अनुराग ॥ १३ ॥

कीर्तन मेरो ही करें, जानत मो ब्रत राख ।
भगति सहित मोको निवत, मेरे ही गुण भाख ॥ १४ ॥

ज्ञान यज्ञ करि भजत हैं, मोको सेवत मीत ।
कोऊ मानत एक करि, कोऊ बहुत पुनीत ॥ १५ ॥
हौं ही घृत अरु यज्ञ हों, सुधा औषधी जान ।
हौं पावक अरु होम हों, मन्तर मोको मान ॥ १६ ॥
माता पिता या जगत को, हौं ही हों करतार ।
ऋग यजु साम अथर्व हों, और वेद ओंकार ॥ १७ ॥
गत निवास भरता शरण, साची प्रभु अरु बन्ध ।
प्रलय स्थान निधान अरु, बीज प्रभाव आबंध ॥ १८ ॥
तपत गहत छोड़ जु हौं, बरषत मोही जान ।

अमृतामृत कारण करन, हौं ही अर्जुन मान ॥ १६ ॥
यज्ञ करत पापन दहत, चाहत स्वर्गहि वास।
इन्द्र लोक लग भोग वै, दिव्य लाग सुविलास ॥ २० ॥
फिर आवत भूलोक में, क्षीण पुण्य जब होय।
आवागमन जु करत हैं, कामवंत जु लोय ॥ २१ ॥
भगति जु करे आनन्द होय, मो में ही चित राख।
योग क्षेम तिनके करों, जिन जन की अभिलाष ॥ २२ ॥
अवर देव के भगत जे, सेवत श्रद्धावन्त।
दुविधा छोड़ मोको भजत, लहत मोहि ही तंत ॥ २३ ॥
सब जग तिन को भोगता, और सबन को ईश।
ते मम तत्व न जानहीं, डारों तिनको पीश ॥ २४ ॥

देव भगत देवन लहै, पितृ पूज पित्र स्थान।
भूत जजै भूतन लहै, सो पूजै भगवान ॥ २५ ॥
पात फूल फल नीर को, जो अरपै कर प्रीति।
लेउं देउं भक्ती वसौं, किए प्रेम की रीति ॥ २६ ॥
जो कुछ करे औ खात है, जो होमत जो देत।
अर्जुन जो तू तप करें, मोहि देहिं कर हेत ॥ २७ ॥
भले बुरे जो कर्म हैं, तिनते छुटि है मीत।
जुगति जोग सन्यास करि, मोहि मिल होइ निहचीत ॥ २८ ॥
हौं सब ठौर समान हों, मेरी प्रीति न द्रोइ।
मोको सेवत भगत जे, तिनसे मोको मोह ॥ २९ ॥
दुराचारि मोको भजैं, होयं अनन्त युत भाय।

ताको तुम साधू गिनो, सुनि निश्चय के दाय ॥ ३० ॥
वेग होहु धर्मात्मा, शांति लहै बहु भाय ।
अर्जुन निश्चय जान तू, नहिं मो भगति नशाय ॥ ३१ ॥
अर्जुन सेवत मोहि जो, पाप योनि हूं होय ।
त्रिया शूद्र अरु वैश्य पुनि, लहे परमगति सोय ॥ ३२ ॥
द्विज चत्री अरु भगत वर, राज ऋषि सुख भाय ।
सुख अनित यो लोक को, मोको भजै चितलाय ॥ ३३ ॥
मोको भज जन नम्र हो, मो ही में मन राख ।
यह युगति तू मोहि मिल, प्रेमन सो अभिलाष ॥ ३४ ॥

इति श्री० प० ब्र० विद्यायोग० श्रीकृष्णा० अ० सं० नाम नवमो अध्यायः ॥ ९ ॥

—०—

दशमां अध्यायः ।

श्रीभगवानुवाच—भली बात तोसो कहों, सुन अर्जुन चितलाय ।

होय प्रसन्न तोसों कहत, तेरे हित के भाय ॥ १ ॥

देवऋषि नहीं जान हैं, मो उत्पत हूं मीत ।

देव ऋषिन की आदि हौं, नित ही रहत पुनीत ॥ २ ॥

अज अनादि जगदीश पुनि, मोको लखत जु कोय ।

सब में ज्ञानी वह बड़ा, पापन डारत धोय ॥ ३ ॥

बुद्धि ज्ञान सम दम क्षमा, अ व्याकुलता होय ।

सुख भय दुःख ओभाय भय, और अभ्यता जोय ॥ ४ ॥

तोष अहिंसा दान तप, सम जस अजसे सुजान ।

जीवन के हैं सुभाव एह, मोते होत सु मान ॥ ५ ॥

सातों ऋषि अरु चार मुनि, मो मनते जु उदोत।
सब लोगन में हैं बड़े, इनहीं के हैं गोत ॥ ६ ॥
मेरी योग विभूति का, तत्व ज्ञान जो लेत।
निश्चल योगहि सो लहत, लहत जु याही हेत ॥ ७ ॥
मैं ही ईश्वर जगत को, मो ही ते सब होय।
ज्ञानवन्त यहि जानके, मो ही सेवत सोय ॥ ८ ॥
प्राण चित मोमें धरत, बोध परस्पर देत।
मेरे चरित ही करत नित, मान तोष सुख लेत ॥ ९ ॥
सेवत मोको ते सदा, भगत योग के भाय।
भली बुद्धि वह लेत नित, रहत जो मो में आय ॥ १० ॥
तम अज्ञानहि दूरि करि, दयावन्त ही होत।

करहुं जु तिनके हिये में, ज्ञान दीप उद्योत ॥ ११ ॥
अर्जुन उवाच—परब्रह्म परम पवित्र तुम, अपरम्पार को धाम ।
अविनाशी अज पुरुष हो, आदि देव तुम नाम ॥१२॥
सब ऋषियों ही कहत हैं, नारद देव लजान ।
व्यास अगस्त्य सबहुं करत, तांते लीजै मान ॥ १३ ॥
जो कुछ तुम मोसों कहत, मानत हौं सत भाय ।
दानव देव न जानही, तुम प्रगटे तुम दाय ॥ १४ ॥
आपन को आपे लखो, तुम पुरुषोत्तम देव ।
जीवन उपजावत रहत, पालत देवन देव ॥ १५ ॥
निज विभूति मोसों कहो, प्रभु जो चित को भाय ।
जो विभूति श्रीकृष्ण जू, रही जगत में छाय ॥ १६ ॥

ध्यान तुम्हारो करत प्रभु, जानहुं कैसै तोहि ।
कौन पदारथ में लखों, सो समझावो मोहि ॥ १७ ॥
योग विभूति आपनी, कहिये मोसों देव ।
मोको तृप्ति न होत है, सुनत अमीरस भेव ॥ १८ ॥
श्रीभगवानुवाच–अर्जुन तोसों कहत हों, निज विभूति विस्तार ।
मुख्य जिती तितनी कहत, हिये के दृग निहार ॥ १९ ॥
सब जीवन के हिये में, मोही आत्म जान ।
आदि अन्त अरु मध्य हौं, मोही सब में मान ॥ २० ॥
आदित्यन में विष्णु हौं, जोतन में रवि देख ।
वाजुन मांझ मरीच हौं, नक्षत्रन में शशि लेख ॥ २१ ॥
सामवेद हौं वेद में, इन्द्र अमरगण मांहि ।

जीवन में हुं चेतना, मन इन्द्रिय के मांहि ॥ २२ ॥

रुद्रन में शङ्कर जु हौं, यत्तण मांझ धनेश ।

पावक हौं ही वसन में, शैल सुमेरु सुदेश ॥ २३ ॥

देव पुरोहित मुख्य जो, मोहि वृहस्पति मान ।

षट् मुख सेनापतिन में, सर में सागर जान ॥ २४ ॥

हौं जु हौं भृगु ऋषिन मोह, वाकन में ओंकार ।

जप में जप गायत्र हौं, स्थावर में हिमधार ॥ २५ ॥

वृत्तण में पीपल जु हौं, मुनिन में नारद देव ।

गन्धर्व में चितरथ हौं, सिद्ध कपिलमुनि भेव ॥ २६ ॥

अश्वन में ऊंची श्रवा, गजन एरावत नाम ।

हौं जु नृपत हौं नरन में, पोषत सब के काम ॥ २७ ॥

हथियारन में बज्र हौं, कामधेनु हौं गाय।
काम प्रजापति मांझ हौं, बाशक सर्पन माहि ॥ २८ ॥
नागन मांझ अनन्त हौं, बरन जु हौं जलवन्त।
पितृन में हौं अर्यमा, यम हौं संयम वन्त ॥ २९ ॥
दैत्यन में प्रह्लाद हौं, वशीकरण में काल।
सिंह जु हौं सब मृगन में, पक्षिण में रिपु व्याल ॥ ३० ॥
उतावलन में पवन हौं, शस्त्र धारिण में राम।
जल जन्तुन में मच्छ हौं, नदी गङ्ग अभिराम ॥ ३१ ॥
अध्यात्म विद्यायन में, बाद हौं बादिन माहि।
आदि अन्त अरु मध्य हौं, सभी सृष्टि को नाहि ॥ ३२ ॥
अक्षरन मांझ ओंकार हौं, द्वन्द समासन जान।

हौं ही अक्षर अकाल हौं, धियाता मोको मान ॥ ३३ ॥
हौं सभ को संग्रीत हौं, और उपावन हार ।
श्री कीरति सारस्वती, क्षमा हौं बुद्धि सम्भार ॥ ३४ ॥
महां शाम हौं शाम में, गायत्री माहि छन्द ।
मृगशिर हौं ही मास में, ऋतु वसन्त सुख कन्द ॥ ३५ ॥
जूआ हौं सब छलन में तेज वंशन में तेजु ।
जय अरु उद्यम सत्य हौं, सतु सतवन्तन केजु ॥ ३६ ॥
यदुकुल में हौं कृष्ण हौं, अर्जुन पांडवन माहि ।
मुनिन मांझ हौं व्यासमुनि, गनो शुक्र कवि माहि ॥ ३७ ॥
दण्डवन्तन में दण्ड हौं, जीत वन्त को नीति ।
ज्ञानन में हौं ज्ञान शुभ, मौं न दुरावत रीति ॥ ३८ ॥

औषधि में जो अन्न हों, कंचन धातुन माहिं ।
सर्व तृणन में दर्भ हों, यों समझो नर नाहिं ॥ ३९ ॥
सब जीवन में बीज हैं, अर्जुन मोको जान ।
विचर रहो संसार में, मो बिन कछु न आन ॥ ४० ॥
मेरी दिव्य विभूति को, अन्त न जानियो जाय ।
यदि तो थोरो सों कहियो, मैं विभूति को भाय ॥ ४१ ॥
जो कछु या संसार में, काहू गुण अधिकाय ।
सो सब मेरो तेज है, दीनों तोहि बताय ॥ ४२ ॥
बहुत कहा तोसो कहुं, अर्जुन बात बनाय ।
सब जग अपने अंश में, मैं राखियो ठहराय ॥ ४३ ॥

इति श्री भ० विभक्ति योगो नाम दशमो अध्यायः ॥ १० ॥

अर्जुन उवाच—मो ऊपरि कीनी द्या अध्यात्म्य प्रगटाय ।
बचन तुम्हारे सुनत ही मोहु गयो नसाय ॥१॥
जीवन की उत्पत्ति सुन, और प्रलय की रीति ।
कही जु तुम विस्तार सों, आतम की शुभ रीति ॥ २ ॥
यों ही है ज्यों कहत ही, हरि जू अपने भेव ।
देख्यो चाहत हीं अबै, रूप तुम्हारो देव ॥ ३ ॥
देखन योग जो मोहि को, जानत हों यदुराय ।
अविनाशी निज रूप तब, दीजे मोहि दिखाय ॥ ४ ॥
श्रीभगवानुवाच—अर्जुन अब तू देख ले, शत सहस जो रूप ।
बहुत भांत है दिव्य जो, नाना वर्ण अनूप ॥ ५ ॥

देखि रुद्र आदित्य सब, असन सुत मुहि माहिं।
अवरे अर्जुन रूप जो, पहिले देखे नाहिं ॥ ६ ॥
एक ठोर मा दहि में, स्थिर चर रहे समाय।
देखियो चाहत जो कछू, सोई देऊं दिखाय ॥ ७ ॥
इन नैनन नाहिं देख है, देवहुं दिव्य दृग तोहि।
ऐश्वर्य योग संयुक्त तूं, सैजे देखे मोहि ॥ ८ ॥
सञ्जय उवाच–योगेश्वर श्रीकृष्ण जू, कहे वचन या माय।
परम रूप ईश्वर जु है, जाते देत प्रगटाय ॥ ९ ॥
बहु आनन लोचन बहुत, देख जु अचर्ज होत।
भूषत नाना भुषणां, शस्त्र अनेक अदोत ॥ १० ॥
दिव्य हार दिव्यै वसन, दिव्य सुगन्धि लगाय।

अनगत रूप मुख हैं तिते, शोभत नाना भाय ॥ ११ ॥
सहस्र रवि आकाश में, पूरि रहे सो जोत ।
दीपतिता प्रभुकी लसे, तऊ न समता होत ॥ १२ ॥
भिन्न भेद जगत में, देखे सब इक ठौर ।
देव देव को देह में, अर्जुन देखे और ॥१३॥
ताको तब अचरज भयो, रोम हरष के दाय ।
तो देवहि प्रणाम करि, बोलियो चित के चाय ॥१४॥
अर्जुन उवाच–देखत हों सब देहि में, सुर विरंच अरु सिद्ध ।
कमलासन ऋषि ईश पुनि, सरव नाग सब विद्ध ॥१५॥
बहुत बाहों उरुहों बहुत, मैं देखे बहु शीश ।
आदि अन्त मधहि नहीं, ऐसे तुम जगदीश ॥१६॥

मुकुट शीश कर चक्र गद, तेजवन्त भगवान।
दृगन च्योंध चितवन लगे, हैं रवि अनल समान ॥ १७ ॥
अच्छर हो तुमहूं परम, हो सब जगत विधान।
अविनाशी रच्छक सबन, उत्तम हो अनुमान ॥ १८ ॥
आदि अन्त मध्य रहत तुम, रवि शशि है तुहि नैन।
तेरौ मुख दीपक अगन, सबही के तुम ऐन ॥ १९ ॥
गगन भूम मध्य सरब दिश, व्यापै तुम जगदीश।
अद्भुत रूप सु उग्र लखि, डरपत लोकाधीश ॥२० ॥
पैठत तो में देव सब, स्तुति करत भय मान।
ऋषि अरुसिद्ध महन्तमुनि, निवत जु तोको जान ॥२१॥
रुद्र साध आदित्य सब, अश्वन सूत अरु वाय।

सिद्ध यक्ष गन्धर्व सब, देखते अचरज भाय ॥२२॥
रूप बड़ो मुख नैन बहु, भुज पद बहु उदरोज ।
देख भयानक द्राढ बहु, विथित लोक अरु होज ॥ २३ ॥
पाय भूहमि आकाश सिर, दृग दीर्घ सुख बाय ।
ऐसे तुम को देख के, धीरज गयो नसाय ॥ २४ ॥
काल अगन सम द्राढ तुम, तो देखे भयभीत ।
दिश भूली सुख हूं गयो, अब कीजै प्रभु प्रीत ॥ २५ ।
पूत सभी धृतराष्टर के, सब नरपतिन के संग ।
करण द्रोण भीष्म जिते, योधा हैं सो अंग ॥ २६ ॥
वेग तिहारे वदन में, सभी परत हैं आय ।
कोऊ द्राढण तर दले, कोऊ रहे लपटाय ॥ २७ ॥

ज्यों सरता वर्षा रुते, परत सिन्धु में जाय ।
त्यों सब नृप तब बदन में, सभी परत हैं धाय ॥ २८ ॥
ज्यों पतंग परद्वीप में, लहत आपनो नास,
त्यों ही नृपति परत हैं, तुम्हरे मुख में खास ॥ २९ ॥
ललित ही तिन को जले, रसना सों लपटाय ।
कांत रावरी जगत को, देत ताप बहु भाय ॥ ३० ॥
उग्र रूप तुम कवन हो, मोसो कहिये देव ।
जान्यो चाहत हों तुम्हें, तुहि बातन को भेव ॥ ३१ ॥
श्रीभगवानुवाच—कालरूप होय हों बढियो, सब को मारन हार ।
तो बिन सब योधनि को, भषिहौं हौं निरधार ॥३२॥
तांते उठ रण जीत तूं ले कीर्ति अरु राज ।

मैं हनि राखें है नृपत, एसब तेरु काज ॥ ३३ ॥
भीष्म द्रोण औरं जयद्रथ, करण आदि जहि और ।
भय ताजि अर्जुन युद्ध कर, अरिन मार या ठौर ॥ ३४ ॥
संजय उवाच–वचन सुनत श्रीकृष्ण के, कांपी अर्जुन देह ।
तब प्रभु के पायन लागियो, बोलियो वचन सनेह ॥३५॥

सब जन जो यहि जगत में, तुम्हें रहे अनुराग ।
सिद्ध निवत तुम को सदा, राक्षस जात सु भाग ॥ ३६ ॥
किव न निव तुम को जु हौं, परम ब्रह्म करतार ।
जगत ईश अक्षर अनन्त, तुम सभनों ते पार ॥ ३७ ॥
पुरुष पुरातन आदि ही, तुम ही जगत निधान ।
तुम विस्तारियो जगत यह, जानत तुम ही ज्ञान ॥ ३८ ॥

वायु प्रजापति अगिन यम, वरण चन्द तम रूप।
बारम्बार सहस्र तन, प्रणवत तोहि अनूप ॥ ३६ ॥
आगे ते तोको निवत, पाछे हूं अनन्त।
सरब दिशन तुम तिह निवत, अमित प्रवल भगवन्त ॥ ४० ॥
मित्र जानु जो मैं कही, क्षमा करो हे देव।
जानों कहा हौं बापुरो, तुहि महिमा को भेव ॥ ४१ ॥
भोजन सैन व्योहार में, किहे अनादर भाय।
ते जु क्षमा सब कीजिये, प्रभु जी केशव राय ॥ ४२ ॥
पिता जु तुम संसार के, तुमही हो गुरु ईस।
तुहि पद तुल कोउ नाहिनै, करे कौन तुम रीस ॥ ४३ ॥
तुम दण्डवत प्रणाम हो, क्षमो दोष प्रभु मोहि।

जिमि सुत पितु पर प्रीति है मित्र मित्र को जोय ॥ ४४ ॥

रूप लखियो या रावरे, मोहि हर्ष भय होय ।

पहिले रूप दिखाईये, हौं जीवन जानो सोय ॥ ४५ ॥

मुकट विराजत सीस पर, शंख चक्र गद हाथ ।

इह विधि मोहि दिखाईयै, प्रभु हो तुम जगनाथ ॥ ४६ ॥

चार भुजा धर प्रगट हुई, मोको दर्शन देह ।

सब मूर्ति जु अनन्त है, मोको वा सों नेह ॥ ४७ ॥

श्रीभगवानुवाच–तोहि दिखायो रूप मैं, अति प्रसन्न चित होय ।

आदि अनन्त सु तेज मैं, देख सके नहीं कोय ॥४८॥

वेद यज्ञ तप अरु क्रिया, और करे हूं दान ।

ऐसे मेरे रूप को, तो बिन लखे न आन ॥ ४९ ॥

रूप भयानक देख के, तू निज जीय डराहि।
अब भय कों तू डार देहि, मेरे रूपहि चाहि ॥ ५० ॥
संजय उवाच—अर्जुन सों ऐसे कही, पहिलो रूप दिखाय।
सावधान बहु बिधि किंये, भय ते लियो बचाय ॥५१॥
अर्जुन उवाच—रूप अनूप जु तुम धारियो, ता रूपहि हौं देख।
प्रकृति लही मैं आपनी, भयो सुचेत विशेष ॥ ५२ ॥
श्रीभगवानुवाच—देख पुरातन रूप इहु, जो तैं देख्यो मित्त।
तास रूप को देवता, देख्यो चाहत नित्त ॥ ५३ ॥
दान यज्ञ तप विधि किये, मोहि न देखे कोय।
बिन श्रम पारथ तू अबै, मोको रहियो जु जोय ॥ ५४ ॥
अनन्त भगति जे को करै, सो देखे या भाय।

नीके जाने मोहि सो, मो में आन समाय ॥ ५५ ॥
मो निमित्त कर्मन करै, जजै भगत तज और ।
बैर न काहू सों करै, सो में लहै सु ठौर ॥ ५६ ॥

इति श्री म० विराटरूप प्रदर्शनो नाम एकादशमो अध्यायः ॥ ११ ॥

बारहवां अध्यायः ।

अर्जुन उवाच—जो सेवक तुम को सदा, करि कर्मन के साज ।
अक्षर ब्रह्में ते भजत, बड़ो कवन किह काज ॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच—जो मो में मन राख के, सेवत सेवक भाय ।
बहु श्रद्धा संयुगति सो, अधिक अधिक अधिकाय ॥ २ ॥
जो धियात हैं अक्षरै, जो नहि प्रगट स्वरूप ।
व्यापी माया ते परे, अज अच्युत आनूप ॥ ३ ॥

सब इन्द्रियन को रोक के, सब को लखत समान।
सब जीवन सों हित करत, मिले मोहि करि ज्ञान ॥ ४ ॥
तिनें क्लेश बहु होत हैं, ब्रह्म लगाये चित्त।
रूप रेख जाको नहीं, सो दुःख ते लयत मित्त ॥ ५ ॥
जे सब कर्मन करत हैं, अर्पत मोको जान।
ध्यावत केवल भाव सों, बहु उपासना ठान ॥ ६ ॥
मृत्यु सहित भव उदधि ते, ताको करत उधार ।
मोमे चित राख्यो उनहि, बहु भायन निरधार ॥ ७ ॥
ताते अर्जुन बुद्धि मन, ले मो में तू राख।
या आगे मो देह में, बस है तू अभिलाष ॥ ८ ॥
जो तू मो में नहिं सकें, चित अपनो ठहराय।

अभ्यास करो मो मिलन को, मोहिं निरन्तर ध्याय ॥ ९ ॥
जो अभ्यास न करसकै, कर्म समरप्यो मोहि ।
मेरे किये समरप हूं, सिद्धि होयगी तोहि ॥ १० ॥
यहै न जो तू करसके, मो शरनहि अनुराग ।
सब कर्मन के फलन को, अर्जुन दे तू त्याग ॥ ११ ॥
ज्ञान भलो अभ्यास ते, ताते ध्यान विशेष ।
फलहि त्याग ताते भलो, वा ते शांतहि लेख ॥ १२ ॥
द्वेष न काहू सो करे, मित्र भाय करणाजु ।
अहङ्कार ममता तजै, सुख दुःख सम चमताजु ॥ १३ ॥
सदा रहे सन्तोष सो, मन राखे निज हाथ ।
प्राण बुद्धि मो में धरें, वह प्यारो मो साथ ॥ १४ ॥

वह काहू सों नहिं डरै, भय औरन नाहिं देय।
हरष शोक दोऊ तजे, सो मोको हरि लिय ॥ १५ ॥
चाहि न काहू की करै, रहे पुनीत उदास।
सब आडम्बर को तजे, रहे जु मेरे पास ॥ १६ ॥
प्रिय पाए आनन्द नहिं, अनप्रिया लहै न दोष।
सोच ना काहु की करै, तजै अशुभ शुभ रोख ॥ १७ ॥
शत्रु मित्र को सम लखे, तथा मान अपमान।
शीत उष्ण सुख दुःख तजे, संग करै नहीं आन ॥ १८ ॥
स्तुति निन्दा मो एक से, गहै मौन सन्तोष।
घृण न करै स्थिर मत रहे, लहै भगति सो मोच्छ ॥ १९ ॥
धर्म्म अमृत जो म कहा, ताहि जु सेवै कोय।

श्रद्धा युत मेरो भगत, मोहि सु प्यारो होय ॥ २० ॥
योग यज्ञ व्रत तप सभैं, कीने एक समान ।
सरस सार फल सबन को, मेरी भगति प्रधान ॥ २१ ॥

इति श्री० म० भगति योगो नाम द्वादशमो अध्यायः ॥ १२ ॥

तेरहवां अध्यायः ॥

अर्जुन उवाच—प्रकृति कौन अरु पुरुष को, क्षेत्र क्षेत्रज्ञ कहा ।
यहि जानन की लालसा, ज्ञान ज्ञेय पुनि क्या ॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच—क्षेत्र कहत या देहि को, अर्जुन ज्ञानी लोय ।
जानत जो या देहि को, सो क्षेत्रज्ञ सु होय ॥२॥
सो मम रूप जो आत्मा, बसत सबन की देह ।

यही ज्ञान को जानबो, मेरो मति है यह ॥ ३ ॥
क्षेत्र जहां ते है भयो, जो है तैसे भाय ।
जे विकार या मांझ है, कहों संक्षेप सुनाय ॥ ४ ॥
ऋषिन कह्यो बहु भान्त हूं, अवरन हुं जो भाख ।
हेत बांध निश्चय जु करि, कही उपनिषदन साख ॥ ५ ॥
एकादश इन्द्रियन विषय, पांच अगोचर मान ॥ ६ ॥
इच्छा सुख दुःख चेतना, द्वेष धीरता देहि ।
यहि जु कह्यो संक्षेप सों, क्षेत्र जान तू लेहि ॥ ७ ॥
क्षमा सरल जु दम्भ तजै, हिंसा मद्य अभिमान ।
गुरु सेवा संयम करन, स्थिरता सौच निधान ॥ ८ ॥
विषयन सों वैराग धर, तजै रहे अहङ्कार ।

जन्म मृत्यु सुख दुःख जग, व्याधि दोष निरधार ॥ ९ ॥
नेहु न पुत्र कलत्र सो, ता दुःख दुःखी न होय ।
चित में धरे समानता, बुरी भली जो होय ॥ १० ॥
अटल भगति मोमें धरे, सब का आत्म जान ।
रहे सदा एकान्त में, तजै सु सब सन्मान ॥ ११ ॥
अध्यात्म ज्ञानहि धरै, तत्व ज्ञान को देख ।
यह सब कुछ जो मैं कह्यो, यही ज्ञान अवरेख ॥ १२ ॥
कह्यो अमृत सम जानबो, जाते मुक्ति जु होय ।
कारण कारय तेहि परे, आदि ब्रह्म है जोय ॥ १३ ॥
सरव और कर चरण सिर, त्यों ही मुख दृग कान ।
व्याप रह्यो सब जगत में, मोहि दशो दिशि जान ॥ १४ ॥

सब विषयन ते रहत ही, सबना के आभास।
संग विना सब को धरौं, निर्गुण गुणत प्रकाश ॥ १५ ॥
जीव जिते चहुं चर अचर, अन्तर बाहर सोय।
सब से दूरि सु निकट हौं, सूक्ष्म लखे न कोय ॥ १६ ॥
ता में भेद सु कछु नहीं, सब में रहत विभाग।
उपजावन नाशन सबन, पालत करि अनुराग ॥ १७ ॥
जो तन हूं की जोत हौं, अन्धकार ते पार।
ज्ञान जान जो हिये में, सब को हौं निरधार ॥ १८ ॥
क्षेत्र ज्ञान अरु ज्ञेय मैं, तोको दियो बताय।
इनको जाने जो भगत, लहे सु मेरो भाय ॥ १९ ॥
माया पुरुष अनादि है, अर्जुन दोऊ जान।

गुण विकार सब जे भये, माया ही ते मान ॥ २० ॥
कारण कारय करतऊ, माया इनका हेत ।
और सुखन के भोग को, वहै पुरुष गहि लेत ॥ २१ ॥
पुरुष प्रकृति में बैठ के, करत विषय को भोग ।
नीचे ऊंचे जन्म को, कारण गुण संयोग ॥ २२ ॥
परमात्म को देहि ते, न्यारो जानत लोग ।
साक्षी करता भोगता, ईश्वर निर्गुण होय ॥ २३ ॥
जो कोउ मुहि ऐसे लखे, पुरुष प्रकृति गुण भाय ।
सो क्यों हूं जग में रहै, बहुरि न उपजै आय ॥ २४ ॥
देह मांझ आत्म लखत, कोउक एक ध्यान ।
सांख्ययोग अरु करमकर, लखत और स्वज्ञान ॥ २५ ॥

जो ऐसे नहीं जानही, ते सुन अवरन पैंजु ।
मम उपासना करत ही भव भय मृत्यु तरैंजु ॥ २६ ॥
जिते जीव या जगत में, स्थावर जंगम होत ।
क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ते, ते सब लहत उदोत ॥ २७ ॥
सब भूतन में रम रह्यो, एक आत्माराम ।
देह छुटे विनसत नहीं, बूझै नर अभिराम ॥ २८ ॥
सब देखे सर्वत्र महि, प्रभु इस विधि सब ठौर ।
नाश न होवत वाहि को, पावै है निज ठौर ॥ २६ ॥
प्रकृति करत जु करम सब, जीव अकरता होय ।
जानत जो या भेद को, लखत आत्मा सोय ॥ ३० ॥
जबही सकली सृष्टि मो, देखे आतम स्थित ।

तिस ही ते विस्तार है, सोई ब्रह्म में मिलत ॥ ३१ ॥
आदि अन्त ते रहत है, निर्गुण आत्म सोय ।
देहि मांझ यद्यपि रहै, करै न लिपता होय ॥३२॥
जिमि सर्वज्ञ आकाश है, अति सूक्ष्म निरलेप ।
तिमि सब देहि में रहे, आत्म राम अलेप ॥ ३३ ॥
जैसे सूर्य सबन को, करत प्रकाश तू जान ।
तैसे सब देहिन को, करत चांदना मान ॥ ३४ ॥
क्षेत्र क्षेत्रज्ञ को ज्ञान यह, हिय नैनन सों देख ।
प्राणी प्रकृति ते यों छुटे, सो सतिगुरु ते पेख ॥ ३५ ॥

इति श्री भ० क्षेत्र क्षेत्रज्ञ निर्देशो नाम त्रयोदशो ऽध्यायः ॥ १३ ॥

—०—

चौदहवां अध्याय ।

श्रीभगवानुवाच ॥

परम जु उत्तम ज्ञान सो, तोको दिये बताय ।
जाहि जानके मुनि सभै, रहे मुक्ति को पाय ॥ १ ॥
यही ज्ञान को सेव के, मेरो लह्यो स्वरूप ।
प्रलय वृथा तिनको नहीं, परे न ते भव कूप ॥ २ ॥
ब्रह्म प्रकृति में योनि है, ता महि गर्भहि राख ।
उपजावत सब सृष्टि हौं, अर्जुन चित्त अभिलाख ॥ ३ ॥
जे जे मूरत होत है, सदा योनिन में आय ।
तिन को हौं ही बीज हौं, हौं ही पितु अरु माय ॥ ४ ॥

सत रज तम त्रै गुण भये, माया ही ते जान ।
देखि मांझ या जीव को, येही बांधत आन ॥ ५ ॥
निरमल अरु प्रकाश कर, सत गुण शांत स्वभाव ।
ज्ञान संग सुख संग सों, बांधत जीवे आय ॥ ६ ॥
रज गुण राग स्वरूप हैं, तृष्णा संग को हेत ।
काम संग कर जीव को, ऐसे बन्धन देत ॥ ७ ॥
होत जु तम अज्ञान ते, मोहत सब को होय ।
आलस निद्रा विकलता, इन सों बांधत जोय ॥ ८ ॥
सत गुण सुख ते पड़त है, करम रजो गुण होय ।
आलस से तम गुण बढ़े, रहत ज्ञान सब खोय ॥ ६ ॥
रज गुण तम गुण पेलकै, रहत सतो गुण पूर ।

रज सत कोपेलेजु तम, रज ते सत तम दूर ॥ १० ॥
सत्व द्वारण में देहि के, जबै प्रकाशित ज्ञान ।
तबै बढ़ियो है सत गुणों, अर्जुन यह तू जान ॥ ११ ॥
बढ़त रजो गुण है जबै, नर शरीर में आय ।
लोभ करम उद्यम असन, इन्हें देत प्रगटाय ॥ १२ ॥
अर्जुन जब ही करत है, तम गुण आय प्रकाश ।
आलस मोह अज्ञान तब, मन में करत विलास ॥ १३ ॥
जा सतगुण की वृद्धि में, तजे जीव निज देह ।
तो ज्ञानी के लोक में, जाय करै निज गेह ॥ १४ ॥
रज गुण में तजे प्राण को, करमवन्त गृहजाय ।
तम गुण में जो मरत है, पशू योनि प्रगटाय ॥ १५ ॥

सुकृत करम ते होत है, शान्तिक फल स्वच्छ ।
रज गुण का फल दुःखहै, तम अज्ञान फल तुच्छ ॥१६॥
लोभ रजो गुण ते भयो, सत गुण ते है ज्ञान ।
तम गुण ते ही विकलता, मोहमय अरु अज्ञान ॥१७॥
सातक ऊंचे जात है, राजस मध्यम लोक ।
तामस जावत अधोगति, पावत बहु बिधि शोक ॥१८॥
गुण ही को करता करत, जानत ज्ञानी कोय ।
मोहि लखे गुण ते परै, मो में लीन सु होय ॥१६॥
देहि करत जु तीन गुण, तिनको देत जु त्याग ।
जन्म मृत्यु दुःख ते छुटे, रहे मुक्ति में लाग ॥२०॥

अर्जुन उवाच ॥

जिन लांघे हैं तीन गुण, ताके लक्षण कौन ।
क्या ताके आचार गुण, मोसों कहिये जौन ॥ २१॥

श्रीभगवानुवाच

मोहि ज्ञान अरु करम को, जो जाने हिय माहिं
बिन पाये चाहे नहीं, यहि दुःखपावे नाहिं ॥ २२॥
उदासीन बैठो रहे, सुख दुःख चपल न होय ।
गुण सब कारज करत हैं, यों जाने जे लोय ॥२३॥
सुख दुःख को सम कर गने, कञ्चन मटी माय ।
प्रिय अप्रिय को तुल गने, स्तुति निन्दा इक दाय ॥२४॥
तुल्य मान अपमान अरु, मित्र शत्रु सम जाहि ।

सब आरम्भन को तजे, गुणातीत कहि ताहि ॥ २५ ॥
मोको जो दृढ़ भगति सों, सेवे चित के चाय ।
सो तीनो गुण ते परे, रहे ब्रह्म को पाय ॥ २६ ॥
अर्जुन हौं ही ब्रह्म हों, मुक्ती मेरो रूप ।
हौं अविनाशी धर्म हों, आनन्द परम अनूप ॥ २७ ॥
आनन्द को हौं धाम हों, धनी भूत को तेजु ।
मोको एकै बीस करै, हों निज भक्ति कहेजु ॥ २८ ॥

इति श्री० म० गुणत्रैव विभाग योगो नाम चतुर्दशो अध्यायः ॥ १२ ॥

पन्द्रहवां अध्यायः ॥

श्रीभगवानुवाच

ऊरध मूर शाखा तलै, अविनाशी आवस्थ ।

वेद पत्र जो जान ही, सो जानै सब अर्थ ॥ १ ॥
गुण सींची शाखा बढ़ी, विषिया पल्लव पाय ।
जड़ फैली करमन बढ़ी, मनुज लोक में आय ॥ २ ॥
आदि अन्त नहीं जानिये, थान रूप नहीं जाहि ।
दृढ असंग हथियार कर, दुसहि मूल तरुढाहि ॥ ३ ॥
चाहि करै ता ठौर की, फिर न ताको पाय ।
सृष्टि भई जो पुरुष ते, ताको शरण जु आय ॥ ४ ॥
काम संग अरु मोह तजि, अध्यात्म रति होय ।
सुख दुःख तजि ताको लहै, अविनाशी जो कोय ॥ ५ ॥
पावक रवि अरु चन्द्रमा, ताहि करै न प्रकाश ।
फिर न ताको पाइके, सो हैं मेरो वाश ॥ ६ ॥

जीव लोक में जीव यहि, अविनाशी मो रूप ।
मनहि आदि इन्द्रियन को, अवर प्रकृति को भूप ॥ ७ ॥
जब शरीर को तजत यहि, जहां करै सम्बन्ध ।
इन्द्रिय ईश्वर संग रहे, वायु संग ज्यों गंध ॥ ८ ॥
श्रवण नैन अरु नासका, त्वच अरु रसना जान ।
इनको गहि मन संग ले, लहत जीव व्याख्यान ॥ ९ ॥
इन्द्रियजित निकसत रहत, करत विषय को भोग ।
मूढ जीव कोउ नहि लखे, लखे सु ज्ञानी लोग ॥ १० ॥
योगेश्वर यत्नन किये, देखत हैं जीय माहिं ।
मूरख यत्न न करत हूं, जीवहि देखत नाहिं ॥ ११ ॥
तेज जु है आदित्य में, भाषत सब संसार ।

चन्द्रमांझ अरु अग्नि में, सो मेरा निरधार ॥ १२ ॥
धारत हौं सब जीव को, करि पुहमी प्रवेश ।
पोषत हौं ही औषधी, होय रस में शशि लेख ॥ १३ ॥
हौं ही जठरा अग्नि हौं, सब देहिन में आय ।
प्राण अपान सहाय सों, डारत अन्न पचाय ॥ १४ ॥
सब के हिये में हौं रहौं, मो ते ज्ञान विचार ।
वेद सबै मोको कहैं, मैं तिनको करतार ॥ १५ ॥
लोक मांझ द्वै पुरुष है, क्षर अक्षर ता भाय ।
क्षर शरीर को कहत हैं, अक्षर जीव गनाय ॥ १६ ॥
उत्तम पुरुष सु अमर है, परमात्म के भेश ।
तीन लोक सों धरत हैं, करकर निज प्रवेश ॥ १७ ॥

क्षर अरु अक्षर ते परे, हौं ही हौं अधिकाय ।
ताते वेद अरु लोक में, अध्यात्म मो नाय ॥ १८ ॥
जो कोउ मोको नहिं भजत, ते तू मूर्ख जान ।
अर्जुन जो मोको भजत, तेही जान सुजान ॥१९॥
छिपी वात ग्रन्थन जु कही, सो तोको कहदीन ।
पारथ जे जानत यही, तेही जात प्रवीन ॥२०॥

इति श्री भ० पुरुषोत्तम योगो नाम पंचदशो अध्यायः ॥१५॥

सोलहवां अध्याय ।

श्रीभगवानुवाच

सब हिय की शुद्धता, ज्ञान योग स्थिर होय ।
दान यज्ञ तप वेद रुचि, दमन सरलता जोय ॥१॥

अनाहिंसा अरु सत्य में, रहि भय क्रोध अनित्त ।
दान शांत बहु विधि रुचे, दोष न आने चित ॥२॥
दया करै सब जनन पर, तजे चपलता भाय ।
लाज अकरमन ते सुधर, वृथा क्रिया छुट जाय ॥३॥
तेज क्षमा शुचि धार युत, तजै द्रोह अभिमान ।
दैवी संपद जिन लही, ता में ये गुण जान ॥४॥
दंभ दरप अज्ञान रिस, अरु अभिमान कठोर ।
ता में ये गुण जिन लहो, आसुरी संपदा घोर ॥५॥
दैवी संपदा तेजु भक्ति, बन्ध आसुरी जोय ।
सो चेतन्यहि जिन भई, दैवी संपदा तोहि ॥ ६ ॥
दैवी आसुरी भेद ते, द्वै विधि सृष्टि है एह ।

पहिली कहा विस्तार सों, अब दूजी सुन लेह ॥ ७ ॥

अविधि अवर विधि जगत की, आसुर जानत नाहिं ।
सत्य शोच आचार शुभ, नहीं ये गुण तिन माहिं ॥ ८ ॥
वेद पुराण ईश्वर हिये, नाही मानत मूढ़ ।
मैथुन ते संसार यह, काम क्रोध ही गूढ ॥ ९ ॥
गहि के ऐसी दृष्टि को, नष्ट चित्त कहि बुद्धि ।
होत उग्र करमा जु हैं, जगत अहित विस शुद्धि ॥ १० ॥
भजन अपूरब काम को, दंभ मान मद पाय ।
गहत बुराई मोहित जो, मांस अवर मद खाय ॥ ११ ॥
जाको कछु प्रमाण नहि, ता चिन्ता मोह लीन ।
काम भोग अति भलो है, निश्चय मानत दीन ॥ १२ ॥

सो आशा फासन बन्धे, काम क्रोध चित्त लाय ।
जोड़त धन अन्याय करि, काम भोग निरवाय ॥ १३ ॥
मन वांछित यहि मे लह्यो, लह्यो चाहत ही माहि ।
यहि धन मेरे है धरयो, जुरयो अवर उपाहि ॥ १४ ॥
यहि वैरी है मैं हनियो, करियो वाको अन्त ।
ईश्वर हौं भोगी जु हौं, सुखी सिद्ध बलवन्त ॥ १५ ॥
मैं ही धनी कुलीन हौं, अवर न मोहि समान ।
जजों देव मोदेहि लहो, मोहत यो अज्ञान ॥ १६ ॥
उनको मन बहु भ्रमत है. मोह जाल पर नित्त ।
परत घोर अति नरक मैं, काम भोग करि हित्त ॥ १७ ॥
निज बड़ियाई नित करत, निवत न धन अभिमान ।

नाम मात्र यज्ञ ही रचित, दंभी बिना विधान ॥ १८ ॥
अहङ्कार बल द्रव्य अरु, काम क्रोध गहि लेत ।
दोषी निज पर देहि में, मोको ते दुःख देत ॥ १६ ॥
मोसों द्रोह कर तरुत चहुं, पापी अधम गंवार ।
जगत असुरी योनि में, तिनै देत हौं डार ॥ २० ॥
जन्म जन्म में मूढ़ ते, होत जु आसुर आय ।
मोको ते पावत नहीं, परत अधोगति जाय ॥ २१ ॥
नरक द्वार विधि तीन हैं, देत आप को नास ।
काम क्रोध अरु लोभ पुनि, इन छोड़े सुख वास ॥ २२ ॥
तीनों द्वार जो नरक के, तिनतें छुटै जु कोय ।
यत्न करे कल्याण को, तबहि परम गति होय ॥ २३ ॥

जे शास्त्र विधि छोड़ के, करत क्रिया वसि काम।
सिद्धि लहै नहीं परमगति, नहिं सुख में विश्राम ॥ २४ ॥
ताते काज अकाज में, ताको वेद प्रमाण।
कर्मन कर तू जान के, तिनको विधि सु विधान ॥ २५ ॥
वेद कहत जो प्रोक्त है, मोको देत बताय।
मेरे ही करमन करो, मेरी आज्ञा पाय ॥ २६ ॥

इति श्री म० देवासुर सम्पदा नाम षोड़शो अध्यायः ॥१६॥

———:०:———

सतारहवां अध्याय

अर्जुन उवाच ॥

श्रद्धा बिन यज्ञहि करत, तज वेदन की रीति।

सत रज तम मो स्थिति कहा, कहीए तिनकी रीति १

श्री भगवानुवाच ॥

श्रद्धा नर की तीन विधि, होत जु सहज सुभाय ।
सातक राजस तामसी, सुनीए तिन के दाय ॥ २ ॥
परम्परा ही जन्म के श्रद्धा होत समान ।
श्रद्धा में यह पुरुष है, श्रद्धा ताहि प्रधान ॥ ३ ॥
देवन सेवहि सातकी, राजसी राजस जच्छ ।
भूत प्रेत गन ते जजैं, जे नर तामस पच्छ ॥ ४ ॥
घोर तपस्या जो करे, जौन वेद मत होय ।
भरे दम्भ अहंकार सों, काम राग बल होय ॥ ५ ॥
पंच भूत जो देहि में, तिनको वे दुःख देत ।

हिय में मोहू को हनत, ते है असुर अचेत ॥ ६ ॥
तीन भान्त अहार यह, सब को रोचक होय ।
दान यज्ञ तप भेद ये, मो पै सुनिये सोय ॥ ७ ॥
सुन्दर स्थिर अरु चीकनो, सातक प्रिय अहार ।
आयु सत्व अरु अंग बल, प्रीति बढ़ावन हार ॥ ८ ॥
दाहक रूखे उष्ण कटु, तीक्ष्ण खाटे त्तार ।
शोक रोग दुःख देत है, राजस एहि अहार ॥ ६ ॥
जा हिरदे पहरक गये, वासउ उटे वसाय ।
जूठा अवर पवित्र नहिं, भोजन तामस खाय ॥ १० ॥
विध विधान सों कीजिये, छोड़ फलन की आस ।
समाधान धरि जीय में, सातक यज्ञ विलास ॥ ११ ॥

करके फल की कामना, अवर दम्भ के भाय ।
ऐसी जो यज्ञहि करै, सो है राजस दाय ॥ १२ ॥
बिन अन्न हि बिन दच्छिणा, बिना मन्त्र विधि हीन ।
बिना श्रद्धा यज्ञ हि करै, सो है तामस लीन ॥ १३ ॥
ज्ञान गुरु द्विज देव को, पूजे शुचि मृदु होय ।
ब्रह्मचर्य्य हिंसा तजै, तप शरीर है सोय ॥ १४ ॥
भय न करै जे प्रिया वचन, हितकारी सत भाय ।
करै वेद अभ्यास पुनि, वाचक तप या दाय ॥ १५ ॥
मन प्रसाद जु सुखद मृदु, इन्द्रिय निग्रह मौन ।
भाव शुद्ध यों करत है, मानस तपस्वी जौन ॥ १६ ॥
श्रद्धा सों नर तप करत; सो हैं तीनो भांत ।

फल इच्छा को छोड़ कर, लही शांत गहि क्रांत ॥ १७ ॥
पूजा आदर मान को, अवर दम्भ के काज ।
सो तप राजस कहत है, चञ्चल च्णक समाज ॥ १८ ॥
देही दुःख दे मूढ हुई, हठ सों जो तप होय ।
पर को कष्ट दिखावई, तामस तप है सोय ॥ १९ ॥
दान देय उपकार बिन, पात्र विप्र को देखि ।
देश काल जो जान के, सातक दान विशेखि ॥ २० ॥
कीजै जो उपकार को, फल की आशा मान ।
दीजै जो अति कष्ट सों, ताको राजस जान ॥ २१ ॥
बिना देश अरु काल बिन, दीजे नीचे दान ।
विना आदर धिक्कार करि, तामस ताहि वखान ॥ २२ ॥

ओम् तत् सत् ब्रह्म के, नाम जु तीन प्रकार ।
विप्र वेद अरु यज्ञ तिन, कीने प्रथमही बार ॥२३॥
क्रिया यज्ञ अरु दान तप, कहि पहिले ओंकार ।
वेदवन्त यों करत हैं, विधि विधान विस्तार ॥२४॥
तत् यह करिके करत हैं, क्रिया यज्ञ तप दान ।
फल अभिलाषा छोड़ के, चाहत मुक्ति निदान ॥२५॥
शुद्ध भाव सति भाव में, सति का करत उचार ।
और भले पुनि कर्म में, सति को गावत सार ॥२६॥
यज्ञ दान तप की जु स्थिति, ताहि कहत सति नाम ।
ताके जे जे कर्म हैं, ताकों सति विश्राम ॥ २७ ॥
श्रद्धा बिन होमत जपत, देत जु सभै अकाज ।

अर्जुन सो यहि असत्य है, दुहूं लोक ही साज ॥ २८ ॥
सत रज तम यज्ञ दान तप, व्रत है मोही हेत ।
काल क्रिया कृत मंत्र सब, सिद्धि एक हरि खेत ॥ २९ ॥

इति श्री भ० त्रित्रिधिश्रद्धा योगो नाम सप्तदशो अध्यायः ॥१७॥

——○——

अठारहवां अध्याय ।

अर्जुन उवाच ॥

त्याग तत्व जानियो चहत, कहिये जु भगवान ।
तत्व और सन्यास को, न्यारो करो बखान ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

काम युगति करि मन तजै, तोहि नाम सन्यास ।

कर्म फलन को त्याग यहि, त्याग कहत सुखरास ॥ २ ॥
कर्म छाड़िये दोष ही, कोउ कहत या रीति ।
यज्ञ दान तप कर्म निज, तजो अवर यह रीति ॥ ३ ॥
या ठौरहि पद अर्थ जो, मेरो निश्चा जान ।
तीन भान्त को त्याग यह, अर्जुन चित में आन ॥४॥
यज्ञ दान तप कर्म ये, कीजै तजिये नाहिं ।
ताते पण्डित जन इनें, गणत पवित्रन माहिं ॥ ५ ॥
फल छाडे संगहि तजै, कर्म करै चित लाय ।
अर्जुन ये मेरो जु मत निश्चय उत्तम दाय ॥६॥
जो अवश्य करना कर्म, ताको छोड़ न देय ।
जो छोड़े अज्ञान ते, सो तामस गति लेय ॥७॥

यह जाने कर्मन तजै, मत देही दुःख देय।
यह तो राजस त्याग हैं, या में फल नहीं कोय ॥८॥
करनो कर्म अवश्य यहि, जान जु कीजे कर्म।
संग अवर फल को तजै, सातक त्याग सु धर्म ॥९॥
बुरे कर्म निन्दे नहीं, भले रहे नहिं लाग।
बुद्धिवन्त सन्देह बिन, यही सातकी त्याग ॥१०॥
देहवन्त पै कर्म सब, नाहीं छांड़ै जाहि।
कर्म फलन को जो तजैं, सो त्यागि न माहिं ॥११॥
स्वर्ग नरक अरु भूमि ये, कर्म त्रिविध फल जान।
कर्मवन्त पै होत है, संन्यासी नहीं मान ॥१२॥
अर्जुन मोपै सुन जू तू, कारण है ये पांच।

कहिये सांख्य सिद्धान्त में, कर्म सिद्धि को साच ॥ १३ ॥
अधिष्ठान कर्ता जु हैं, कारण बहुतों भाय ।
नाना विधि व्यापार अरु, पंचम देव गनाय ॥ १४ ॥
मन अरु वचन शरीर सों, कर्म करत या साज ।
भलो बुरो दोउ करै, इन बिन सर न काज ॥ १५ ॥
जो नर आत्म एक को, मानत हैं कर्तार ।
देखत हूं देखत नहीं, ते नर मूढ गंवार ॥ १६ ॥
जाकी बुद्धि न लिप्त है, अहंकार नहीं जाहि ।
सो इन लोकन को हनत, हने न बन्धन ताहि ॥ १७ ॥
प्रेरक तीनों कर्म के, ज्ञान ज्ञेय ज्ञातार ।
कारण कर्म करता कहै, संग्रह तीन प्रकार ॥ १८ ॥

त्रिविध होत गुण भेद ते, ज्ञान कर्म करतार।
गुण संख्या में एक हैं, जैसे सुन या बार ॥ १६ ॥
जाकर देखत जीय में, अविनाशी इक भाय।
न्यारें में न्यारो नहीं, सातक ज्ञान बताय ॥ २० ॥
नाना भाव इनमें लखे, न्यारो न्यारो ज्ञान।
भिन्न लखे सब जीव को, राजस ज्ञान सुज्ञान ॥ २१ ॥
पूर्ण जानो एक में, बिन कर्मन रे मित्त।
तत्व अर्थ बिन अल्प अति, तामस ज्ञान सुनित्त ॥ २२ ॥
संग राग अरु द्वेष बिन, नित्य कर्म जो होय।
तज फल इच्छा कीजिये, सातक कर्म सु जोय ॥ २३ ॥
जो कीजै करि कामना, किधौं करि अहंकार।

जा में श्रम है अति घनो, सो राजत निरधार ॥ २४ ॥
पुरुषहि हिंसा शुभ अशुभ, खर्चन द्रव्य बिचार ।
जो कीजै अज्ञान ते, तामज कर्म निहार ॥ २५ ॥
धर धीरज उत्साह को, तजै संग अहंकार ।
निरविकार सिद्ध सम, सातक कर्म करतार ॥ २६ ॥
रागी चाहे कर्म फल, लुब्धक हिंसक होय ।
हरष सोग संयुक्ति असुच, राजस करता सोय ॥ २७ ॥
शून्य रहे विवेक बिन, शठ आलसी नित्त ।
सवना की निन्दा करे, अरु विषादयुत चित्त ॥ २८ ॥
थोढ़े दिन के काम को, बहुत लगावे बार ।
ता ही सो सब कहत हैं, तामस मूढ लवार ॥ २९ ॥

१७८ अध्याय .ठ.१२वां

बुद्धी धीरज तीन विधि, होत जुगन के भाय ।
न्यारे न्यारे सब कह्यो, देऊं तुम्हें सुनाय ॥ ३० ॥
काज अकाज अरु भय अभय, और प्रवृत्त निवृत्त ।
जाने बन्धन मुक्ति को, सो सातक बुद्धि निवृत्त ॥ ३१ ॥
धर्म अधर्म हूं को लखे, काज अकाजहि जान ।
जैसे हूं तैसे नाहिं गनै, बुद्धी राजसी जान ॥ ३२ ॥
जानै प्राक्रम पुराय कीर, दम्भि अज्ञानी लोय ।
लखे न अर्थ विप्रीत सब, बुद्धि तामसी होय ॥ ३३ ॥
जासों इन्द्री रोकिये, चित्त क्रिया अरु प्राण ।
योग युक्ति निश्चल महा, धीरज सातक जान ॥ ३४ ॥
धर्म अर्थ अरु काम को, जे धारत हैं आय ।

चाहै फल प्रंसग ते, धीरज राजहि भाय ॥३५॥
जो भय.शोक विषाद मद, सुप्न मांझ ठहरात ।
दुष्ट बुद्धी छोड़े नहीं, धीरज तामस जात ॥३६॥
अब अर्जुन मो पै सुनो, सुख के तीन प्रकार ।
जाके अभ्यासहि किये, दुःख का होय निवार ॥३७॥
पहिले तो विष सम लगे, बहुर अमृत सम होय ।
सो सुख सातक ही कह्यो, बुद्धि प्रसाद ते होय ॥३८॥
इन्द्रिय विष संयोग ते, पहिले सुधा समान ।
पाछे जो विष सो लागै, सो सुख राजसु जान ॥३९॥
पहिले अरु पाछे सुखद, मोहत करैं जु देह ।
आलस निद्रा ते उठे, तामस सुख है येह ॥४०॥

सो पुहुमी के कछु नहीं, सुरहुं भय अरु अकास ।
सो तो इन तीनों गुनन, बन्ध्या न माया फांस ॥४१॥
द्विज क्षत्रिय अरु वैश्य के, अवर शूद्र के कर्म ।
निज स्वभाव से यह भये, न्यारे न्यारे धर्म ॥४२॥
शम अरु दम तम शुचि पुनि, सरलता और शान्त ।
आस्तिक ज्ञान विज्ञान यह, ब्रह्म कर्म की भांत ॥३३॥
शूर तेज धीरज चतुर, युद्ध मांझ न पराय ।
देह ठकुराई सो रहे, क्षत्रिय कम सुभाय ॥४४॥
खेती गौ रक्षा वाणिज, वैश्य कर्म ये जान ।
तीन वर्ण सेवा करे, शूद्र कर्म ये मान ॥४५॥
अपने अपने कर्म ते, सिद्ध लहै सब कोय ।

सो विधि अब मो पै सुन

जाते उपजत जीव सब, वि

कर्म करै ताको जजै, सिद्ध

नीके हूं पर धर्म ते, निर्गुण

कछू पाप पावे नहीं, करत

दोष सहित निज धर्म

दोष भ

लग्न बु

परम

सिद्ध

कहो

ार ।

॥ ५२ ॥

नीत ।

रीत ॥ ५३ ॥

ईकार ।

ार ॥ ५४ ॥